

पथ चुनें पर कौनसा

आचार्य महाप्रज्ञ



पथ चुनें पर कौन-सा



जैन विश्व भारती प्रकाशन

पथ चुनें पर कौन-सा

आचार्य महाप्रज्ञ

संपादक
मुनि धनंजयकुमार

प्रकाशक :
जैन विश्व भारती
पो. : लाडनूं (राज.) 341306
जिला : नागौर (राजस्थान)
फोन : 01581-226080/224671
फैक्स : 01581-227280
e-mail:secretariatldn@jvbharati.org

ISBN 978-81-7195-252-6

© जैन विश्व भारती

प्रथम संस्करण : दिसम्बर 2013 (प्रतियां 2200)

द्वितीय संस्करण : अगस्त 2014 (प्रतियां 1100)

मूल्य : एक सौ तीस रुपये मात्र

आवरण एवं आकल्पन : अडिग

मुद्रक : सांखला प्रिंटर्स, विनायक शिखर

शिवबाड़ी रोड, बीकानेर 334003

PATH CHUNEN PAR KAUN-SA by Acharya Mahapragya

₹ 130

सम्पादकीय

हर व्यक्ति जीवन के चौराहे पर खड़ा है। उसके चारों ओर पथ हैं। व्यक्ति अकेला है और पथ अनेक। एक दिग्भ्रम की स्थिति है—कोई दिशासूचक यंत्र नहीं है। व्यक्ति पथ चुने पर कौन-सा?

भगवान महावीर ने कहा—अनेक व्यक्तियों को यह बोध नहीं होता कि मैं कहां से आया हूं? मुझे कहां जाना है? क्या मेरा पुनर्जन्म होगा? न अतीत का बोध और न अनागत का बोध। व्यक्ति पथ चुने पर कौन-सा?

‘मैं कौन हूं?’ यह प्रश्न भी अनेक व्यक्तियों के मन में नहीं उभरता। इस प्रश्न की गहराई में पैठे बिना जन्म की दुर्लभता का संज्ञान नहीं हो सकता। मनुष्य जन्म की दुर्लभता का अंकन करने वाला व्यक्ति ही अतिमानव बन सकता है। जब तक यह बोध नहीं है—‘मैं कौन हूं’ तब तक क्या यह सुनिश्चित किया जा सकता है—मुझे क्या होना है? न अस्तित्व का बोध और न व्यक्तित्व का बोध। व्यक्ति पथ चुने पर कौन सा?

‘मैं कहां हूं’ ‘मेरी चेतना कहां काम कर रही है?’—इसका भी समीचीन बोध नहीं है। परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाप्रज्ञजी अनेक बार यह प्रश्न प्रस्तुत करते थे—आज मनुष्य की चेतना नाभि के आसपास केन्द्रित है या पिट्यूटरी-पिनियल ग्लैंड पर सक्रिय है? अधोवर्ती चैतन्य केन्द्र जागृत है या ऊर्ध्ववर्ती चैतन्य केन्द्र? ‘मुझे कहां पहुंचना है’—इस प्रश्न का उत्तर ‘मैं कहां हूं’—इस प्रश्न में छिपा है। न वर्तमान का बोध और न शुभ भविष्य की कल्पना। व्यक्ति पथ चुने पर कौन-सा?

वस्तुतः पथ और मंजिल दोनों जुड़े हुए हैं। यदि मंजिल का पता नहीं है तो कोई भी पथ व्यक्ति को गंतव्य तक कैसे पहुंचाएगा? एक घटना अथवा प्रसंग बहुत छोटा है पर है बहुत मार्मिक।

एक ग्रामीण व्यक्ति स्टेशन मास्टर के पास पहुंचा और बोला—‘मुझे टिकट दो।’

स्टेशन मास्टर ने पूछा—‘कहां की टिकट चाहिए।’
ग्रामीण व्यक्ति ने कहा—‘मेरी ससुराल की टिकट चाहिए।’
स्टेशन मास्टर—‘भाई! तुम्हारा ससुराल कहां है? किस गांव में है?’
ग्रामीण भाई—‘यह तो पता नहीं है पर मुझे अपने ससुराल जाना है।’
क्या उस ग्रामीण भाई को टिकट मिलेगी? क्या वह रेल-यात्रा कर पाएगा? अपने ससुराल पहुंच पाएगा?

मंजिल का बोध नहीं है। व्यक्ति को पथ मिले तो कौन-सा?

जितना जरूरी है मंजिल का बोध, उतना ही जरूरी है सम्यक् पथ का संबोध और अनुशीलन। मंजिल का बोध है और पथ सम्यक् नहीं है तो क्या मंजिल तक पहुंच पाएगा?

मान लीजिए—एक व्यक्ति दिल्ली के रेलवे स्टेशन पर खड़ा है। उसे जाना है कोलकाता। वह बैठ गया चेन्नई जाने वाली ट्रेन में। क्या वह कोलकाता पहुंच पाएगा?

सम्यक् पथ के अभाव में व्यक्ति भटक जाता है, लक्षित मंजिल से दूर होता चला जाता है।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सम्यक् पथ का महत्त्व है। सम्यक् पथ पर आरोहण होता है, सफलता के शिखर का स्पर्श किया जा सकता है। कुपथ या उत्पथ पर गति होती है, विफलता या पतन नियति बन जाती है। इसीलिए जीवन के चौराहे पर अवस्थित व्यक्ति किसी भी पथ पर प्रस्थान करने से पूर्व सत्पथ को सुनिश्चित करना चाहता है।

जहां चौराहा होता है, वहां समस्या होती है, भटकाव की संभावना बनी रहती है। मनुष्य के लिए सही पथ का चुनाव करना कठिन हो जाता है। सही पथ के चुनाव का प्रश्न न केवल सामान्य व्यक्तियों को, मेधावी संतों के मानस को भी आंदोलित और उद्वेलित करता रहा है। यह प्रश्न न केवल आज मनुष्य के मानस में उभर रहा है अपितु हजारों वर्ष पूर्व भी मानवीय चेतना को परिस्पंदित करता रहा है। इसका एक साक्ष्य है भगवान पार्श्व की परम्परा के महामुनि कुमारश्रमण केशी और भगवान महावीर के प्रथम शिष्य गणधर गौतम का संवाद।

कुमारश्रमण केशी ने कहा—गौतम! इस लोक में बहुत कुमार्ग—उत्पथ हैं।

वे मनुष्य को भटका देते हैं। क्या आप भटकते नहीं हैं?

कुप्पहा बहवो लोए, जेहिं नासंति जंतवो।

अद्धाणे कह वट्टंते, कहं न नस्ससि गोयमा!॥

(उत्तरज्झयणाणि २३/६०)

गणधर गौतम बोले—कुमारश्रमण केशी! जो मार्ग पर चल रहे हैं और जो उन्मार्ग पर प्रस्थित हैं। मैं उन सबको जानता हूँ इसलिए मैं भटकता नहीं हूँ।

जे य मग्गेण गच्छंति, जे य उम्मग्गपट्टिया।

ते सव्वे विट्ठया मज्झं, तो न नस्सामहं मुणी॥

(उत्तरज्झयणाणि २३/६१)

गणधर गौतम और कुमारश्रमण केशी के इस संवाद में भटकाव का कारण और उसका समाधान भी उपलब्ध है। भटकाव का एक प्रमुख कारण है मन। मानसिक तनाव, मानसिक अशांति, मानसिक व्यथा, मनोग्रंथियां—ये सब उत्पत्थगामिता की स्वाभाविक निष्पत्तियां हैं।

केशीकुमार श्रमण की इस जिज्ञासा में शाश्वत मानवीय समस्या का चित्रण है—‘गौतम! साहसिक, भयंकर और दुष्ट अश्व दौड़ रहा है। तुम उस पर आरूढ़ हो। वह तुम्हें उन्मार्ग पर कैसे नहीं ले जाता?’

अयं साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई।

जंसि गोयम! आरूढो, कहं तेण न हीरसि?

(उत्तरज्झयणाणि २३/५५)

गणधर गौतम ने कहा—मैंने इसे श्रुत की लगाम से बांध लिया है। यह जब उन्मार्ग की ओर दौड़ता है, तब मैं इस पर रोक लगा देता हूँ। इसलिए मेरा अश्व उन्मार्ग को नहीं जाता, मार्ग में ही चलता है।

कुमारश्रमण केशी—‘गौतम! अश्व किसे कहा गया है?’

गौतम—‘कुमारश्रमण केशी! यह जो साहसिक दुष्ट अश्व दौड़ रहा है, वह मन है। उसे मैं भलीभांति अपने अधीन रखता हूँ। धर्म शिक्षा के द्वारा वह उत्तम जाति का अश्व हो गया है।’

मणो साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई।

तं सम्मं निगिण्हामि, धम्मसिक्खाए कंथगं॥

(उत्तरज्झयणाणि २३/५६,५८)

प्रस्तुत ग्रंथ में धर्म की मौलिक शिक्षाएं और श्रुत की वह वल्गा है, जो सत्पथ का दिशासूचक यंत्र और नियामक तंत्र बन सकती है। भावों की पवित्रता, लेश्या की विशुद्धि, कषाय-उपशम, समता, स्वरूप-लीनता—इन सबका विकास जीवन की जटिल समस्याओं को सुलझा सकता है। इनकी साधना करने वाला व्यक्ति सदैव उदितोदित रहता है, शांति एवं समाधि का जीवन जीता है और वह उस पथ को चुनने में सफल बन जाता है, जो उसे परम लक्ष्य तक पहुंचा सके।

प्रस्तुत ग्रंथ 'पथ चुनें पर कौन-सा' परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा और कल्याणमयी दृष्टि का जीवन्त प्रमाण है। प्रशस्त प्रबोध और स्वस्थ संबोध देने वाली यह कृति आचार्यश्री महाप्रज्ञ का सारस्वत अवदान है, जिससे पाठक को नई दृष्टि, नई दिशा और नया पथ प्राप्त हो सकेगा।

१३ नवम्बर, २०१३

—मुनि धनंजयकुमार

जैन विश्व भारती, लाडनूं

अनुक्रम

१. किस लेश्या में जी रहे हैं आप? (१)	११-२१
२. किस लेश्या में जी रहे हैं आप? (२)	२२-३१
३. किस लेश्या में जी रहे हैं आप? (३)	३२-४०
४. किस लेश्या में जी रहे हैं आप? (४)	४१-४८
५. किस लेश्या में जी रहे हैं आप? (५)	४९-५८
६. किस लेश्या में जी रहे हैं आप? (६)	५९-६८
७. किस लेश्या में जी रहे हैं आप? (७)	६९-७६
८. कषाय को मंद कैसे करें? (१)	७७-८७
९. कषाय को मंद कैसे करें? (२)	८८-९६
१०. उदितोदित कैसे रहें? (१)	९७-१०७
११. उदितोदित कैसे रहें? (२)	१०८-११६
१२. उदितोदित कैसे रहें? (३)	११७-१२२
१३. असंख्य जीवियं मा पमायए	१२३-१३२
१४. महत्त्व सापेक्षता का	१३३-१४२
१५. कौन-सा पथ चुनेंगे आप?	१४३-१५४
१६. वह करता है अमृत-पान	१५५-१६४
१७. विकास सामंजस्य की चेतना का	१६५-१७५
१८. जरूरी है भाषा का विवेक	१७७-१८६
१९. अकेले न चमकें	१८७-१९६
२०. उपेक्षा करना भी सीखें	१९७-२०८

किस लेश्या में जी रहे हैं आप? (१)

यह वसुंधरा रत्नों की खान है। यहां पद पद पर निधान हैं। प्रत्येक योजन पर रसकूपिका है किन्तु जो भाग्यहीन हैं उन्हें वे दिखाई नहीं देते।

पदे पदे निधानानि, योजने रसकूपिका।

भाग्यहीना न पश्यन्ति बहुरत्ना वसुंधरा॥

पग-पग पर निधान गढ़े हुए हैं। लोग खजाना पाने के लिए भूमि को खोदते हैं। कौन-सा स्थान है, जहां निधान नहीं हैं? **योजने रसकूपिका**— प्रत्येक योजन पर, चार कोस पर एक रसकूपिका है। रसकूपिका वह होती है जिससे लोहे का स्पर्श कराया और लोहा सोना बन गया। किन्तु वह कभी दिखाई क्यों नहीं देती? इसलिए दिखाई नहीं देती कि देखने की दृष्टि तुम्हें कहां मिली है? वह भाग्य कहां मिला है, जो दिखाई दे।

सूरज आकाश में है। किसी जन्मांध व्यक्ति को कहा जाए—देखो, सूरज आ गया है? वह कैसे देखेगा? देख नहीं पाएगा। जैसे जन्मांध व्यक्ति आकाश में चमकते हुए सूरज को नहीं देख पाता, वैसे ही सब कुछ है पर देखना बड़ा मुश्किल है।

जरूरी है भाव विशुद्धि

आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, भगवान कुछ भी कहें, हमारे भीतर है। इसमें कोई संदेह नहीं है पर हम देख नहीं पा रहे हैं। हम देख भी सकते हैं। जब-जब जिस क्षण में हमारा मन एकाग्र होता है, धर्म-ध्यान में होता है और जब-जब भाव की विशुद्धि होती है, भावनाएं पवित्र होती हैं, लेश्या पवित्र होती है तब तब हम भगवान का दर्शन, आत्मा का दर्शन और परमात्मा का दर्शन कर सकते हैं। हम आज भी आत्मा का साक्षात्कार कर सकते हैं यदि वह पवित्रता हो।

धार्मिक व्यक्ति को सबसे ज्यादा जिस बात पर ध्यान देना है वह है 'लेश्या विशुद्धि' या 'भाव विशुद्धि'। अगर लेश्या का सिद्धांत समझ में आ जाए तो अनेक समस्याएं स्वतः समाहित हो जाएं। जो व्यक्ति भाव विशुद्धि रखता है, यदि उसके जीवन में दस बड़ी बीमारी भोगने का योग है तो नौ

१२ पथ चुनें पर कौन-सा

तो ऐसे ही कहीं चली जाएंगी, हो सकता है दसों ही चली जाएं। कोई काम कठिन लग रहा है, सफलता नहीं मिल रही है। लगता है वह सफलता बीस वर्ष बाद मिलेगी। यदि भाव पवित्र है तो हो सकता है कि एक वर्ष में ही सारा काम हो जाए।

सबसे बड़ी बात है भावना को विशुद्ध रखना। कुछ दिन पहले एक भाई आया, बोला—क्या करूं? बहुत बुरे विचार आते हैं, बुरी भावनाएं आती हैं। कभी आत्महत्या का, कभी दूसरे को मारने का, कभी चोरी करने का—पता नहीं क्या-क्या विचार आते हैं। यह मनोविज्ञान का एक विषय बन गया। नकारात्मक दृष्टिकोण बनता रहता है और बिना मतलब बुरे विचार आ जाते हैं इसलिए लेश्या के सिद्धांत को समझना बहुत जरूरी है।

कब नहीं रहा आतंक

प्राचीनकाल में एक नगर का नाम था अक्षपुर। वहां का राजा था अरिदमन। उसके पुत्र का नाम था प्रियंकर। एक दिन राजा अरिदमन दूसरे राज्य पर आक्रमण करने गया। उस युग में समर्थ राजा की यह वृत्ति रहती थी कि वह कमजोर राजा के राज्य को हड़प लेता, आक्रमण कर देता, प्रजा को लूट लेता। आजकल आदमी कहते हैं—जमाना बहुत बुरा है। बहुत आतंक हो गया। प्रश्न है कब नहीं रहा? कोई भी जमाना ऐसा नहीं रहा, जिस समय यह भय, आतंक, लूट, छीना-झपटी न रही हो। रूप बदलता रहता है। आज थोड़ा रूप बदल गया। प्राचीनकाल में कितनी लूट-खसोट चलती थी। आचार्य भिक्षु जब मारवाड़ में थे तब धाड़ आई थी। धाड़ का मतलब यह है—जो बड़े-बड़े ठाकुर होते, वे सदल-बल जाते और गांव को लूट लेते। सेना आती और गांव को लूट लेती। यह बहुत चलता था। आदमी का स्वभाव बदला नहीं है, जैसा दो सौ वर्ष पहले था वैसा आज है। जैसा दो सौ वर्ष पहले था वैसा दो हजार वर्ष पहले भी था। आदमी सदा बुराइयां करता रहा है, क्रूरता करता रहा है। यदि हम प्रश्नव्याकरण सूत्र को पढ़ें तो पता चलता है कि आदमी कितनी क्रूरताएं करता था। क्रूर वृत्ति का सजीव चित्र खींचा गया है। वृत्तियां पहले भी थीं, आज भी हैं।

आश्चर्य राजा का

राजा अरिदमन ने दूसरे राज्य पर आक्रमण किया, उसने विजय पा ली। वह पुनः सेना के साथ आ रहा है, नगर अभी दूर है। अचानक राजा के मन में

पथ चुनें पर कौन-सा १३

एक भाव की तरंग उठ गई। भाव अच्छा भी होता है, बुरा भी होता है। भाव वीतरागता का भी होता है, रागात्मकता का भी होता है।

राजा के मन में राग की तरंग उठी—अब मैं जल्दी जाऊं। अपनी प्रिय महारानी से मिलूं। राजा ने सेना को पीछे छोड़ दिया और अकेला ही बहुत आगे बढ़ गया। वह सेना से बहुत पहले पहुंचा। उसने देखा—नगर एकदम सजाया हुआ है। जब राजा लोग विजय कर आते थे तब प्रजाजन नगर को सजाते थे। राजा ने देखा—नगर ही नहीं, अंतःपुर भी सजाया हुआ है। महारानी तैयार खड़ी है दरवाजे पर। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह कैसे? उसने महारानी से पूछा—‘यह पहले सजावट कैसे कर दी, किसने सूचना दी? मैंने तो कोई सूचना नहीं दी थी। सेना के पहुंचने में अभी तीन दिन की देरी है। पहले ही यह सज्जा कैसे कर दी? किसने बताया?’

महारानी बोली—‘महाराज! यहां एक साधु आए हुए हैं, उनका नाम है कीर्तिधर। बड़े ज्ञानी मुनि हैं। मैं उनके पास गई थी। उनकी उपासना में बैठी थी। मैंने पूछ लिया—महाराज! मेरा पति युद्ध में गया हुआ है। क्या विजयी होगा? वह कब आयेगा?’ मुनि ने कहा—‘उसने युद्ध जीत लिया है। वह आज के दिन आएगा और अकेला आएगा।’

राजा ने विस्मय भरे स्वर में कहा—‘साधु इतना बड़ा ज्ञानी है, जो पहले की बात बता देता है। तुम उस साधु को बुलाओ।’

मुनि की निस्पृहता

अधिकारी मुनि कीर्तिधर के पास गए, विनम्रता के साथ बोले—‘महाराज बुला रहे हैं।’

साधु बोला—‘कौन महाराज होता है? महाराज तो हम हैं।’

‘मुनिश्री! इस नगर का, देश का मालिक जो राजा है, वह आपको बुला रहा है।’

मुनि स्पष्ट शब्दों में बोले—‘मालिक अपना-अपना होता है। मैं तो अपनी आत्मा का मालिक हूं और किसी का मालिक नहीं हूं। कह दो—मैं नहीं आऊंगा।’

साधु फक्कड़ होते हैं। उनको किसका डर। सिकन्दर ने एक साधु से कहा था—‘मेरे साथ चलो।’

१४ पथ चुनें पर कौन-सा

साधु बोला—‘नहीं चलूंगा।’ सिकन्दर ने दो-तीन बार कहा पर साधु का यही उत्तर रहा—‘नहीं चलूंगा। सिकन्दर अहंकार में आ गया, बोला—‘देखते हो, सामने कौन खड़ा है?’

‘आदमी खड़ा है।’

‘मेरा नाम है सम्राट् सिकन्दर। यह देखो तलवार! या तो चलो, नहीं तो सिर काट दूंगा।’

साधु निर्भयता से बोला—‘किसका सिर काट देगा। तुम मार नहीं सकते।’

ऐसी ओजस्विनी वाणी थी कि सिकन्दर कांप गया। सबको कंपाने वाला सिकन्दर एकदम आंदोलित हो गया। वह झुका, पैरों में गिरा, बोला—‘महाराज! ठीक है।’ फिर खड़ा हुआ और बोला—‘अब आप कहिए—मैं आपकी क्या सेवा करूं?’

मुनि बोले—‘यह धूप आ रही है। तू आगे से हट जा। बस यही सेवा है।’

जिसके कोई स्पृहा नहीं, जिसके मन में कोई आकांक्षा नहीं, जिसके मन में कोई चाह नहीं उसके सामने कोई राजा हो या सम्राट्, चक्रवर्ती हो या देवता—कोई अंतर नहीं आता। चाहे स्वयं इन्द्र भी आ जाए तो उनके मन में कंपन नहीं होता। ये सब कंपन उनके लिए होते हैं जिनके मन में कोई चाह होती है। जो चाह से परे चला गया, उसके लिए न कोई छोटा होता है और न कोई बड़ा होता है।

मुनि कीर्तिधर पहुंचे हुए संत थे, वे बोले—‘राजा से कह दो कि मुनि कीर्तिधर नहीं आ सकते।’

जान ली मन की बात

राजा स्वयं गया, नमस्कार किया और बोला—‘महाराज! आप पहले की बात जान लेते हो, दूर की बात जान लेते हो और मन की बात जान लेते हो। मैंने यह महारानी से सुना है।’

‘हां, राजन्! यह कोई खास बात नहीं है।’

‘महाराज! आप बताएं कि मैं अभी क्या सोच रहा हूं, अभी मेरे मन में क्या है?’

बड़ा जटिल होता है प्रश्न। जैसे भगवान महावीर के सामने एक व्यक्ति आया, हाथ में एक तिनका ले लिया और पूछा—‘मैंने सुना है कि तुम बड़े ज्ञानी

पथ चुनें पर कौन-सा १५

हो। तुम बताओ कि मैं तिनका तोड़ूंगा या नहीं? अब क्या बताए। अगर कह दे तोड़ेगा तो नहीं तोड़ेगा। अगर कह दे कि नहीं तोड़ेगा तो लो यह तोड़ा। राजा ने पूछा—‘महाराज! आप बताएं—अभी मन में क्या-क्या सोच रहा हूं?’

साधु ने कहा—‘राजन्! रहने दो, क्या करोगे?’

‘नहीं, मुझे जानना है।’

मुनि कीर्तिधर बोले—‘राजन्! तुम अपनी मृत्यु के बारे में सोच रहे हो। मेरी मृत्यु कब होगी? यह तुम्हारा प्रश्न है।’

राजा ने दोनों कान पकड़ लिए, सोचा—है तो यह चमत्कारी बाबा!

प्रश्न मृत्यु का

राजा बोला—‘महाराज! यही बात मैं सोच रहा था। अब आप यह भी बता दो कि मैं कब मरूंगा?’

यह जिज्ञासा बहुत लोगों में रहती है। जो कुण्डली दिखाते हैं उनमें कुछ जिज्ञासाएं होती हैं। एक जिज्ञासा यह होती है कि मैं मंत्री कब बनूंगा। जब चुनाव के दिन आते हैं, हस्तरेखाविदों और ज्योतिषियों के पास चक्कर लगाने शुरू हो जाते हैं। पूछते हैं—मैं जीतूंगा या नहीं? मंत्री बनूंगा या नहीं? बहुत भीड़ लगती है। उस समय कई तांत्रिक मांत्रिक सामने आ जाते हैं, चाहे कुछ भी न जानते हों, कोरा ढकोसला हो, पाखण्ड हो। मन में एक आकांक्षा रहती है कि मैं कब बनूंगा? दूसरी आकांक्षा यह होती है कि मृत्यु कब होगी? यह जानने की इच्छा रहती है।

राजा ने प्रश्न कर दिया—‘महाराज! बताएं कि मृत्यु कब होगी?’ ऐसी जिज्ञासा का उत्तर देना बड़ा जटिल होता है और कठिन भी होता है, क्योंकि अप्रिय बात कहे तो सामने वाले व्यक्ति को बड़ी चोट लगती है। जब कोई ऐसा प्रसंग आ जाता है तब सामान्य मुनि तो बता नहीं सकता। सामान्य मुनि के लिए ये सब बताना निषिद्ध है किन्तु जो विशिष्ट ज्ञानी होते हैं, अष्टांग निमित्त को जानने वाले होते हैं, वे कभी-कभी कोई घटना, विशेष प्रसंग पर बता देते हैं। मुनि कीर्तिधर ने बता दिया—‘राजन्! तुम एक सप्ताह के बाद मरोगे।’

‘मुनिवर! मेरी मौत का कारण क्या बनेगा?’

मुनि कीर्तिधर ने कहा—‘राजन्! बादल मंडराएंगे, घटाएं उमड़ेंगी, वर्षा

होगी, बिजली कौंधेगी। बिजली तुम्हारे सिर पर गिरेगी और तुम मर जाओगे।
'विद्युत्पातेन'—बिजली गिरने से तुम्हारी मौत होगी।'

मुनि कीर्तिधर ने घोषणा कर दी पर बात समाप्त नहीं हुई। राजा ने सोचा—
ऐसा बताने वाला कौन मिलेगा? उसने अगला प्रश्न पूछ लिया—'महाराज!
मरने के बाद मैं क्या बनूंगा? कहां जाऊंगा?'

जटिल प्रश्न और उत्तर

मुनि ने सोचा—यह बहुत जटिल प्रश्न है। सही बताऊं तो सबको बड़ा
अप्रिय लगेगा। झूठ बोलने का कोई मतलब नहीं है। मौन रहूं तो यह समझेगा
कि बस इतना ही जानता था इसलिए मौन हो गए। कहीं-कहीं मौन भी
खतरनाक होता है। समाधायक कहीं मौन हो जाए तो व्यक्ति कह देता
है—जानते नहीं हो इसलिए मौन हो गए। पहले इतना बोले, अब बताओ तो
पता चले।

आचार्य भिक्षु से किसी ने प्रश्न पूछा—'भीखणजी! तुम बड़े बुद्धिमान हो।
तुम्हारी बड़ी प्रशंसा सुनी है। तुम मेरे प्रश्न का उत्तर दो।'

स्वामीजी बोले—'बोलो, भाई! क्या है तुम्हारा प्रश्न?'

'स्वामीजी! बताओ, घोड़े के पैर कितने होते हैं?'

भिक्षु स्वामी बोले—'एक, दो, तीन.....चार होते हैं।'

'स्वामीजी! हमने तो सुना था कि तुम बहुत बुद्धिमान हो। एक छोटा
बच्चा भी सीधा उत्तर दे देता है। तुम गिनते हो—एक, दो, तीन, चार। बड़ी
विचित्र बात है।'

भिक्षु स्वामी बोले—'मैं सीधा उत्तर दे देता कि घोड़े के पैर चार होते हैं
तो तेरा अगला प्रश्न होता—बताओ कर्णखजूरे (कांसला) के पैर कितने होते हैं
तब मुझे सोचना पड़ता। उस समय तुम कहते—पहले तो जल्दी बोल गए अब
बताओ तो पता चले।'

वह व्यक्ति बोला—'भीखणजी! मैं सोचकर तो यही आया था।'

यह प्रश्न और उत्तर की बात बड़ी जटिल होती है। मौन रहना भी ठीक
नहीं है और कुछ कहे तो जटिलता भी है।

राजा ने पूछ लिया—'महाराज! बताएं मरने के बाद मेरी गति क्या होगी?'

मुनि निस्पृह थे। उन्हें कोई चिन्ता नहीं थी और प्रसंग भी ऐसा था कि बताना जरूरी लगा। मुनि कीर्तिधर ने कहा—‘राजन्! यह सामने अकूरड़ी है। तुम मरकर इस अकूरड़ी में एक द्वीन्द्रिय—दो इंद्रिय वाला कीट बनोगे।’

विद्युत्पात और मरण

राजा एकदम कांप उठा। कहां तो राजमहल में रहने वाला पूरे देश पर शासन करने वाला, जिसके पास गजसेना, रथ सेना, अश्व सेना, पैदल सेना—चतुरंगिणी सेना। हजारों, लाखों आदमी जिस राजा की कृपा को ताकते रहते हैं, वह राजा मरने के बाद इस अकूरड़ी में कीड़ा बनेगा? कितनी भयंकर बात है? सुनने वाले भी कांप जाते हैं। क्या ऐसा होता है? क्या ऐसा होगा?

मुनि कीर्तिधर ने इतना स्पष्ट बता दिया फिर भी राजा का मोह कम नहीं हुआ। उसे यह बात बहुत अप्रिय लगी और अविश्वसनीय भी। उसका मोह भयंकर बना रहा किन्तु हुआ वही। सप्ताह बीता। आकाश बादलों से घिर गया। वर्षा बरसी। बादल खूब गरज रहे हैं, बिजलियां कौंध रही हैं। एक भयावह बिजली गिरी राजा के सिर पर। विद्युत्पात हुआ और राजा मर गया।

राजा मूर्च्छा में मरा, आसक्ति में मरा। आसक्ति छूटी नहीं, लोभ छूटा नहीं, अहंकार छूटा नहीं। बुरे भावों में राजा मरा और मरकर ठीक वहीं कीड़ा पैदा हुआ।

उसका पुत्र प्रियंकर निरन्तर ध्यान रख रहा था। उसने सोचा—मुनि की सारी बातें तो मिल गईं। अब यह कीड़ा बनने वाली बात मिलती है या नहीं? जैसे ही राजा मरा। युवराज प्रियंकर उसी अकूरड़ी पर आया, उसने देखा—कीड़ा पैदा हो गया है। कीट को पैदा होने में देर कितनी लगती है? संमूर्च्छिम जीव तत्काल पैदा हो जाते हैं।

पिता ने पुत्र से पहले ही कह दिया था—‘पुत्र! ध्यान देना। मुनिजी की सब बातें सही हो रही हैं। अगर यह भी सही मिल जाए और मरने के बाद मैं कीड़ा हो जाऊं तो तुम तत्काल मार देना। उस बुरी गति में रखना ठीक नहीं है।’

राजा प्रियंकर ने सोचा—पिता का आदेश है। यह कीड़ा पैदा हो गया है। मैं कीड़े को मार डालूं। वह अकूरड़ी पर गया, कीड़े को मारने लगा। वह कीड़ा छटपटाया, एकदम भागने लगा। राजा प्रियंकर ने बहुत प्रयत्न किया किन्तु सफल नहीं हुआ। वह कीट इधर-उधर भाग जाता। राजा उसे मार नहीं सका।

१८ पथ चुनें पर कौन-सा

क्या वही है मेरा पिता ?

राजा प्रियंकर वापिस राजमहल में आया। भोजन आदि से निवृत्त हुआ और सीधा मुनि कीर्तिधर के पास पहुंचा। वंदना की। मुनि ध्यानलीन थे। वह श्रद्धाप्रणत हो उपासना में बैठ गया।

जहां सत्यापन होता है वहां श्रद्धा स्वयं उत्पन्न हो जाती है। जो बात को प्रमाणीकृत कर देते हैं, सत्यापित कर देते हैं वे श्रद्धेय बन जाते हैं।

प्रियंकर ने सोचा—कैसे ज्ञानी मुनि हैं? एक-एक बात सही घटित हो रही है। जो कहा, वह सब घटित हो गया। बड़ी श्रद्धा के साथ प्रियंकर बैठा रहा। मुनि ने ध्यान सम्पन्न किया।

प्रियंकर बोला—‘महाराज! आपने जैसा कहा था, वैसा घटित हो गया। वहां अकूरड़ी पर एक कीड़ा उत्पन्न हो गया है। क्या मेरा पिता वही है?’

मुनि ने कहा—‘बिल्कुल वही है तुम्हारा पिता।’

‘महाराज! मेरे पिता ने मुझे कहा था कि मुझे मार डालना। मैं मारने गया पर मार नहीं सका। वह दौड़ जाता है, भाग जाता है, मरना नहीं चाहता।’

जीना चाहता है हर व्यक्ति

मुनि कीर्तिधर बोले—‘प्रियंकर! तुम इस नियम को नहीं जानते—
सर्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं।’

यह एक प्राकृतिक नियम है, सिद्धांत है, जिसका महावीर ने प्रतिपादन किया—सब जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। चाहे कितनी भी बुरी अवस्था में है, व्यक्ति मरना नहीं चाहता।’

मारवाड़ की एक छोटी-सी कहानी है। एक बुढ़िया झोंपड़ी में रहती थी। बड़ी दुःखी थी। रोज कहती—देखो, सब मरते हैं पर मेरी चिट्ठी नहीं आती। रामजी मेरी चिट्ठी भूल गये। एक दिन झोंपड़ी में काला नाग निकला। बुढ़िया बाहर भागी, चिल्लाई—आओ-आओ, बचाओ-बचाओ। लोग इकट्ठे हो गये, पूछा—‘बुढ़िया मां! क्या हुआ?’

‘देखो भीतर सांप आ गया। वह काट खाएगा। इसको निकालो। दूर करो।’

लोग बोले—‘बुढ़िया मां! तुम रोज कहती थी कि रामजी मेरी चिट्ठी भूल गये। आज चिट्ठी आई तब तुम बाहर भाग आई।’

वह बोली—‘बेटा! मरणो दोरो लागे।’

मरना सरल नहीं है। किसी भी अवस्था में हो, आदमी जीना चाहता है, मरना नहीं चाहता। अगर मरना कठिन नहीं होता तो हॉस्पिटलों में इतनी भीड़ नहीं होती। बूढ़ा आदमी सत्तर-अस्सी को पार कर गया, बहुत बीमार रहता है फिर भी कहता है—हॉस्पिटल में एक बार और भर्ती कर दो, एक बार और इंजेक्शन लग जाए, ग्लूकोज चढ़ जाए, कुछ केप्सूल और टॉनिक ले लूं, फिर ताकत आ जाए। कोई भी व्यक्ति मरना नहीं चाहता। हर आदमी जीना चाहता है।

जीने की आकांक्षा : मौत का भय

महावीर ने यह सिद्धांत बताया था—जब तक शरीर समर्थ है, काम कर रहा है तब तक तो जीने का अर्थ है। जब देखे कि अब शरीर ढीला पड़ गया है, काम नहीं दे रहा है तो फिर मरने की तैयारी कर लो।

महावीर ने मरने की तैयारी का पाठ पढ़ाया था, मरने का डर दूर किया था, कहा था—मरने से डरो मत—‘मा भेत्तव्वं। मरना कोई बुरी बात नहीं है किन्तु सामान्य आदमी में प्राणों का, घर का, धन का, परिवार का इतना मोह होता है कि वह छोड़ना नहीं चाहता। वह यह समझता है कि मैं छोड़ दूंगा तो पीछे प्रलय हो जाएगा। अरे! कुछ भी नहीं होगा। दुनिया ऐसे ही चलेगी। पर मोह इतना सघन होता है कि मरना नहीं चाहता।

कीर्तिधर मुनि ने कहा—‘प्रियंकर! तुम इस नियम को समझो।’

अमेध्ये मध्यकीटस्य, सुरेन्द्रस्य सुरालये।
तुल्यास्ति जीविताकांक्षा, तुल्यं मृत्योर्भयं द्वयोः॥

एक अकूरड़ी में जन्मा हुआ कीड़ा है और एक स्वर्ग में इन्द्र है। इन दोनों में जीने की आकांक्षा समान है और मृत्यु का भय भी समान है। सुरेन्द्र भी मौत से डरता है और एक कीड़ा भी मौत से डरता है।

प्रियंकर के यह बात समझ में आ गई, वह बोला—‘महाराज! एक प्रश्न मेरा और है। वह यह है कि मेरा पिता इतना बड़ा आदमी था। वह मरकर कीड़ा बन गया। इसका हेतु क्या है? मैं अब कीड़ा नहीं बनना चाहता। मैं मरने के बाद इस गति में जाना नहीं चाहता। मरने के बाद आदमी कीड़ा क्यों बनता है? नीची गति में क्यों जाता है? यह मैं जानना चाहता हूं।’

२० पथ चुनें पर कौन-सा

अंत मति सो गति

मुनि कीर्तिधर ने कहा—‘प्रियंकर! इसका एक ही कारण है और वह यह है—जल्लेसे मरइ तल्लेसे उववज्जइ।’

अगर यह सूत्र याद रहे तो आदमी बहुत बुराइयों से बच जाए। प्रज्ञापना सूत्र का यह सुन्दर सूक्त है—आदमी जिस लेश्या में मरता है, उसी लेश्या में पैदा होता है। इसी का संवादी वाक्य अथवा अनुवाद है—अंत मति सो गति—अंतिम समय में जो मति रहती है वैसी गति हो जाती है। इसलिए हर आदमी को सोचना है कि अंतिम समय कितना अच्छा रहे। जिस व्यक्ति का अंतिम समय समाधि में बीतता है, जो चौबीसी, आराधना की गीतिकाएं सुनते-सुनते मरता है, उसकी स्थिति दूसरी होती है। वह अच्छी गति में जाता है। जो अंतिम समय में मोह, मूर्च्छा में रहता है, वह निम्न गति में जाता है।

जयपुर की घटना है। एक परिवार के लोगों ने घर पधारने की विशेष प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर मैं उनके घर गया। परिवार के लोग खड़े थे। एक देवता आया। वह देवता किसी के शरीर के माध्यम से बोलता है। मैंने पूछ लिया—तुम्हारी यह गति कैसे? वह देव बोला—‘मेरी गति तो ऊंची होती पर मरते समय मेरा मोह परिवार में रह गया, इसलिए मेरी गति नीची हो गई। मैं ऊपर नहीं जा सका।’

बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न है कि आदमी किस लेश्या में मरता है? किस भावना में मरता है? अगली गति का निर्धारण बहुत कुछ इस पर निर्भर रहता है। यही प्रश्न राजा प्रियंकर ने मुनि कीर्तिधर से पूछा। मुनि ने इस प्रश्न का जो उत्तर दिया, उसमें भावधारा और लेश्या की विशुद्धि का महान् संदेश गर्भित है।

किस लेश्या में जी रहे हैं आप? (२)

बाहर और भीतर—इन दो शब्दों के मर्म को समझना जरूरी है। कोई आदमी आया और घर के बाहर खड़ा है। उसकी अलग स्थिति होती है। एक व्यक्ति आया, सीधा घर के भीतर चला गया, वह जरूर कोई विश्वस्त है, प्रिय है, मित्र है, पाहुणा है तभी भीतर जा सकता है। बाहर तो कोई भी खड़ा रह सकता है। भीतर जाना एक अलग अवस्था है और बाहर रहना बिल्कुल भिन्न अवस्था है।

यही दशा है हमारे भीतर और बाहर की। जो बाहर ही बाहर रहता है, उसकी अलग अवस्था बनती है। जो भीतर चला जाता है, उसकी अवस्था दूसरी बन जाती है। बाह्य और आभ्यन्तर के इस भेद का अनुभव करना है। बाहर क्या है? भीतर क्या है? जो व्यक्ति केवल इंद्रियों के आधार पर जीता है वह बाहर ही बाहर रहता है। इंद्रियों का काम क्या है? बाहर को देखना। इंद्रियों की सारी रचना ही इस प्रकार बनी है। आंख बाहर को देखेगी, भीतर नहीं देखती, अपने आपको भी नहीं देखती। कान का काम है बाहर की बात सुनना। जीभ का काम है बाहर की चीज को चखना। त्वचा का काम है बाहर को छूना। घ्राण का काम है बाहर की गंध लेना। सब बाहर ही बाहर है, भीतर कुछ नहीं। यह इंद्रिय चेतना के स्तर पर जीना बाहर में जीना है।

कैसा है भीतर का जीवन

भीतर है हमारा भाव। भाव के जगत् में जीना, यह है भीतर का जीवन। बाहर का जीवन अच्छा लगता है किन्तु यह अच्छाई की कसौटी नहीं है। जब तक यह पता न लगे कि भीतर का जीवन कैसा है, तब तक केवल बाहरी जीवन के आधार पर व्यक्तित्व का अंकन नहीं किया जा सकता। इसी आधार पर ऐसी कहावतें चली—‘मुख में राम बगल में छुरी’, ‘हाथ में माला पेट में कुदाला।’ बाहर हाथ में तो माला है और भीतर कुदालियां चल रही हैं। यह बाहर और अंतर का जो परिवर्तन है, उसे समझना जरूरी है।

२२ पथ चुनें पर कौन-सा

महत्त्वपूर्ण है लेश्या का सिद्धांत

लेश्या का जगत हमारा भीतर का जगत् है, भावधारा का जगत् है। भीतर में भाव का प्रवाह कैसा है? भाव कैसा चल रहा है? इस आधार पर व्यक्तित्व का अंकन होता है, व्यक्तित्व की ऊंचाई और निचाई का पता चलता है। अच्छे और बुरे व्यक्ति का पता चलता है। बाहरी रंग-रूप से व्यक्तित्व का पता नहीं चलता, इंद्रियों से व्यक्तित्व का पता नहीं चलता। वह चलता है भाव जगत् से, लेश्या से। इसीलिए जैन दर्शन में लेश्या को बड़ा महत्त्व दिया गया। लेश्या को छोड़कर कोई बात समझ में नहीं आ सकती। हर जगह लेश्या को समझना पड़ेगा। जहां कर्म है, वहां लेश्या है। जहां प्रवृत्ति है, वहां लेश्या है। जहां ज्ञान का विकास है, वहां लेश्या है। भीतर का प्रकाश या अंधकार कुछ भी है, वहां लेश्या है।

प्रियंकर ने पूछा—‘मेरे पिता की यह गति क्यों हुई? महाराज! औरों की भी ऐसी गति होती होगी? ऐसी गति क्यों होती है?’

मुनि ने कहा—‘यह सब लेश्या के कारण है। मरते समय व्यक्ति के कौनसी लेश्या है? अंतिम समय में कौन व्यक्ति किस लेश्या में जीता है? इस आधार पर गति का पता चलता है।’

‘महाराज! यह कैसे पता चले कि कौन-सी लेश्या है?’

मुनि कीर्तिधर ने कहा—‘प्रियंकर! भगवान् महावीर ने उत्तराध्ययन सूत्र में इनके लक्षण बतलाए हैं। जब-जब इस प्रकार का भाव और व्यवहार हो तब तब यह समझ लो कि अमुक लेश्या काम कर रही है, अभी उस लेश्या का योग चल रहा है।’

जैसे स्वरोदय में पता चलता है कि कौन-सा तत्त्व चल रहा है। वैसे तो तत्त्व दिखाई नहीं देता। पृथ्वी तत्त्व, जल तत्त्व, अग्नि तत्त्व, वायु तत्त्व और आकाश तत्त्व—ये पांच तत्त्व स्वरोदय शास्त्र में माने जाते हैं। ये तत्त्व बदलते रहते हैं, सदा एक जैसे नहीं रहते। अभी कौन-सा तत्त्व चल रहा है? ऐसे दिखाई नहीं देता पर उपाय बतला दिया—आंख बंद कर देखो कि कौन सा रंग दिखाई दे रहा है। यदि पीला रंग दिखाई दे तो समझ लें कि पृथ्वी तत्त्व चल रहा है। सफेद रंग दिखाई दे तो समझ लें कि जल तत्त्व चल रहा है। अग्नि का रंग दिखाई दे तो समझ लें कि अग्नि तत्त्व चल रहा है।

पथ चुनें पर कौन-सा २३

साधना का प्रयोजन

भगवान महावीर ने कृष्ण, नील, कापोत, तेजस्, पद्म और शुक्ल—ये छह लेश्याएं बतलाई और इन छह लेश्याओं के लक्षण भी बतलाए। अमुक प्रकार का चिन्तन आ रहा है, भावधारा आ रही है, अमुक प्रकार का व्यवहार हो रहा है तो समझ लो कि अमुक लेश्या काम कर रही है, सक्रिय है।

लेश्या खराब है तो उसको कैसे बदला जाए। अच्छी है तो उसको और कैसे बढ़ाया जाए? यह साधना का प्रयोजन है।

मुनि कीर्तिधर ने कहा—प्रियंकर! कृष्ण लेश्या के छह लक्षण हैं—अत्यधिक रौद्र भाव, क्रोध, मात्सर्य, धर्महीनता, निर्दयता और वैर-अनुबंध। जिनमें इनकी प्रबलता होती है वह कृष्ण लेश्या में जीता है।

**अतिरौद्रः सदा क्रोधी, मत्सरी धर्मवर्जितः।
निर्दयी वैरसंयुक्तः, कृष्णलेश्याधिको नरः॥**

रौद्र स्वभाव का परिणाम

कृष्ण लेश्या का पहला लक्षण है रौद्र-स्वभाव। जो बहुत रौद्र आदमी है, भयंकर आतंककारी है, जिसमें रुद्रता और क्रूरता है, वह कोई बात सोचता नहीं है। थोड़ा-सा भी कुछ होता है, रौद्र रूप धारण कर लेता है। रुद्रता की ऐसी घटनाएं आज भी मिलती हैं। घटना कहने वाला भी और सुनने वाले भी—दोनों कांप उठते हैं। अमेरिका की घटना है। एक महिला काम कर रही थी। उसकी छोटी बच्ची बार-बार तंग कर रही थी। बच्चे तो तंग करते ही हैं। मां ने एक दो बार मना किया पर वह मानी नहीं। मां ने ऐसा रौद्र रूप धारण किया कि वॉशिंग मशीन में ले जाकर बच्ची को डाल दिया और मशीन चला दी। कितनी रुद्रता। बच्ची का प्राणांत हो गया।

यह अतिरौद्र भावधारा का परिणाम है। क्या होगा, परिणाम की चिन्ता नहीं है। अतिरौद्र व्यक्ति ऐसा भयंकर रूप धारण करता है और अकरणीय काम कर बैठता है। यह कृष्ण लेश्या का पहला लक्षण है।

निरन्तर क्रोध

कृष्ण लेश्या का दूसरा लक्षण है—सदा क्रोधी। जिसे बार-बार गुस्सा आता रहता है, थोड़ा-सा मन के विपरीत हो जाए तो क्रोध की भयंकर आग जल उठती है। मिट्टी के चूल्हे तो आजकल प्रायः बंद हो गए पर यह क्रोध का चूल्हा प्रायः घर-घर में जलता रहता है, कभी बुझता ही नहीं है।

२४ पथ चुनें पर कौन-सा

इन दिनों में कुछ लोग आए, बोले—क्रोध बहुत आता है। कल ही एक भाई ने कहा—गुस्सा बहुत आता है। मैंने कहा—भाई! इतने दिन से उपासना में थे। अब तुम जा रहे हो। पहले क्यों नहीं बताया? कोई जादू तो हमारे पास है नहीं। उपाय अवश्य है साधना का, जिससे गुस्सा कम हो सकता है और होता है। जिन-जिन ने उसका प्रयोग किया, उनका गुस्सा कम हो गया। पर दो मिनट में उत्तर मिल जाए, यह संभव नहीं है। यह कोई बौद्धिक बात नहीं है कि उत्तर दे दिया जाए।

एक छोटा बच्चा आता है, उससे पूछा जाता है कि तुम्हारी गति कौनसी? वह कहेगा—मनुष्य गति। गति का उत्तर तो एक मिनट में दिया जा सकता है। जाति कौनसी?—पंचेन्द्रिय। किन्तु गुस्सा कम हो जाए, यह कोई एक-दो मिनट का उत्तर नहीं है। इसमें तो साधना करनी पड़ती है। सदा क्रोधी—निरन्तर गुस्से में रहता है, बार-बार गुस्सा करता है, उत्तेजना और आवेश में रहता है—कृष्ण लेश्या का लक्षण है।

मात्सर्य

तीसरा लक्षण है मात्सर्य। व्यक्ति में ईर्ष्या बहुत है। वह दूसरे की विशेषता को सहन नहीं करता, दूसरे के बड़प्पन को स्वीकार नहीं करता, दूसरे की सम्पत्ति को देख नहीं सकता, जलता रहता है। यह मात्सर्य भाव कृष्ण लेश्या का लक्षण है।

अरुचि धर्म की

चौथा लक्षण है धर्मवर्जित। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जिन्हें कभी धर्म की बात अच्छी नहीं लगती, धर्म में रुचि नहीं होती। कल की घटना है। मैंने एक नया उत्तर सुना लड़कियों से। मुझे आश्चर्य भी हुआ। एक मुनिजी पास में बैठे थे। परिवार वालों ने मुनिजी से कहा—‘महाराज! इसने अच्छी पढ़ाई की है, जॉब भी कर रही है। आप इसको प्रेरणा दें कि यह दर्शन करे, व्याख्यान सुने।’ उस लड़की ने स्पष्ट कहा—‘मेरी धर्म में आस्था नहीं है, रुचि नहीं है, श्रद्धा नहीं है।’ युवकों से तो इस प्रकार का उत्तर सुनने को मिलता है, लड़कियों से, युवतियों से कम मिलता है किन्तु असंभव कुछ भी नहीं है।

जिस व्यक्ति में कृष्ण लेश्या का भाव रहता है, उसमें धर्म के प्रति रुचि पैदा नहीं होती, धर्म अच्छा भी नहीं लगता। जो धर्म करता है उसको भी यही कहता है—क्यों व्यर्थ समय गंवाते हो? आज भी प्रत्येक गांव में बहुत लोग ऐसे

हैं, जो संत-दर्शन और व्याख्यान श्रवण में रस नहीं लेते। वे दुकानों में बैठकर, घर के बाहर तख्तों, चौकों पर बैठकर बात करने में रस लेते हैं। धर्म को वे व्यर्थ मानते हैं और विकथा में बहुत रस लेते हैं। इतना रस, जिसकी कोई सीमा नहीं। यह लक्षण है कृष्ण लेश्या का। जिस व्यक्ति में कृष्ण लेश्या का परिणाम होता है, उसको धर्म की बात अच्छी नहीं लगती। उसको मारकाट, हिंसा, झगड़ा-लड़ाई, एक-दूसरे का उपहास करना, एक-दूसरे को लड़ाना-भिड़ाना बड़ा अच्छा लगता है। इसी में जीवन का सार लगता है। यह कृष्ण लेश्या का लक्षण है।

जब कभी यह कहा जाए—भाई! अमुक व्यक्ति की धर्म में रुचि नहीं है तो समझ लेना चाहिए—अभी उसके कृष्ण लेश्या का परिणाम चल रहा है। जब तक कृष्ण लेश्या का शोधन नहीं होगा तब तक धर्म की बात अच्छी नहीं लगेगी। उपाय यह किया जाए कि कृष्ण लेश्या कैसे मिटे?

निर्दयता

पांचवां लक्षण है निर्दयता। जिसमें कृष्ण लेश्या प्रबल है, उसमें दया-हया नहीं होती। चाहे कोई जीव मर जाए, आदमी भी मर जाए, उसके मन में कंपन नहीं होता। बहुत सारे चोर डकैत आते हैं, धन भी लेते हैं और आदमी को भी मार डालते हैं, बिना मतलब ही मार डालते हैं। जितना आतंक और निर्दयता का मनोभाव है, वह कृष्ण लेश्या का परिणाम है।

वैर का अनुबंध

कृष्ण लेश्या का छठा लक्षण है वैर-संयुक्तः। किसी से वैर हो गया, विरोध हो गया, फिर वह गांठ खुलती नहीं है। जहां सामाजिक जीवन है, अनेक लोग साथ रहते हैं, वहां किसी घटना का होना कोई बड़ी बात नहीं है। कोई भी घटना हो सकती है पर वह वैर की ग्रंथि न बने। एक बार वैर हो गया, ग्रंथिपात हो गया फिर कभी गांठ खुलती नहीं है तो मानना चाहिए कि यह कृष्ण लेश्या का परिणाम है।

अस्वाभाविक नहीं है कषाय का उदय

एक मुनि के लिए विधान है कि वह कलह को उपशांत किए बिना आहार न करे। वैर-विरोध, कलह होना अस्वाभाविक नहीं है। एक मुनि छद्मस्थ है, उसमें कषाय है, क्रोध है, अहंकार, लोभ है, कपट है—ये सब विद्यमान हैं, क्योंकि अभी क्षीण नहीं हुए हैं। एक साधु उन्हें शांत करने की साधना कर

रहा है इसलिए कषाय का उदय अस्वाभाविक नहीं है, क्रोध भी आ सकता है, कलह-झगड़ा भी कर सकता है किन्तु भगवान् महावीर ने नियम कर दिया—कलह हो जाए तो कलह को उपशांत किये बिना आहार करने का त्याग है। यदि मुनि का किसी से कलह हो गया तो खमतखामणा किए बिना आहार नहीं कर सकता। पहले खमतखामणा करो, कलह को शांत करो, क्रोध को शांत करो और फिर आहार-पानी लो। इसका मतलब है—कृष्ण लेश्या का जो परिणाम आया है उसको शांत कर फिर तेजोलेश्या में चले जाओ। जहां तेजोलेश्या में गए, वहां धर्म का वातावरण बन गया।

परिणाम वैरानुबंध का

एक व्यवस्था और कर दी—प्रत्यक्ष में कोई कलह नहीं हुआ किन्तु ऐसे ही कोई मनमुटाव हो गया, वैर की गांठ बंध गई। व्यवस्था की महावीर ने—पाक्षिक—पन्द्रह दिन में खमतखामणा कर लो। यात्रा करते हैं तो बीच में पड़ाव आते हैं, जहां विश्राम कर सके। कुछ ज्यादा आवेश आ गया, एक पड़ाव पर मन का वैर शांत नहीं हुआ तो दूसरा पड़ाव है—चातुर्मासिक पक्खी को खमतखामणा कर लो। यदि आवेश फिर भी शांत नहीं हुआ, चौमासी पक्खी को भी नहीं मिटा तो फिर तीसरा और अंतिम पड़ाव है सांवत्सरिक खमतखामणा—संवत्सरी को खमतखामणा कर लो। यह अंतिम पड़ाव है। यदि संवत्सरी के दिन भी व्यक्ति उस वैर की गांठ को नहीं खोलता, वैर को शांत नहीं करता तो फिर न साधुपन, न श्रावकपन और न सम्यक्दृष्टि। वह व्यक्ति मिथ्यात्व में चला जाता है।

जो लोग धर्म की आराधना करते हैं वे इस बात को गहराई से समझें—एक वर्ष तक वैर का अनुबंध रह गया, फिर भी कलह को शांत नहीं किया यानी मन के वैर को शांत नहीं किया तो न साधुपन रहेगा, न श्रावकपन टिकेगा, न छठा गुणस्थान रहेगा, न पांचवां गुणस्थान रहेगा, न चौथा गुणस्थान रहेगा। सीधा पहले गुणस्थान में चला जाएगा।

बदल जाती है गति

सिंधु सौवीर के राजा उद्रायण का उत्तराध्ययन सूत्र में बहुत वर्णन है। वह भगवान महावीर का बड़ा भक्त था। उसके लिए भगवान महावीर सिंधु में पधारे थे। सिंधु सौवीर, जो आज का कराची है पाकिस्तान में, भगवान महावीर उज्जयिनी से सात सौ कोस का विहार कर वहां पधारे। सात सौ कोस

पथ चुनें पर कौन-सा २७

यानी १४०० मील। इतना लम्बा विहार किया। उस यात्रा में सैकड़ों साधु स्वर्गवासी हो गए। सिंधु-सौवीर का राजा उद्रायण श्रावक था, भक्त था, वह साधु बना। उसने साधु बनते समय सोचा—मैं अपने पुत्र अभीचीकुमार को राज दूंगा। राजेश्वरी नरकेश्वरी—राजा नरक में जाता है। मेरा पुत्र नरक में जाएगा, यह अच्छा नहीं है। मैं मेरे पुत्र को नरक से बचाना चाहता हूँ। उसने अपने पुत्र को राज नहीं दिया और राज दे दिया केशी को, जो उसका भानजा था। जहाँ व्यवहार की भूल हो जाती है वहाँ भी समस्या जटिल बन जाती है। यह व्यवहार की भूल हो गई। जिस व्यक्ति का अधिकार था, उसको वंचित कर दिया और दूसरे को दे दिया। इस व्यवहार की भूल का परिणाम क्या हुआ? अभीचीकुमार प्रतिशोध की आग में जलने लगा। वह बड़ा समझदार श्रावक था, धर्म को समझता था पर यह आवेश तीव्र बन गया। जब पाक्षिक दिन आता, प्रतिक्रमण करता तब चौरासी लाख जीव योनियों से खमतखामणा करता—केवल उद्रायण नाम के व्यक्ति को छोड़कर। नाम से ही इतना द्वेष हो गया कि सबके साथ खमतखामणा है पर उद्रायण नाम के व्यक्ति से मेरा खमतखामणा नहीं है। यह वैर की गांठ ऐसी बंध जाती है कि गति बदल जाती है।

वैर-संयुक्तः—वैर से इतना युक्त हो जाना उपयुक्त नहीं है। कोई घटना हुई। व्यक्ति सोचे—दुनिया है, इसमें ऐसा हो सकता है तो बात समाप्त होती है। यदि यह न सोचे और गांठ को घुलाता चला जाए तो कभी अंत नहीं आएगा। जिस व्यक्ति में कृष्ण लेश्या का भाव तीव्र होता है उसमें यह स्थिति बनती है।

कृष्ण लेश्या के ये छह लक्षण हैं। इसी प्रकार छहों लेश्याओं के अलग-अलग लक्षण बतलाए गए हैं। इसके अतिरिक्त छहों लेश्याओं को बहुत सरलता से समझाने के लिए दो कथाएं भी प्रचलित हैं। एक कथा है जम्बू वृक्ष की और दूसरी कथा है ग्रामघातक की। पुराने जमाने में आवेशवश गांव को नष्ट कर दिया जाता था। आज भी ऐसा चलता है। समाचार पत्र में पढ़ा—असम में पूरे गांव को नष्ट कर दिया। गांव को नष्ट कर देते हैं ग्रामघातक। वे संकल्प कर लेते हैं कि इस गांव को बिल्कुल समाप्त कर देना है।

कथा जम्बू वृक्ष की

जम्बू वृक्ष की कथा तो बहुत प्रसिद्ध है। हमें उस कथा का मर्म समझना है। छह व्यक्ति यात्रा कर रहे थे। यात्रा करते-करते जंगल में आ गए। कुछ भूख लगी, देखा—सामने जामुन का पेड़ बहुत बढ़िया है और एकदम पके हुए जामुन हैं। इच्छा हुई कि जामुन खाएं।

२८ पथ चुनें पर कौन-सा

एक बोला—‘जामुन खाना है तो ऊपर चढ़ें।’

दूसरा बोला—‘नहीं, नहीं ऐसी मूर्खता नहीं करनी है। ऊपर चढ़ें, कोई गिर जाएगा तो क्या होगा? ऊपर चढ़ने की कोई जरूरत नहीं है।’

‘फिर कैसे खाएंगे?’

वह बोला—‘मेरे पास कुल्हाड़ी है। थोड़े ठहरो। इसको जड़ से काट देता हूं। वृक्ष नीचे गिर जाएगा और यहां बैठे-बैठे मजे से खा लेना। ऊपर चढ़ने की, कुछ तोड़ने की जरूरत ही नहीं है।’

इस प्रकार का परिणाम कि जड़ से समाप्त कर देना।

निर्मम कर्म है वंश का उच्छेद

महाराणा प्रताप के पुत्र महाराणा उदयसिंह की घटना प्रसिद्ध है। उसे मारने का षड्यंत्र रचा गया। पन्नाधाय ने उसकी रक्षा की। वंश के उच्छेद का निर्मम कर्म प्राचीनकाल में राजा लोग करते थे। वे वंश को ही निर्मूल कर देते थे। यह जड़ से समाप्त कर देना, मूलोच्छेद कर देना, यह कृष्ण लेश्या का परिणाम है।

आज भी कुछ लोग हमारे पास आते हैं, कहते हैं—बड़ा दुःख है, घर में झगड़ा बहुत हो रहा है। व्यापार ठप हो गया। दुकान बिल्कुल चलती नहीं है, सबमें मनमुटाव रहता है। एक-दूसरे को देखना पसन्द नहीं करते।

हमने पूछा—‘भाई क्यों?’

‘महाराज! किसी ने कुछ तांत्रिक प्रयोग कर दिया इसलिए ऐसा हो रहा है।’

जयपुर से एक भाई आया, बड़ा धनी व्यक्ति था, बोला—‘मेरा व्यापार में मन ही नहीं लग रहा है।’

मैंने कहा—‘व्यापार में मन नहीं लग रहा है तो साधु बन जाओ।’

‘आचार्यश्री! साधु तो बन नहीं सकता।’

‘ऐसा क्यों हो रहा है?’

‘महाराज! मुझ पर किसी ने तांत्रिक प्रयोग कर दिया। मन खोया-खोया सा रहता है। किसी काम में मन नहीं लगता। यह आशंका रहती है कि दूसरा व्यक्ति हमारा सर्वथा मूलोच्छेद करना चाहता है।’

जड़ से काट दो, 'न रहे बांस और न बजे बांसुरी'—यह जो भावधारा होती है वह कृष्ण लेश्या का परिणाम है। मूलोच्छेद करने का विचार संक्लिष्ट भावधारा के बिना उत्पन्न नहीं होता। केवल एक व्यक्ति नहीं, पूरे देश और गांव के विनाश की बात सोचने के लिए कितना दुश्चिन्तन होता है। आतंकवाद के प्रशिक्षण के स्कूल चलते हैं। आतंकवादी गतिविधियां कैसे चलाई जाएं, कैसे बम बनाया जाए, कैसे बम का विस्फोट किया जाए? किन-किन स्थानों को चुना जाए? कैसे बड़े-बड़े नेताओं को मारा जाए? इन सबका विधिवत् प्रशिक्षण मिलता है। आश्चर्य होता है—एक ओर मानवाधिकार की इतनी चिन्ता कि मानव के अधिकार का कहीं हनन न हो, दूसरी ओर आतंकवादी गतिविधियों के प्रशिक्षण के स्कूल चलते हैं। कितना विरोधाभास है, कितनी विचित्रता है। यह विनाश का प्रशिक्षण कृष्ण लेश्या का परिणाम है।

उत्तरोत्तर परिणाम शुद्धि

जामुन के वृक्ष को एक व्यक्ति ने जड़ से काटने का सुझाव दिया। दूसरा व्यक्ति बोला—'अरे भाई! ऐसा क्यों करते हो? वृक्ष को जड़-मूल से उखाड़ कर हम तो चले जाएंगे। यहां और भी लोग आएंगे, पक्षी आएंगे, सबके लिए अहित होगा। यह अच्छा नहीं है। तुम एक काम करो—एक बड़ी शाखा को काट दो। बस वृक्ष तो बराबर बना रहेगा। बड़ी शाखा नीचे गिरेगी, अपना काम हो जाएगा और वृक्ष का भी विनाश नहीं होगा।'

यह एक दूसरे प्रकार की भावधारा है। क्रूरता कुछ कम हो गई। जो मूल से उखाड़ने की बात थी, वह नहीं रही।

तीसरा बोला—'भाई! तुम्हारी बात भी अच्छी नहीं लग रही है। बड़ी शाखा तोड़ने का मतलब क्या है? हम तो इतना खा नहीं पाएंगे। एक प्रशाखा को तोड़ लो, उससे भी हमारा काम हो जाएगा।'

पहला चिन्तन कृष्ण लेश्या का, दूसरा चिन्तन नील लेश्या का। तीसरा चिन्तन आ गया कापोत लेश्या का—बस केवल एक डाली तोड़ो, हमारा काम हो जाएगा। उत्तरोत्तर परिणाम की शुद्धि हो रही है।

चौथा भाई बोला—'प्रशाखा को तोड़ने से भी मतलब क्या है। केवल एक टहनी को तोड़ लो। हमारे लिए तो इतना ही पर्याप्त है।'

यह तेजोलेश्या का परिणाम है। एक श्रावक का जीवन, एक धार्मिक का जीवन यहां से प्रारम्भ होता है कि अनावश्यक हिंसा मत करो।

पांचवां बोला—‘हम टहनी भी क्यों तोड़ें? जामुन के गुच्छे लटक रहे हैं। गुच्छों को ही तोड़ लो। डाली को तोड़ने की कोई जरूरत नहीं है। अनावश्यक काम क्यों करें?’ यह चिन्तन है पद्म लेश्या की भावधारा का परिणाम। यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह एक धार्मिक का विवेक है कि कोई भी काम करना पड़ता है पर अनावश्यक हिंसा मत करो, अनावश्यक किसी को मत सताओ।

छठा बोला—‘पूरे गुच्छे को तोड़ने की भी जरूरत नहीं है। नीचे कितने पके हुए जामुन बिखरे पड़े हैं। वे हमारे लिए पर्याप्त हैं। इन्हें चुन कर खा लें, हमारी क्षुधा शांत हो जाएगी।’

यह है शुक्ल लेश्या की भावधारा का परिणाम।

प्रत्येक व्यक्ति के मन में यह प्रश्न उभरना चाहिए कि मैं किस लेश्या में जी रहा हूँ? राजा प्रियंकर के मन में यही प्रश्न उठा। मुनि कीर्तिधर ने कृष्ण लेश्या के लक्षण बतलाते हुए कहा—‘प्रियंकर! इन लक्षणों के आधार पर कृष्ण लेश्या प्रधान व्यक्तित्व का मूल्यांकन हो सकता है।’

किस लेश्या में जी रहे हैं आप? (३)

मुनि कीर्तिधर ने कृष्ण लेश्या के लक्षणों का विश्लेषण किया। लेश्या का सिद्धान्त समझाया। राजा प्रियंकर बोला—‘महाराज! आपका कथन सही प्रतीत होता है। ऐसा होता भी है। एक आदमी बहुत क्रूर होता है। दूसरा कम क्रूर होता है। तीसरा उससे कम होता है। मैंने करुणा में भी तारतम्य देखा है। एक व्यक्ति में करुणा कम है और एक में करुणा अधिक। किसी व्यक्ति में उससे भी ज्यादा करुणा दिखाई देती है। यह तरतमता समाज में देखने को मिलती है। अलग-अलग प्रकार के व्यक्ति होते हैं पर महाराज ऐसा होता क्यों है? कारण क्या है? मेरे सामने भी ऐसी घटनाएं आई हैं। पर क्यों होता है?’

मुनि ने कहा—‘राजन्! यही तो बता रहा हूं। जो हमारा व्यवहार होता है वह लेश्या के आधार पर होता है। यह सूत्र बना लो—जैसी लेश्या वैसा व्यवहार। तुम व्यवहार देखकर समझ लो कि किस प्रकार की लेश्या है। मेडिकल साइंस का सूत्र है—जैसा न्यूरोट्रान्समीटर वैसा व्यवहार। एक प्रकार का प्रोटीन बनता है दिमाग में। जैसा न्यूरोट्रान्समीटर होता है, वैसा व्यवहार होता है। जैन दर्शन का सूत्र यह है—जैसी लेश्या होती है वैसा व्यवहार होता है। प्राणी का व्यवहार लेश्या से जुड़ा हुआ है।

अपराध में तरतमता

प्रियंकर बोला—महाराज! हम लोग शासक हैं। शासक के सामने अनेक स्थितियां, अनेक घटनाएं आती रहती हैं। एक घटना मैं आपको सुनाऊं। एक बार हमारी सेना ने चोरों के छह सरदारों को गिरफ्तार किया। वे गांव पर डाका डालने के लिए, लूट-खसोट के लिए आए थे। सैनिकों को पता लग गया और उनको गिरफ्तार कर लिया। गिरफ्तार करने के बाद उन्हें न्यायाधीश के सामने प्रस्तुत किया गया। सब सरदारों ने अपना अपना अपराध स्वीकार किया। लेकिन उनके अपराधों में तरतमता थी। उन्होंने अपने अपराध का चित्र स्वयं प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा—हम सब साथ में मिलकर गए। हमने सोचा—यहां

३२ पथ चुनें पर कौन-सा

बहुत धनमाल है और अपने को खूब मिलेगा। हमने विचार-विमर्श किया पर सबका चिन्तन अलग-अलग रहा।

‘योजना क्या बनानी है? सबसे पहले एक काम करो—गांव में जाओ, हमला करो और प्राणी नाम की चीज को भी मत रहने दो। पशु-पक्षी भी खतरनाक होते हैं। चिड़िया भी बड़ी खतरनाक होती है। कभी सूचना दे देती है। कबूतर को भी मत रहने दो। कौओं को भी मत रहने दो। वह बड़ा चालाक होता है। मनुष्य, तिर्यच, पशु-पक्षी जितने हैं पहले सबको मार डालो। फिर हम सारा सामान लूट लें’—पहले सरदार ने अपना अपराध स्वीकार करते हुए कहा।

दूसरा सरदार बोला—‘अरे भई! इतने क्रूर क्यों बनें? इतना क्रूर होना अच्छा नहीं है। थोड़ा चिन्तन करें। हमें तो धन लेना है, सामान लेना है, माल लेना है तो फिर बेचारे पशु-पक्षी क्या बिगाड़ते हैं? हम पशुओं को क्यों मारें? इन गाय, भैंस, बैल, गधे—गांव में रहने वाले जितने पशु हैं, मोर, कबूतर आदि पक्षी हैं, इनको क्यों मारें? हमें क्या लेना देना है? केवल मनुष्यों को मार दें।’

अपराध की एक श्रेणी यह है कि सबको मार डालें। दूसरी श्रेणी यह है—पशु-पक्षियों को मत मारो, केवल मनुष्यों को ही मारो।

तीसरा सरदार बोला—‘भाई! स्त्रियों ने क्या बिगाड़ा है? स्त्रियां तो कुछ करती नहीं हैं। बाधक बन सकते हैं पुरुष। पुरुषों को मार दो, स्त्रियों को मत मारो। स्त्रियां क्या बिगाड़ेंगी? वे कुछ कर नहीं पाएंगी। रामायण में आता है—स्त्री तो कान पकड़ी हुई बकरी है। आप क्यों चिन्ता करते हैं?’

तीन विचार हो गए—

१. मनुष्य, पशु-पक्षी सबको मारो।
२. पशु-पक्षियों को मत मारो।
३. स्त्रियों को मत मारो।

चौथा सरदार बोला—‘तुम कहते हो कि पुरुषों को मारो पर सब पुरुषों ने हमारा क्या बिगाड़ा है? यह हो सकता है कि जिनके हाथ में शस्त्र हैं, उनको मारो। अन्यथा कहीं खतरा पैदा कर देंगे। जिनके हाथ में शस्त्र नहीं हैं, निहत्थे हैं उन निहत्थे लोगों को मारने का मतलब क्या है?’

बस में जा रहे हैं, ट्रेन में जा रहे हैं, यात्रा कर रहे हैं और वहां जाकर दनादन गोलियां चलाई। पचास-सौ लोगों को भून डाला। कैसे निरपराध लोगों

पथ चुनें पर कौन-सा ३३

को मार दिया जाता है? आज तो यह एक बड़ी समस्या बन गई है पूरे संसार की। आतंकवाद और निरपराध लोगों को मारना बड़ी समस्या है।

पांचवां विचार आया—‘भाई! जिनके पास शस्त्र हैं, उनको भी क्यों मारें? उन्होंने हमारा क्या बिगाड़ा? जो शस्त्र का प्रहार करें उनको मार डालें। जो छेड़छाड़ न करे उस पर हम वार न करें।’

छठा सरदार बोला—‘भाई! मुझे तो तुम्हारे विचारों में समझदारी का अंश भी नहीं लगता। एक तो धन लूटते हो और फिर मारते भी हो। यह क्यों? आखिर तो धन लेना है। बस धन ले लो, पर मारो मत किसी को।’

शोधन होता है विचार का भी

‘कहां से चले और कहां पहुंच गए?’ ‘सबको मार डालो’ से चले और ‘किसी को मत मारो’ तक पहुंच गए। करेला का फल कड़वा होता है। शाक बनाने से पहले उसे धोया जाता है इसलिए कि कड़वाकट कम हो जाए। करेले को धोते-धोते कड़वाहट कम हो जाती है। करेले का शोधन होता है। पानी का भी शोधन होता है। हम लोगों ने बहुत किया है। यात्राओं में ऐसा-ऐसा पानी आया, जिसको धुंधला-गंदला कह सकते हैं—आधा पानी, आधी मिट्टी। आज पानी की व्यवस्था काफी सुधर गई। पूज्य कालूगणी की यात्रा हुई। गांवों में जाते। गांवों में तालाब का पानी—आधी मिट्टी, आधा पानी जैसा आता, ऐसा लगता जैसे कोई ठण्डाई लाए हैं। पीना मुश्किल होता। फिटकरी लाते, उसमें घोलते तब सारी मिट्टी नीचे जम जाती और साफ पानी निथर कर ऊपर आ जाता। उस पानी को काम में लिया जाता। फिर भी मिट्टी की गंध तो आती ही थी। ऐसा पानी बहुत वर्षों तक शोधन कर काम में लिया।

विचार का भी शोधन होता है। उत्तरोत्तर शोधन होता रहता है। विचार कहां से चलता है और कहां तक पहुंच जाता है?

आज की सामाजिक समस्या पर विचार करें। कितने लोग अहेतुक मारे जाते हैं, बिना मतलब मारे जाते हैं। दुकान में बैठा है। कोई आया, गोली चला दी, मर गया। असम, पंजाब, मेघालय, बिहार, उत्तरप्रदेश आदि प्रांतों में जो निरपराध व्यक्तियों की हिंसा का कृत्य होता रहा है, आयरलैण्ड, ब्रिटेन आदि अनेक देश आक्रांत हैं इस समस्या से।

सन् १९६६ की घटना है। लाजपतनगर, दिल्ली में बम विस्फोट हुआ। कारों ऐसे उछल गईं, जैसे कोई गेंद उछाली हो। राजस्थान, मुंबई आदि में

३४ पथ चुनें पर कौन-सा

भी ऐसी घटनाएं हो चुकी हैं। यह सारा कृष्ण लेश्या का परिणाम है। जिन व्यक्तियों में कृष्ण लेश्या होती है वे इस भाषा में सोचते हैं कि सबको मार डालो। वहां कोई विकल्प नहीं होता, कोई दूसरा चिन्तन नहीं होता। यह अपराधी है या निरपराध? इसने कोई गुनाह किया या नहीं? कोई चिन्तन नहीं होता। बस केवल मारना लक्ष्य बन जाता है।

बारह मास चलता है लेश्या का खेल

यह चिन्तन का तारतम्य हर क्षेत्र में देखने को मिलता है। परिवार में भी मिलता है। कभी-कभी घर का मुखिया अपने पुत्र पर इतना रुष्ट हो जाता है कि उसे घर से निकाल देता है। लोटा थाली भी नहीं देता। सास बहू के प्रति और बहू सास के प्रति, पिता पुत्र के प्रति और पुत्र पिता के प्रति, भाई भाई के प्रति, कितना क्या करता है। कल ही एक भाई ने बताया—पुत्रवधू और उसके पीहर पक्ष के लोगों ने मिलकर मेरे पुत्र पर ऐसा तांत्रिक प्रयोग कर दिया कि हम सदा सुखी रहने वाले छह महीनों से भयंकर दुःख भोग रहे हैं। यह क्या है? क्यों होता है? यह लेश्या का ही खेल है। शायद ये और इस प्रकार के जितने खेल होते हैं, उनमें कुछ तो ऐसे होते हैं, जो एक समय होते हैं। पांच-दस दिन बाद बंद हो जाते हैं। फिर कोई नया दूसरा चलता है। पर यह लेश्या का खेल तो बारह मास चलता है, सोते-जागते निरन्तर चलता है। यह इतना भीतर का खेल है कि आदमी को नचाता रहता है। एक प्रकार से मान लें कि आदमी लेश्या की कठपुतली है। भीतर में जैसी लेश्या, वैसा ही व्यवहार करने लग जाता है। व्यवहार-मनोवैज्ञानिकों ने व्यवहार के आधार पर मन की मीमांसा की है किन्तु लेश्या के सिद्धांत के द्वारा मनुष्य के व्यवहार की जितनी व्याख्या की जा सकती है उतनी शायद अन्यत्र दुर्लभ है।

प्रियंकर बोला—महाराज! आप अन्तरजगत् की जो बात कह रहे हैं वह बिल्कुल सही है। ऐसा ही होता है। मैं यह जानना चाहता हूं कि नील लेश्या को कैसे जाना जाए? उसे जानने का तरीका क्या है? उसके लक्षण क्या हैं?

मुनि बोले—

अलसो मंदबुद्धिश्चः स्त्रीलुब्धः परवंचकः।
कातरश्च सदा मानी, नीललेश्याधिको नरः॥

अलसता

नील लेश्या का एक लक्षण है—अलसता। जो आदमी बहुत आलसी है, कोई काम नहीं करता, पड़ा रहता है। यह अलसता नील लेश्या का परिणाम

पथ चुनें पर कौन-सा ३५

है। आदमी की बड़ी विचित्र स्थिति होती है। कल ही एक बहन का पत्र आया। उसने लिखा—‘मेरे पति की स्थिति क्या है? पढ़ा-लिखा है, एम.एड. है। अब यह स्थिति है कि घर से बाहर जाने में ही डर लगता है। इतना आलसी और निष्क्रिय बन गया कि कोई चेष्टा नहीं कर सकता।’ उसने ऐसी बात लिख दी, जिसे कहने में भी संकोच होता है—‘शौच के लिए भी जैसे बच्चे को ले जाया जाता है, वह क्रिया उसके लिए करनी पड़ती है।’ हम कल्पना नहीं कर सकते कि ऐसा क्यों होता है। यह भी लेश्या का ही कारण है। भीतर में ऐसी लेश्या का प्रभाव होता है कि आदमी की सारी प्रवृत्तियां, चेष्टाएं समाप्त हो जाती हैं, वह निष्क्रिय—क्रियाशून्य बन जाता है। बस आठों याम पड़ा रहता है, नींद लेता रहता है। यह अलसता नील लेश्याजनित एक व्यवहार है।

जो प्रशस्त लेश्या में होते हैं, वे कभी आलसी नहीं होते। उनकी सक्रियता बनी रहती है। हमारे धर्मसंघ में जो आचार्य हुए हैं, बड़े-बड़े साधु-साध्वियां हुए हैं, वे जीवन भर पुरुषार्थी और सक्रिय रहे हैं। आचार्य भिक्षु का जीवन देखें, अंतिम समय का वर्णन पढ़ें। जयाचार्य ने, हेमराज जी स्वामी और बेणीरामजी स्वामी ने स्वर्गारोहण के वर्ष का विस्तार से वर्णन किया है, जो तथ्य बतलाये हैं, उनमें उनके अदम्य पुरुषार्थ की कथा है। आचार्य भिक्षु तब तक गोचरी भी करते थे, पंचमी भी बाहर जंगल में बहुत दूर जाते थे। खड़े-खड़े प्रतिक्रमण करते थे। प्रसिद्ध घटना है—स्वामीजी से कहा गया—महाराज! अब आपकी अवस्था है। आप विराज कर प्रतिक्रमण करो। तब स्वामीजी ने कहा—‘भाई! मैं खड़े-खड़े करता हूं तो आने वाले बैठे-बैठे तो करेंगे। अगर मैं बैठा-बैठा करूंगा तो आने वाले लेटे-लेटे करेंगे।’

पूज्य गुरुदेव तुलसी का जीवन देखें। जीवन के अंतिम वर्ष—८३वें वर्ष में भी खड़े-खड़े प्रतिक्रमण करते रहे। निरन्तर सचेष्टता और सक्रियता। कभी देख लो—पन्ना और लेखनी हाथ में रहती। अध्यापन, अध्ययन या बातचीत—हर क्षण काम चलता रहता। यह निरन्तर सक्रियता सीखने की बात है।

आलसी होना बहुत खतरनाक होता है। उसका व्यवहार भी उपहास का कारण बनता है। आलसी लोगों के बारे में अनेक प्राचीन कहानियां प्रचलित हैं जो बड़ी मर्मवेधी हैं।

आम के पेड़ के नीचे दो आदमी सो रहे थे। उधर से घोड़े पर सवार एक ठाकुर साहब तेजगति से जा रहे थे। ठाकुर साहब को देखते ही सोया हुआ

आदमी चिल्लाया—‘ठाकुर साहब! जरा इधर आओ।’ ठाकुर ने सोचा—बेचारा कोई दुःखी होगा। ठाकुर पास में आ गये, बोले—‘भाई! बोलो क्या बात है? कोई कठिनाई है?’

‘ठाकुर साहब! कठिनाई तो और कुछ नहीं है।’

‘फिर क्या बात है?’

‘ठाकुर साहब! यह आम पड़ा है। इसको मेरे मुंह में निचोड़ दो।’

ठाकुर ने कहा—‘मूर्ख कहीं का। बिना मतलब मुझको बुलाया। अरे! यह काम तो तेरे पास में जो सोया हुआ है, वह भी कर देता।’

उसी क्षण वह सोया हुआ आदमी बोल उठा—‘ठाकुर साहब! मैं क्यों करूं? यह बड़ा आलसी आदमी है। रात की बात सुनाऊं। रात को मेरा मुंह कुत्ता चाटता रहा। मैंने इसको कितनी बार कहा कि कुत्ते को हटा दो पर इसने नहीं हटाया। मैं इसके मुंह में आम कैसे निचोड़ूं?’

यह व्यवहार क्यों बनता है? कैसे बनता है? भीतर में अगर व्यवहार का घटक कोई तत्त्व नहीं है तो इस प्रकार का व्यवहार कभी बनता नहीं। जब नील लेश्या का भाव भीतर में होता है तब आदमी इतना अकर्मण्य, इतना आलसी, प्रमादी और निकम्मा बन जाता है।

मंदबुद्धि

नील लेश्या का दूसरा लक्षण है—मंदबुद्धि। जो नील लेश्या से प्रभावित होता है, उसमें बुद्धि की जड़ता होती है। वह कुछ भी नहीं समझ पाता। उसे कुछ भी पता नहीं चलता। पढ़ने की बात तो दूर है, समझने की शक्ति भी नहीं होती।

काम भोग की सतत स्मृति

नील लेश्या का तीसरा लक्षण है—काम भोग की तीव्र अभिलाषा। व्यक्ति वासना से ज्यादा पीड़ित रहता है, वासना बहुत सताती है। निरन्तर काम भोग की प्रवृत्ति रहती है, और कोई काम नहीं रहता। प्रियता, वासना, अच्छा खाना—बस उसी में दृष्टि और शक्ति लगी रहती है।

पर-वंचना

नील लेश्या का चौथा लक्षण है—पर-वंचना। वह दूसरों को ठगने में रस लेता है, हमेशा ठगाई की वृत्ति रहती है। यह माया का काम भी बड़ा विचित्र

पथ चुनें पर कौन-सा ३७

है। ऐसा जाल बिछाती है कि कहीं भी मौका आता है तो चूकती नहीं है। माया की घटनाएं भी बहुत सामने आती हैं—किस प्रकार कपट किया और सारा ले लिया। आजकल भी ऐसी घटनाएं सुनते हैं। वृद्ध व्यक्ति बीमार है। स्वयं का पूरा चेता नहीं है, ध्यान नहीं है, सोचते हैं—हस्ताक्षर करा लें। कागज पर हस्ताक्षर करा लिए और सारी सम्पत्ति को हड़प लिया। क्योंकि बैंकों से धन निकालने के लिए हस्ताक्षर चाहिए। हस्ताक्षर मिल गया तो सारी सम्पत्ति को हड़प सकते हैं। इस प्रकार न जाने कितनी घटनाएं होती हैं। कोई स्त्री छोटी अवस्था में विधवा हो जाती है। सबसे पहले और चिन्ता नहीं होती। चाहे शव पड़ा है पति का, उसकी भी चिन्ता नहीं। परिवार को चिन्ता यह है कि इसका हस्ताक्षर पहले ले लें। बड़ी विचित्र स्थिति होती है। कपट की बहुत जटिल समस्या है। ठीक कहा गया—दुनिया में सबसे ज्यादा अविश्वास पैदा करने का कोई तत्व है तो वह है माया। एक तरह से माया और झूठ दोनों सहचारी हैं।

आचार्य सोमदेवसूरि का श्लोक बहुत मार्मिक है—

मायामविश्वासविलासमंदिरं, दुराशयो यः कुरुते धनाशया।
सोऽनर्थसार्थं न पतन्तमीक्षते, यथा बिडालो लगुडं पयः पिबन्॥

माया अविश्वास का स्थान है। जो दुराशय से युक्त व्यक्ति धन की आशा से माया रचते हैं वे अनर्थ को उसी प्रकार नहीं देखते, जिस प्रकार दूध पीती हुई बिल्ली लाठी की मार को नहीं देखती।

बिल्ली दूध की बड़ी शौकीन होती है। उसे मलाईदार दूध पड़ा मिल गया, पीना शुरू कर दिया। घर का मालिक आ गया, लाठी से पिटाई शुरू कर दी। बिल्ली पिटाई को सहती रहती है पर दूध को नहीं छोड़ पाती। वह मार खाती जाती है, दूध पीती चली जाती है। दूध के लिए मार की भी उपेक्षा कर देती है। वैसे ही दुराशय—बुरे विचार वाला आदमी दूसरे के धन को हड़पने के लिए, दूसरे के अधिकारों पर अपना कब्जा करने के लिए कपट का जाल रचता है। ऐसा मायाजाल रचते समय वह अनर्थ को नहीं देखता। वह अनर्थ को जानते-देखते हुए भी उसे अस्वीकार कर देता है, अनजाना कर देता है। जाल बिछाने वालों की दुनिया में कमी नहीं है। जाल बिछाकर कितने पक्षियों को पकड़ा जाता है। तोता, चिड़िया आदि पक्षी जाल में फंस जाते हैं। समुद्र में जाल बिछाते हैं, मछलियां जाल में फंस जाती हैं। यह जाल बिछाने की जो मनोवृत्ति है यह नील लेश्या का व्यवहार है।

३८ पथ चुनें पर कौन-सा

कायरता

नील लेश्या का पांचवां लक्षण है कातरता। एक आदमी कायर बहुत होता है, निरन्तर डरता रहता है। बस थोड़ा-सा कहते हैं, प्रकंपित हो जाता है। राजस्थानी का एक शब्द है—‘खड़को।’ थोड़ी सी हलचल होती है, धूजने लग जाता है। अनेक मनुष्य छिपकली, चींटी, चूहे आदि से डरते हैं। मैंने ऐसे व्यक्ति को देखा है, जो चूहे को देखते ही इस प्रकार भागता है, जैसे कोई शेर ही आ गया हो। बिल्ली और कुत्ते की तो बात छोड़ दें। शेर आए तो पता नहीं क्या हो जाए?

दो भाई जा रहे थे। एक भाई बोला—अगर शेर आ गया तो तुम क्या करोगे?

वह बोला—मैं क्या करूंगा? जो करना है वही करेगा।

जहां पराक्रम नहीं, विक्रम नहीं, शौर्य नहीं, वहां ऐसा व्यवहार होता है। यह नील लेश्या का लक्षण है।

अहंकार

नील लेश्या का छठा लक्षण है अहंकार। व्यक्ति में इतना भारी अहंकार है कि वह अपने आपको सबसे बड़ा मानता है। मैं तो बहुत बार सोचता हूं कि इस दुनिया में अहंकार करने का किसी को अधिकार ही नहीं है। आदमी अहंकार क्यों करता है? एक आदमी बहुत बड़ा धनी है। वह धन का अहंकार करता है। पर जब दूसरा बड़ा धनी सामने आता है तब लगता है कि उसके सामने तो कुछ भी नहीं है। कहते हैं कि अमुक-अमुक व्यक्ति हिन्दुस्तान के बड़े धनी हैं, जिनके पास चार हजार करोड़ की सम्पदा है, आठ हजार करोड़ की सम्पदा है। किन्तु जापान, उत्तर व दक्षिण कोरिया, ताईवान, अमेरिका आदि में इनसे भी बड़े धनी हैं। आज ही एक भाई ने बताया—‘हमारा जिससे सम्पर्क है, उसके चार कम्पनियां हैं और एक-एक कम्पनी इतनी बड़ी है कि एक राज्य का पूरा बजट हो जाए। धन-सम्पत्ति का पार ही नहीं है। हम किस बात का अहंकार करें?’

क्या ज्ञान का अहंकार करें? दुनिया में एक से एक बड़े ज्ञानी बैठे हैं। यह कोई अहंकार करने का कारण नहीं है।

मान लीजिए—अभी सब कुछ है। पर पता नहीं कि पांच मिनट के बाद क्या होगा? आदमी रहेगा या नहीं?

अहंकार का कोई कारण नहीं है फिर भी आदमी अहंकार करता है। इसका हेतु है—नील लेश्या काम कर रही है। हमारी तो ऐसी मनोवृत्ति है कि कोई व्यक्ति आए और यह परिचय दे कि यह बहुत बड़ा धनी है तो उससे बात करने की ज्यादा इच्छा भी नहीं रहती। क्योंकि धन के साथ अहंकार जुड़ा रहता है। जो विनम्र होता है, उसके साथ समय लगाने की भी इच्छा रहती है। मन में एक आकर्षण होता है।

आदमी को पद और सत्ता का अहंकार होता है। जब तक पद पर रहता है, अहंकार से भरा रहता है। जैसे ही पद से उतरता है, अहंकार चूर-चूर हो जाता है। अमेरिकी राष्ट्रपति निकसन ने कहा था—एक समय था कि लोगों को मैं समय नहीं दे पाता था, बड़ी भीड़ रहती थी समय लेने वालों की, पर मुझे फुरसत नहीं मिलती थी। आज यह स्थिति बन गई है कि मैं खाली हूँ, मेरे पास समय ही समय है पर आने के लिए किसी के पास फुरसत नहीं है।

अमेरिका का राष्ट्रपति दुनिया का सबसे शक्तिशाली व्यक्ति माना जाता है। गद्दी से उतरने के बाद सामान्य स्थिति में आ जाता है। हम किस बात का अहंकार करें। जिस व्यक्ति में अहंकार का भाव प्रबल है तो समझ लेना चाहिए कि वह नील लेश्या में जी रहा है। मुझे इससे बचना है।

मुनि कीर्तिधर ने कहा—‘प्रियंकर! नील लेश्या की परिणाम-धारा कृष्ण लेश्या से कुछ बेहतर है। किन्तु यह भावधारा भी प्रशस्त नहीं है। इस लेश्या में जीने वाले व्यक्ति की भावनाएं अप्रशस्त होती हैं। अप्रशस्त भावना कभी उज्ज्वल भविष्य की लिपि का विन्यास नहीं कर सकती।

किस लेश्या में जी रहे हैं आप? (४)

जीवन में अपने आपको जानने के अवसर बहुत कम आते हैं। कभी-कभी मौका मिलता है जब व्यक्ति अपने आपको जानने का प्रयत्न करता है। इसीलिए प्रेक्षाध्यान का मूल सूत्र रहा—‘संपिक्खए अप्पगमप्पएणं’ आत्मा के द्वारा आत्मा को देखो। दूसरों को देखना तो सहज सरल है, प्रकृतिसिद्ध है। एक छोटा बच्चा भी दूसरे को देखता है। कोई छोटा बच्चा आता है, सबसे पहले ध्यान जाता है घड़ी पर। कोई चश्मा पड़ा है तो चश्मे पर। थोड़ा और बड़ा हो जाता है तो सीधा ध्यान जाता है बटन पर—मोबाइल चलाओ, टी.वी. चलाओ, पंखा चलाओ। दूसरे पर ध्यान देना तो जन्मसिद्ध है। अपने आपको देखना, अपने आपको जानना, अपने आपको समझना और अपने आप से परिचित होना बहुत कठिन है।

अपने आपको जानने का सिद्धांत

एक छोटी लड़की ने आज फोटो लिया। मैंने कहा—दूसरे का फोटो लेती हो, कभी अपना भी फोटो लिया या नहीं? पास में मां खड़ी थी, वह बोली—‘अपना फोटो तो स्वयं कैसे लेगी? दूसरा ही लेगा।’

मैंने कहा—‘पहले अपना फोटो लेना भी सीखें, फिर कोई दूसरे का फोटो लें।’

अपना चित्र खींचना बहुत कठिन है किन्तु कोई ऐसा अवसर आता है, ऐसा क्षण आता है जब अपने भीतर जाने का, अपने घर में जाने का और अपने आपको पहचानने का अवसर मिलता है। यह लेश्या का सिद्धान्त अपने आपको जानने का सिद्धान्त है। मेरे भीतर में क्या हो रहा है? बाहर से तो अच्छा लग रहा हूँ पर भीतर में क्या चल रहा है? उसे जानना बहुत जरूरी होता है।

प्रियंकर को मुनि कीर्तिधर का सान्निध्य मिल गया। जब उसने साक्षात् देखा कि कैसे पिता का देहावसान हुआ और कैसे शक्तिशाली राजा कीड़ा बना। उसका अंतःकरण आंदोलित हो गया। उसने सोचा—मैं इससे बचूँ। कभी मुझे कीड़ा न बनना पड़े, मुझे पशु योनि में न जाना पड़े, मुझे नरक में न जाना पड़े।

पथ चुनें पर कौन-सा ४१

प्रियंकर बोला—महाराज! कृष्णलेश्या और नीललेश्या का व्यवहार आपने बताया। मैंने उसे ध्यान से सुना। सुनने के साथ-साथ अपने आपको तौल रहा हूँ कि मैं कैसा हूँ? मेरे भीतर क्या-क्या होता है? दूसरे को पता चले या न चले, स्वयं को तो पता है कि मेरे भीतर कौनसा भाव आता है? कैसे आता है? कब-कब आता है? क्या स्थिति बनती है? मैं इसे जानता हूँ, इसलिए महाराज! अब आप कापोत लेश्या के लक्षण भी बताएं। उसका व्यवहार कैसा होता है? व्यवहार से हम जान सकेंगे कि कब-कब यह मन या आत्मा, जीव कापोत लेश्या में परिणत होता है।

मुनि कीर्तिधर बोले—

शोकाकुलो सदा रुष्टः, परनिन्दात्मशंसकः।

संग्रामे दारुणो दुःस्थ, कापोतक उदाहृतः॥

कापोत लेश्या के ये छह लक्षण हैं। जो शोकाकुल है, सदा रुष्ट रहता है, दूसरों की निंदा और अपनी प्रशंसा करता रहता है, संग्राम में दारुण है, दुःस्थ है, वह कापोत लेश्या में जीता है।

शोकाकुल

कापोत लेश्या का पहला लक्षण है—शोकाकुलः। जो आदमी सदा शोकाकुल रहता है, शोक की स्थिति बनी रहती है वह कापोत लेश्या में जीता है। यह तो कदाचित् होता है कि घर का कोई प्रिय व्यक्ति चला गया, शोक की स्थिति आ गई। यह किसी समय आने वाली घटना है किन्तु एक ऐसी मनोवृत्ति है कि जब कभी देखो, शोक-मग्न रहता है। चिन्ता और शोक की स्थिति बनी रहती है। शोक कभी छूटता ही नहीं है। प्रिय का वियोग होने पर शोक मनाया जाता है। आजकल तो कुछ लोग मृतक-शोक का उसी दिन समापन कर देते हैं, कुछ तीन दिन में करते हैं अथवा सात दिन में करते हैं, बारह दिन में प्रायः सभी शोक का समापन कर देते हैं। कोई बहुत ज्यादा रूढ़िवादी हो तो महीनों तक चला देते हैं। पुराने जमाने में मारवाड़-मेवाड़ में और थली में भी, लम्बे समय तक शोक चलता रहता था। बारह-बारह महीनों तक शोक चला देते थे। कहीं-कहीं तो ऐसी प्रथा रही कि विधवा होने वाली महिला दो-तीन वर्ष तक एक स्थान पर बैठी रहती। उसके घुटने भी शोक में जाम हो जाते। आज शोक की वे स्थितियां सम्पन्न हो गईं। इसमें 'नया मोड़' अभियान ने बहुत काम किया है।

४२ पथ चुनें पर कौन-सा

पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी ने नया मोड़ का अभियान चलाया। तेरापंथ द्विशताब्दी पर नया मोड़ का कार्य शुरू हुआ। उसने सचमुच तेरापंथ समाज को नया मोड़ दिया है, काफी परिवर्तन हुआ है। जो औपचारिक लोकोपचार अथवा शोक की बात थी वह सम्पन्न हो गई, किन्तु यह कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या से होने वाला शोक नया मोड़ से नहीं मिटता। वह तो व्यक्ति मोड़ ले तभी मिट सकता है। आज उसके लिए भी मोड़ की आवश्यकता है। कहा गया—

**शोकस्थानं सहस्राणि भयस्थानं शतानि च।
दिवसे दिवसे मूढमाविशंति न पंडितम्॥**

शोक के सैकड़ों-हजारों स्थान हैं। हर बात पर शोक हो सकता है। जब यह कापोत लेश्या का परिणाम आता है, शोक बना रहता है। जो आदमी ज्यादा शोक करे, हर बात पर शोक करे तो समझ लेना चाहिए कि यह व्यक्ति कापोत लेश्या प्रधान है, इसमें कापोत लेश्या ज्यादा रहती है इसलिए हर बात में शोक करता है। थोड़ा-सा कुछ हो गया, शोक में चला गया। बच्चे के थोड़ी-सी चोट लग गई, शोक हो गया। कहीं बच्चा चला गया तो शोक हो जाता है। सोचता है—बाहर गया है, पता नहीं क्या होगा? वह बाहर अच्छी तरह से घूम रहा है और व्यक्ति भीतर बैठा-बैठा शोक कर रहा है। यह शोक की जो मनोवृत्ति है, वह कापोत लेश्या का परिणाम है।

निरन्तर आक्रोश

कापोत लेश्या का दूसरा लक्षण है—सदा रुष्टः। सदा रोष में रहता है, राजी कभी होता ही नहीं। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो कभी तुष्ट नहीं होते। एक होता है सदा रुष्ट। एक होता है सदा तुष्ट। एक होता है कभी रुष्ट और कभी तुष्ट—आशु-तोष आशु-रोष। पौराणिक परम्परा में शिव के लिए कहा जाता है आशु-रोष आशु-तोष। शिव राजी भी बहुत जल्दी होते हैं, नाराज भी बहुत जल्दी होते हैं। वरदान भी बहुत जल्दी देते हैं और अभिशाप भी। दुनिया में कुछ लोग ऐसे मिलेंगे, जिनको हंसता हुआ देखना मुश्किल है। वे मुस्कराना तो जानते ही नहीं हैं। प्रसन्नता किसको कहते हैं, उनको पता ही नहीं है। थोड़ी-सी मन के प्रतिकूल बात हुई और तत्काल पारा चढ़ जाता है, उतरता ही नहीं। चेहरे पर जैसे रोष की रेखाएं बनी रहती हैं। हमेशा मस्तक पर सलवटें खींची हुई रहेंगी, आंख में लाल डोरे बने रहेंगे। उन्हें न बतलाओ तब तक ही ठीक

पथ चुनें पर कौन-सा ४३

है। बिना बतलाए भी क्रोध उफनता है। यदि बतलाओ तो न जाने क्या होगा ? यह सदा रुष्ट रहना—कापोत लेश्या का परिणाम है। ऐसा व्यवहार हो तो समझ लेना चाहिए कि यह व्यक्ति कापोत लेश्या प्रधान है।

स्व-प्रशंसा

कापोत लेश्या का तीसरा लक्षण है अपनी प्रशंसा। व्यक्ति अपनी श्लाघा बहुत करता है, अपने गुण का बखान बहुत करता है, अपने बड़प्पन का बखान बहुत करता है। मैंने ऐसा कर लिया, मैंने वैसा कर लिया। अपनी प्रशंसा, अपने बड़प्पन की बात करता रहता है। ऐसी प्रकृति के बहुत लोग हैं। आजकल सर्वे करने की पद्धति है। अगर सौ आदमियों के व्यवहारों का सर्वे किया जाए तो उनमें अनेक लेश्याओं के लक्षण मिल जाएंगे। अपनी श्लाघा करने वाले भी बहुत मिलेंगे। वे इस प्रकार अपनी बात शुरू करते हैं कि उसका सम्पन्न होना मुश्किल हो जाता है। बात का अर्थ तो होता है, इति नहीं होती। सुनते ही चले जाओ, वे बोलते अघाते नहीं हैं।

पर-निंदा

कापोत लेश्या का चौथा लक्षण है पर-निंदा। दूसरे की निंदा करने की आदत होती है। उसने ऐसा किया, उसने वैसा किया, उसमें वह कमी है, उसमें वह कमी है—दूसरे की निंदा ही निंदा। हम सब जानते हैं कि इस शरीर में रहने वाला कोई भी व्यक्ति और इस लेश्या-चक्र में जीने वाला कोई भी व्यक्ति परिपूर्ण नहीं होता। किसी में कभी कृष्ण लेश्या की प्रवृत्ति जागती है, कभी नील लेश्या की प्रवृत्ति जागती है और कभी कापोत लेश्या का चक्र चलता है। जैसे हमारे श्वास का एक चक्र होता है और उसके आधार पर हमारे स्वर का भी चक्र चलता है। कभी बायां स्वर चलता है, कभी दायां चलता है। एक डेढ़ घंटा के बाद यह चक्र बदलता रहता है। जैसे स्वर का चक्र चलता है, नाड़ी का चक्र चलता है—ये सारे चक्र चलते हैं जैसे ही लेश्या का भी चक्र चलता है। कभी कृष्ण लेश्या, कभी नील लेश्या, कभी कापोत लेश्या और कभी-कभी तेजो लेश्या भी आती है। जब आदमी चिन्तन की गहराई में जाता है और सोचता है कि यह मैंने क्या किया ? उस समय तेजो लेश्या भी आ जाती है। जब-जब व्यक्ति कापोत लेश्या में जाता है तब दूसरे की निंदा, दूसरे की कमियों को देखना, दूसरे की कमियों का बखान करना शुरू कर देता है। व्यक्ति पर-निंदा में रस लेता है तो समझ लेना चाहिए कि यह अभी कापोत लेश्या में जी रहा है इसलिए ऐसा कर रहा है। जब कापोत लेश्या का परिणाम

४४ पथ चुनें पर कौन-सा

आता है तो अपने आप वैसा करने लग जाता है। इसमें उसका दोष क्यों मानें? हम दोष इसलिए मानते हैं कि वह अमुक लेश्या में कैसे गया? वह स्वयं ही तो गया है। इसीलिए कहा गया—‘सदा तौलते रहे मुझको, कभी अपने आपको भी तौलो’। दूसरों को तौलने का सदा प्रयत्न करते रहे, कभी अपने आपको भी तौलो। एक तराजू ऐसा भी लाओ, जो खुद को तौल सके। हम खुद को कभी नहीं तौलते। कमी दूसरों की देखते हैं। अरे! कमी किसमें नहीं है? तराजू सबको तौलता है पर जब कमी की ओर ध्यान दें तो तराजू भी अच्छा नहीं है—

**प्रामाणिक पद गहि तुला, यह तुम करत अन्याय।
लघु पद देत गरिष्ठ को, लघु उन्नत पद पाय॥**

जब तराजू में तौलते हैं तब तराजू के एक पल्ले में भारी चीज रखते हैं, दूसरे पल्ले में हलकी चीज। इस स्थिति में क्या होता है? जो गरिष्ठ है, गुरु है, उसको तो नीचा स्थान देती है। **लघु उन्नत पद पाय**—जो हलका और छोटा होता है उसको ऊपर उठा देती है। जो हलका है, लघु है, छोटा है, उसे ऊपर उठा दिया और जो भारी है, गुरु है, उसको नीचे बिठा दिया। कवि कहता है—तराजू! यह तुम्हारा कितना अन्याय है।

तराजू में भी अन्याय दिखाई देता है। कमी तराजू में भी है। जिस तुला से हम दूसरों को तौलते हैं, सोचते हैं कि तुला लाओ, तौल लें, कहीं गड़बड़ न हो। उस तुला में स्वयं में गड़बड़ है। कमी किसमें नहीं रहती? किन्तु निंदा करना अपना लाघव है, हलकापन है, तुच्छता है। यह सारा कापोत लेश्या का परिणामन है, व्यवहार है।

दारुणता

कापोत लेश्या का पांचवां लक्षण है—‘संग्रामे दारुणः’। कुछ व्यक्ति लड़ाई-झगड़े में, युद्ध में दारुण होते हैं। वैसे तो लड़ाई में व्यक्ति दारुण होता ही है पर उसमें भी फर्क रहता है। एक आदमी लड़ाई में भी अतिक्रूर नहीं होता, दूसरा बहुत क्रूर होता है। हम ढाई हजार वर्ष या पांच हजार वर्ष का इतिहास देखें। युद्ध के भिन्न-भिन्न रूप मिलते हैं। ऋषभ के समय की बात छोड़ दें, जब भरत और बाहुबलि का युद्ध हुआ। महाभारत के युद्ध से लें, जो पांच हजार वर्ष पूर्व का काल है, उस समय भी मर्यादाएं थीं। यह दारुण अवस्था नहीं थी। मर्यादा थी कि सैनिक लड़ेंगे, दूसरा कोई भी नहीं। सैनिक निरपराध को नहीं मारेगा। आज ऐसा नहीं है। लड़ाई तो हो रही है युद्धभूमि में। सोचते हैं—मिसाइलें कहां फिट

पथ चुनें पर कौन-सा ४५

करें? अमुक स्थान से अमुक प्रमुख नगर ६०० किलोमीटर है, मिसाइल वहां फिट करें, जहां से सीधी मिसाइल उस नगर पर दागी जा सके, प्रक्षेपास्त्र वहां जा सके। लघु दूरी का प्रक्षेपास्त्र, मध्यम दूरी का प्रक्षेपास्त्र और बहुत दूरी-ढाई हजार, तीन हजार किमी. तक मारक क्षमता से लैस प्रक्षेपास्त्र छोड़ें, मिसाइल छोड़ें और वे ढाई तीन हजार किमी. जाकर व्यक्ति को मार डालेंगी, नष्ट कर देंगी। प्राचीनकाल में युद्ध में यह सम्मत नहीं था। वहां मर्यादा थी—जो युद्धभूमि में लड़ रहा है, प्रहार कर रहा है उसी को मारो। जो निहत्था खड़ा है, जिसके पास कोई शस्त्र नहीं है उसको मत मारो। दूसरी मर्यादा थी—दिन में लड़ो, शाम होते ही मिलो आपस में। महाभारत में ऐसा होता था—दिन में लड़ते थे और रात्रि में आपस में साथ बैठकर भोजन करते थे, गोष्ठियां करते थे, बातचीत करते थे। ये सारी युद्ध की मर्यादाएं थीं, यानी दारुणता नहीं थी।

भगवान महावीर ने इसमें और शोधन कर दिया। महावीर का शिष्य था वरुण नागनथुआ, जिसका भगवती सूत्र में बहुत विशद वर्णन है। वैशाली गणराज्य का प्रमुख महाराज चेटक, जो भगवान महावीर का मामा था। दूसरी ओर कोणिक, सम्राट् श्रेणिक और चेलना का पुत्र और स्वयं महाराज चेटक का दौहित्र—दोनों में भयंकर युद्ध हुआ। गणराज्य प्रमुख चेटक की तरफ से एक व्यक्ति लड़ रहा था, नाम था वरुण नागनथुआ। वह बारहव्रती श्रावक था। बहुत धार्मिक और श्रद्धालु किन्तु युद्ध तो अनिवार्यता है। जब आ जाता है तो सुरक्षा करनी पड़ती है। चेटक भी श्रावक था, उसका संकल्प था—जब तक कोई मुझ पर प्रहार नहीं करेगा, उस पर मैं प्रहार नहीं करूंगा। उसके द्वारा प्रक्षिप्त बाण इतना अमोघ होता था कि शस्त्र प्रयोग से सामने वाला बचता नहीं था। वरुण नागनथुआ का संकल्प भी यही था—जब तक कोई मुझ पर प्रहार नहीं करेगा, मैं किसी पर प्रहार नहीं करूंगा। दूसरा संकल्प यह था—दिन में एक से ज्यादा बाण नहीं चलाऊंगा। क्या युद्ध में भी एक बार, दो बार का नियम होता है? किन्तु एक मर्यादा बना ली, शोधन कर लिया इसलिए कि युद्ध में भी दारुणता न रहे, युद्ध भयानक न रहे, केवल संहारक न रहे। युद्ध भी एक सिद्धान्त के आधार पर लड़ा जाए, अनिवार्यता पर लड़ा जाए, क्रूरता का भद्दा प्रदर्शन न हो, जैसा कि आजकल होता है। आज पता नहीं कितने नागरिकों को बिन मौत मार दिया जाता है, जलाशयों को नष्ट कर दिया जाता है, रास्तों को रोक दिया जाता है। कितनी क्रूरता! क्रूरता की भी कोई सीमा नहीं। सैकड़ों बड़े-बड़े लोगों को एक चेम्बर में बिठा दिया, कहा—भाई! गोष्ठी

४६ पथ चुनें पर कौन-सा

होगी। सारे दरवाजे बंद कर दिए। भीतर में गैस छोड़ी, सारे के सारे मृत्यु के मुख में चले गए। यह है क्रूरता, दारुणता। संग्राम में भी दारुण मनःस्थिति होती है, वह कापोत लेश्या का परिणाम है।

दुःस्थता

कापोत लेश्या का छठा लक्षण है—‘दुःस्थता’—दरिद्रता। क्या दरिद्र होना किसी लेश्या का परिणाम है? दुःस्थता का मतलब अभावजनित दरिद्रता नहीं है। एक होती है अभावजनित दरिद्रता यानी पास में कुछ नहीं है, आदमी दरिद्र हो गया। वह इस लेश्या का कारण नहीं है। दुःस्थता वह है—पास में बहुत है, कोई कमी नहीं है पर इतना दरिद्र कि न खुद रोटी खाता है, न पत्नी को खाने देता है, न घर वालों को खाने देता है। अतिथि, पाहुणे की तो बात ही क्या? घर में पाहुणा आ जाए तो उसको ऐसे निकाल देना चाहता है कि बस कभी आए ही नहीं।

एक दुःस्थ आदमी था। पाहुणा आ गया। बड़ी मुसीबत हो गई। वह बैठा बैठा सोच रहा है कि कब जाए? नाश्ते का समय होने वाला था, बोला—‘सगा साहब! आपको धूप चढ़ जाएगी। गर्मी का मौसम है। अब पधार जाएं तो अच्छा है, देरी होगी।’

पाहुणा बोला—‘कोई खास चिन्ता की बात नहीं है। मैं तो धूप को सहना जानता हूं, बाद में जाऊंगा। मुझे दूर जाना है तो रोटी खाकर ही जाऊंगा, अभी क्या जाऊंगा?’

आखिर नाश्ता कराना पड़ा। भोजन का समय। पत्नी बोली—‘देखो! पाहुणा घर में आया है। क्या उसके लिए हलवा बना लूं? नहीं तो अच्छा नहीं लगेगा।’ उसका मन ललचा गया, बोला—‘बना लो पर उसको नहीं खिलाना है।’ वह पाहुणे के पास आया, बोला—‘हमारे यहां भोजन बहुत देरी से बनता है, आपको विलम्ब हो जायेगा। आप चलें तो मैं आपको बाहर तक पहुंचा दूं, रास्ता भी बता दूं।’ उसने सोचा—यह मुझे निकालना चाहता है। आज इसे सबक सिखाना होगा। उसने मन ही मन योजना बनाई और बोला—‘अब मैं जा रहा हूं। आपको कष्ट करने की जरूरत नहीं है।’

यह कहकर वह बाहर गया और बाहर जाकर ऐसे स्थान पर छिप गया कि पता नहीं चले। उस दुःस्थ ने सोचा—अच्छा हुआ। पत्नी से पूछा—‘क्या तुमने हलवा बनाया है?’

‘हां! आपने कहा था और मैंने बना लिया।’

‘मैंने तो बला टाली थी। खैर कोई बात नहीं है। वह बला तो टल गई। अब अपन खाएंगे।’

भोजन का समय हुआ। पत्नी ने दो थालियों में हलवा परोसा—एक थाली स्वयं के लिए और दूसरी पति के लिए। इतने में अचानक ही वह पाहुणा जैसे आकाश से धमक पड़ा, थाली पर बैठा और सारा हलवा खा गया। दुःस्थ ने देखा—कौन आ गया? वह बुझे मन से बोला—‘आप कहां से आ गए? आप तो चले गए थे?’

वह बोला—‘हलवा तो मेरे लिए बनाया है। मैं उसे खाए बिना कैसे जाता?’

उसने उसकी कृपण मनोवृत्ति की भर्त्सना करते हुए कहा—‘तुम ऐसे दुःस्थ आदमी हो, ऐसी बुरी योजना बनाते हो? घर आए पाहुणों को ऐसे निकालते हो? मैं इतना हलवा खाता नहीं पर आज तो दोनों थालियों का हलवा खाकर ही जाऊंगा।’ दोनों देखते रह गए।

परिभाषा दरिद्रता की

यह है दुःस्थता। दूसरे शब्दों में, सरल शब्दों में दुष्टता आ जाती है पर मूल शब्द है दुःस्थता। अभावजनित दरिद्रता नहीं किन्तु मानसिक वृत्ति की दरिद्रता। आचार्य भिक्षु ने दरिद्र की परिभाषा की—‘पास में है पर जो देना नहीं चाहता, उसका नाम है दरिद्र।’ यह दरिद्रता भी कापोत लेश्या का लक्षण है।

कापोत लेश्या के ये छह लक्षण कीर्तिधर मुनि ने राजा प्रियंकर को बतलाए। प्रियंकर बोला—‘महाराज! यह तत्त्व तो बहुत अच्छा है। इससे पता चलता है कि आदमी में अलग-अलग प्रकार की वृत्तियां होती हैं। मन में प्रश्न रहता है कि ये वृत्तियां क्यों होती हैं? आज एक समाधान मिल रहा है। जिस व्यक्ति में अमुक प्रकार की वृत्ति है तो समझना चाहिए कि उसके भीतर कोई कलुषित भाव-धारा चल रही है, कोई मलिनता का प्रवाह चल रहा है। लेश्या के विश्लेषण से एक हेतु पकड़ में आ रहा है। अन्यथा समझना बड़ा मुश्किल है कि एक आदमी ऐसा क्यों करता है?’

‘मुनिप्रवर! मेरा मन अब तेजोलेश्या के परिणामों को सुनने के लिए उत्कंठित है। आपका प्रवचन-पीयूष ही उसे तृप्ति दे सकता है।’

किस लेश्या में जी रहे हैं आप (५)

एक बड़ा प्रश्न है—मेरा भावी जीवन कैसा होगा? मैं इस जन्म के बाद कहां जाऊंगा? कुछ लोग तो वर्तमान जीवन का भी प्रश्न कर लेते हैं। वे ज्योतिषियों के पास बैठे रहते हैं, पूछते हैं—मैं विदेश यात्रा करूंगा या नहीं? मैं अमुक स्थान पर जाऊंगा या नहीं? इस स्थिति में यह जिज्ञासा तो बहुत स्वाभाविक है कि मैं यहां से कहां जाऊंगा? गति कैसी होगी? इस विषय पर जैन दर्शन में जितना बतलाया गया है उतना शायद किसी अन्य भारतीय साहित्य में उपलब्ध नहीं होता।

एक प्रसिद्ध ग्रंथ है—गतागत का थोकड़ा—गति और आगति का निरूपण। व्यक्ति कहां से आता है और कहां जाता है? यह मनुष्य का जन्म या पशु का जन्म बीच का पड़ाव है। पर कहां से आता है मनुष्य और कहां जाता है मनुष्य?

गति और आगति का ज्ञान करना, विवेक करना बहुत महत्वपूर्ण है। गति कैसे होती है? गति का कारण क्या है? राजा प्रियंकर के इस प्रश्न के उत्तर में मुनि कीर्तिधर ने तीन लेश्याओं का वर्णन कर दिया। वे चौथी तेजोलेश्या का वर्णन कर रहे हैं। तेजोलेश्या का नाम पीत लेश्या भी है। पीला रंग—अग्नि का रंग, अग्नि ज्वाला का रंग जैसे पीला-पीला होता है, वैसे ही अग्नि वर्ण का रंग पीत लेश्या या तेजोलेश्या का होता है। जो व्यक्ति इस प्रकार का रंग देखता है, अग्नि का रंग देखता है, उसकी भावधारा कैसी होती है? उसकी विचारधारा कैसी होती है?

प्रभाव रंग का

स्वरोदय में पृथ्वी तत्त्व का रंग पीला माना गया है। यदि आप आंख बंद कर देखें तो समय-समय पर अलग-अलग रंग आंख के सामने आ जाते हैं। आंख तो बंद होती है पर रंग दिखाई देने लग जाते हैं। जो रंग दिखाई देता है, उससे पता चलता है कि भीतर में क्या चल रहा है। रंगों के आधार पर निर्णय किया जा सकता है।

मनुष्य जीवन को सबसे ज्यादा प्रभावित करने वाला तत्त्व है रंग। इसीलिए वस्त्र को पहनने में भी बड़ा विवेक होता है कि किस रंग का कपड़ा पहनना चाहिए। बहुत गहरे लाल रंग का पहनेगा और फिर गुस्से से बचना चाहेगा तो यह संभव नहीं है। क्योंकि गहरा लाल रंग उत्तेजना पैदा करता है। उसके कुछ लाभ भी हैं। लाल रंग से स्फूर्ति आती है, काम करने में सक्रियता रहती है किन्तु साथ-साथ में उत्तेजना भी आती है। यह एक बड़ा विवेक होता है कि कहां किसका प्रयोग किया जाए।

रूस की घटना है। एक विद्यालय के सब लड़के उदंड हो गए। पढ़ाई नहीं करते, ऊधम मचाते, उदंगल करते। शिक्षक और प्रबंधक परेशान हो गये। वे लड़के घर जाते ही शांत हो जाते। उन्होंने सोचा—क्या बात है? प्रश्न उठा—घर और स्कूल के व्यवहार में इतना अन्तर क्यों? कारण की खोज की गई किन्तु कोई कारण पकड़ में नहीं आया। एक दिन कलरथेरेपी—रंग विद्या के विशेषज्ञ को बुलाया गया। उसने स्कूल के सभी कक्षों को देखा और कहा—‘यहां तो ऊधम होगा।’

शिक्षकों ने साश्चर्य पूछा—‘क्यों होगी?’

‘कांच की खिड़कियां भी लाल, परदे भी लाल। चारों ओर लाल रंग है। यह रंग तो उत्तेजना पैदा करेगा।’

‘इसका उपाय क्या है?’

‘यदि आप चाहें तो उपाय कर दूंगा।’

प्रबंधकों ने उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उसने सारे लाल रंग के परदे हटवा दिए। उनके स्थान पर नीले रंग के परदे लगवा दिए, वातायन भी नीले रंग का कर दिया। नीला रंग शांति देने वाला होता है। जैसे ही परदों और वातायन का रंग बदला, स्कूल का वातावरण भी बदल गया, ऊधम भी कम हो गया। लड़कों का मन शांत हो गया।

रंग का भावों पर असर होता है, मनुष्य के मस्तिष्क पर बहुत प्रभाव होता है। सारा संचालन होता है मस्तिष्क से और मस्तिष्क जिस तत्त्व से प्रभावित होता है वैसा आचरण और व्यवहार होने लग जाता है। यह लेश्या का विज्ञान जैन दर्शन का एक विशिष्ट विज्ञान है।

प्रशस्त लेश्या है तेजोलेश्या

प्रश्न हो सकता है—हमारी लेश्या किस प्रकार की रहे? तेजोलेश्या प्रशस्त

५० पथ चुनें पर कौन-सा

लेश्या है। यहां से अच्छी लेश्या शुरू हो जाती है। पहली तीन लेश्याएं अधर्म लेश्याएं कहलाती हैं और अंतिम तीन धर्म लेश्याएं। पहली तीन अप्रशस्त लेश्याएं हैं और अंतिम तीन प्रशस्त लेश्याएं। जहां तेजोलेश्या होती है, तेजोलेश्या का आभामण्डल होता है, तेजोलेश्या का वातावरण होता है, उस अवस्था में मनुष्य कैसा होता है? उसका व्यक्तित्व कैसा बनता है? इसका वर्णन आचार्य ने इन शब्दों में किया है—

विद्वांश्च करुणायुक्तः, कार्याकार्यविचारकः।

लाभालाभे सदा प्रीतः, पीतलेश्याधिको नरः॥

तेजोलेश्या का पहला लक्षण है—विद्वान् होना। जिसमें तेजोलेश्या का आभामण्डल है, वह आदमी विद्वान् होगा, तत्त्व को जानने वाला होगा।

करुणाशीलता

तेजोलेश्या का दूसरा लक्षण है करुणाशीलता। जिसमें तेजोलेश्या का आभामण्डल है, वह संवेदनशील होगा, उसमें करुणा होगी, उसमें क्रूरता नहीं हो सकती। तेजोलेश्या का परिणाम है क्रूरता की समाप्ति। हर आदमी अपने आपको इस कसौटी पर कस सकता है कि मेरी वृत्ति करुणा की है या क्रूरता की? अगर क्रूरता है तो कृष्ण लेश्या अथवा नील लेश्या का परिणाम है। यदि मन में करुणा है, किसी को सताना नहीं चाहता, किसी को दुःख देना नहीं चाहता, किसी के साथ अन्याय करना नहीं चाहता, किसी को धोखा देना नहीं चाहता तो मानना चाहिए—तेजोलेश्या की भावधारा है।

धर्म का प्रारम्भ बिन्दु

एक प्रश्न आता है—धर्म का प्रारम्भ कहां से होता है? करुणा जागी और धर्म शुरू हो गया। महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि पहला मुख्य बिन्दु कौन सा है, जिस पर मनुष्य प्रहार करे? इसका उत्तर है—धर्म का प्रारम्भ बिन्दु है करुणा। जिसके मन में करुणा नहीं जागी, वह धर्म का अनुयायी बन सकता है, धर्म के पीछे चलने वाला बन सकता है पर धार्मिक नहीं बन सकता। जहां क्रूरता होती है वहां धर्म की बात नहीं होती। हत्या, मारकाट, चोरी, डकैती—ये सारे अपराध क्रूरता से आते हैं। जहां करुणा जागी, धर्म प्रारम्भ हो गया। सबसे महत्त्वपूर्ण बात है—क्रूरता पर प्रहार करना। बस यहीं से तेजोलेश्या का प्रारम्भ होता है।

पथ चुनें पर कौन-सा ५१

चोट कहां करें

सेठ यात्रा पर जा रहा था। ड्राइवर नहीं था। स्वयं ही कार ड्राइव कर रहा था। रास्ते में जंगल आया। संयोग ऐसा मिला कि कार खराब हो गई। आस-पास कोई व्यक्ति नहीं। नीचे उतरा, आगे बढ़ा, एक मिस्त्री बैठा दिखाई दिया। उससे कहा—मेरी कार खराब हो गई। तुम ठीक कर दोगे? उसने कहा—कर दूंगा। मिस्त्री अपने औजार लेकर कार के पास पहुंचा, सारी स्थिति को देखकर बोला—‘१०० रुपया लूंगा, कार ठीक कर दूंगा।’ सेठ ने सोचा—जंगल का मामला है। जो भी मांगेगा, देना होगा। स्वीकार कर लिया। मिस्त्री ने हाथ में हथोड़ी ली और इंजन पर एक चोट की। इंजन ठीक हो गया, गाड़ी चलने लग गई। मिस्त्री बोला—‘लाओ पारिश्रमिक।’

उसने कहा—‘भाई! मैं तुम्हें सौ रुपए दूंगा पर तुमने मेरे साथ अन्याय किया है?’

‘कैसे अन्याय किया?’

‘एक चोट दी और १०० रुपये ले लिए।’

‘सेठ साहब! आप समझे नहीं। चोट का तो एक रुपया लिया है।’

‘तो फिर निन्यानबे किस बात के?’

‘निन्यानबे इस बात के हैं कि चोट कहां करनी चाहिए?’

सबसे बड़ा प्रश्न है—चोट कहां करनी चाहिए। बहुत लोग यह नहीं जानते इसीलिए सफल नहीं बनते। धर्म करते हैं पर धर्म का आनन्द नहीं आता, आकर्षण पैदा नहीं होता। सबसे पहले यह समझना है कि चोट कहां करनी चाहिए। चोट करने का बिन्दु है क्रूरता। मनुष्य क्रूरता को छोड़े। जैसे ही क्रूरता धुली, उसकी सफाई हुई, करुणा जागी और व्यक्ति धार्मिक बन गया।

वह धार्मिक नहीं हो सकता

यह बहुत बड़ा प्रश्न है—वह कैसा धार्मिक है, जिसके मन में करुणा नहीं, अनुकम्पा नहीं, दया नहीं, दूसरों को सताने में कोई हिचक नहीं? वे कैसे धार्मिक हैं, जो परिवार में, समाज में, पड़ोस में दूसरे के साथ क्रूरता का व्यवहार कर लेते हैं? आदमी कितनी क्रूरता करता है और कितना दूसरों को सताता है। ऐसा क्रूर आदमी धार्मिक नहीं हो सकता। धर्म का पहला लक्षण ही प्रगट नहीं है तो धार्मिक कैसे होगा? धर्म का प्रारम्भिक लक्षण

है—विद्वांश्च करुणायुक्तः—जो तत्त्व को जान गया और जिसके मन में करुणा जाग गई, जो पसीज जाता है, दूसरे का दुःख देख नहीं सकता, कठिनाई देख नहीं सकता।

आदर्श हैं मघवागणी

करुणा के संदर्भ में एक बड़ा आदर्श हैं मघवागणी। वे तेरापंथ के पांचवें आचार्य थे। वैसे प्रायः सबमें करुणा होती है पर उनमें कुछ अतिशय करुणा थी। वे किसी साधु-साध्वी को उलाहना देते। उलाहना देना तो व्यवस्थागत काम होता है। साधु को उलाहना दिया, फिर थोड़े समय बाद उसका हाथ पकड़कर कहते—‘भाई! देखो, तुम गलती करते हो इसलिए मुझे कहना पड़ता है, प्रायश्चित्त देना पड़ता है। तुम अगर न करो तो क्यों देना पड़े? तुम्हें प्रायश्चित्त देता हूँ तो मुझे कष्ट होता है।’ प्रायश्चित्त तो उस मुनि को देते और कष्ट होता स्वयं मघवागणी को। यह करुणा का भाव तेजोलेश्या का एक लक्षण है।

कर्तव्य और अकर्तव्य का विवेक

तेजोलेश्या का तीसरा लक्षण है—कार्याकार्यविचारकः। जिस व्यक्ति में तेजोलेश्या का विकास होता है, वह कार्य और अकार्य की विचारणा करता है, कर्तव्य और अकर्तव्य का विवेक करता है।

भक्ष्य और अभक्ष्य का विवेक

जिस व्यक्ति में तेजोलेश्या का विकास होता है, वह भक्ष्य और अभक्ष्य का विवेक करता है। क्या खाना चाहिए और क्या नहीं खाना चाहिए? बहुत सारी समस्याएं इस अविवेक के कारण पैदा होती हैं। अवस्था आ गई, साठ-सत्तर वर्ष का हो गया। अब भी वह गरिष्ठ, तली हुई चीजें खूब खाए तो फिर जो कुछ होना है, वह होता ही है। एक विवेक होता है कि एक अवस्था के बाद भोजन कैसे बदलना चाहिए। सामान्यतः मनुष्य की दस अवस्थाएं मानी गई हैं। १०० वर्ष का जीवन और १०-१० वर्ष की दस अवस्थाएं। दस वर्ष की एक अवस्था। सबकी जीवनचर्या अलग प्रकार की होती है। दस वर्ष का है तब तक जीवन कैसे चलना चाहिए। दूसरा दशक होता है, उस समय जीवन कैसा होना चाहिए। इसका पूरा विवेक पुराने आचार्यों ने दिया है। जो स्वास्थ्य विज्ञान को जानने वाले हैं, वे जानते हैं कि एक आदमी स्वस्थ कैसे रह सकता है? एक आदमी विकास कैसे कर सकता है?

पथ चुनें पर कौन-सा ५३

नींद और जागरण का विवेक

तीसरा है नींद और जागरण का विवेक। कितना सोना चाहिए, कितना जागना चाहिए? यह भी बड़ा विवेक होता है। ऐसा न हो कि दिन में भी सोए तो सोते ही रहे। जो आदमी दिन में तीन घंटा सोएगा, वह आयुष्य का एक हिस्सा कम कर देगा। दिन में ज्यादा सोने वाला अकाल मृत्यु को निमंत्रण देता है। सोते समय श्वास की गति तेज हो जाती है। आयुर्वेद के आचार्यों ने तो दिन में सोने का निषेध किया है। आचार्यश्री भिक्षु ने यह मर्यादा की—कोई भी साधु-साध्वी, जो सोलह वर्ष को पार कर चुका है, आहार करके दिन में न सोए। कारणवश सोए तो एक व्यवस्था है। स्वास्थ्य और साधना की दृष्टि से यह बहुत अच्छी मर्यादा है। आयुर्वेद के ग्रंथों में दिन में सोने को बीमारी का मुख्य कारण माना गया है। गर्मी के दिनों में आधा घण्टा विश्राम किया जा सकता है, जिसको राजस्थानी भाषा में कहते हैं—‘आड-टेढ’ कर ली। किन्तु ऐसा खूटी तान कर न सोए कि तीन-चार घण्टा का पता ही न चले। यह बीमारी और आयुष्य को कम करने का अच्छा उपाय है।

जागरण के साथ शुरू होता है विवेक

मूर्ख का एक लक्षण बतलाया गया—**कार्याकार्यविचारणांधबधिरो**—मूर्ख वह है, जो कार्य और अकार्य की विचारणा में अंधा व बहरा होता है। तेजोलेश्या सम्पन्न व्यक्ति का लक्षण है कि वह कार्य और अकार्य का विवेक करता है। यह विवेक बहुत कठिन है। बहुत कम लोग सोचते हैं कि मुझे क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए? आज क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए? एक पूरा विज्ञान है, विवेक है। आज गर्मी का मौसम है तो मुझे क्या करना चाहिए। अभी सुबह का समय है तो मुझे क्या करना चाहिए? प्रातः छह से दस बजे तक का समय आत्मचिन्तन के लिए उपयुक्त समय है, ज्ञान कंठस्थ करने के लिए उपयुक्त समय है, मन की शांति के लिए बड़ा उपयुक्त समय है। सुबह उठते-उठते ही झगड़ा शुरू कर दें तो वह हानिकारक हो जाता है।

कार्य और अकार्य का विवेक प्रातः जागरण के साथ ही शुरू होता है। व्यक्ति जागने के बाद सबसे पहले अपने इष्ट का स्मरण करता है तो दिन आनन्द में बीतता है, व्यवधान पैदा नहीं होता। वह उठते ही चाय पीता है, समाचार-पत्र पढ़ता है। सुबह-सुबह समाचार-पत्र पढ़ेगा तो क्या होगा? समाचार-पत्र

५४ पथ चुनें पर कौन-सा

मारकाट, हत्या, दुर्घटना, बलात्कार, चोरी, डकैती आदि घटनाओं से भरा रहता है। इन घटनाओं को पढ़ेगा तो दिमाग पर क्या प्रभाव होगा ?

चिन्तन मूल कारण को मिटाने का

मैंने हिन्दुस्तान टाइम्स (१४ जून १९६६) में एक घटना का विवरण पढ़ा—अमेरिका में एक व्यक्ति विक्षिप्त जैसा था, आवेश बहुत आता था, गुस्सा बहुत तेज था, वह अपराधी भी था। उसको पकड़ने के लिए पुलिस गई। पुलिस ने अपराधी को पकड़ने के लिए खोजी कुत्तों को छोड़ा। ज्योंही कुत्ता उसके पास पहुंचा, वह इतना आवेश में आया कि उसने कुत्ते के मुंह को चबा लिया। पुलिस वाले भी दंग रह गए। पुलिस ने उसको पकड़ा और कहा—तुम सबसे पहले तीन काम करो—

१. क्रोध को कम करने का कोर्स करो।
२. अपराध को कम करने का कोर्स करो।
३. नशे की प्रवृत्ति—शराब छोड़ने का कोर्स करो।

आज एक विचार पुष्ट बनता जा रहा है कि अपराधी को सजा देने से कुछ नहीं होगा। जेल में डाल दो, आजीवन कारावास दे दो, फांसी की सजा दे दो—केवल इससे अपराध में कमी नहीं आएगी। अपराधी को कैसे बदला जाए, इस पर चिन्तन जरूरी है। यह चिन्तन अपराध के मूल कारणों को मिटाने का चिन्तन है।

विवेक कराता है अन्याय का भान

कार्याकार्यविचारकः—कार्य और अकार्य का विचार करना बहुत जरूरी है। एक बहुत मार्मिक घटना है। जापान का सम्राट् फूलदानी का बड़ा शौकीन था। उसने अपने भव्य महल में अनेक देशों में बनी हुई रंग-बिरंगी सत्ताईस फूलदानियां इकट्ठी की। एक दिन नौकर सफाई कर रहा था। सफाई करते-करते एक फूलदानी नीचे गिर गई, फूट गई। बादशाह को बहुत गुस्सा आया, बोला—‘मेरी प्रिय फूलदानी को इसने तोड़ दिया।’ खूब उलाहना दिया। कर्मकर थरथर कांपने लगा। राजा ने आक्रोश भरे स्वर में निर्देश दिया—‘जाओ, इसको फांसी पर चढ़ा दो।’

एक दरबारी ने इस आदेश को सुना, सोचा—यह तो बड़ा अन्याय हो रहा है। वह खड़ा हुआ, बोला—‘महाराज! मैं कलाकार हूं। मैं ऐसी कला जानता हूं,

पथ चुनें पर कौन-सा ५५

जिससे टूटी हुई फूलदानी को सांध दूंगा। किसी को पता ही नहीं चलेगा कि यह कभी टूटी थी। एकदम पूर्ववत् हो जाएगी।' बादशाह खुश हुआ, कहा—अच्छी बात है। बादशाह दरबारी को अपने शयन कक्ष में ले गया, सब फूलदानियां दिखाई, टूटी हुई फूलदानी की ओर इशारा करते हुए कहा—'इसे ठीक सांधना है।' दरबारी के हाथ में मजबूत लाठी थी। उसने लाठी के प्रहार से फूलदानियों को तोड़ना शुरू किया। शेष बची २६ फूलदानियों के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। बादशाह स्तब्ध रह गया। उसके गुस्से का पार नहीं रहा। वह बोला—तुमने धोखा किया है। तूने कहा था मैं फूलदानी को ठीक कर दूंगा पर तुमने तो सबका कचरा कर दिया। बोलो, तुम्हें क्या सजा होगी?'

दरबारी बोला—'महाराज! मैंने जान-बूझकर ऐसा किया है, मूर्खता से नहीं किया है। विचारपूर्वक यह काम किया है।'

बादशाह ने साश्चर्य पूछा—'क्यों किया?'

'महाराज! कांच की सत्ताईस फूलदानियां थीं। एक टूट गई और एक आदमी को फांसी की सजा सुना दी। ये तो सब टूटने वाली हैं। व्यक्ति सफाई करेगा, कभी कोई गिर जाएगी और कभी कोई गिर जाएगी। मैंने सोचा—छब्बीस और व्यक्तियों को फांसी के तख्ते पर चढ़ना पड़े, इससे तो अच्छा है कि मैं अकेला ही चढ़ जाऊं और सबको बचा लूं।'

बादशाह की आंखें खुल गईं, उसने कहा—'जाओ, तुम्हें भी माफी और जिसके हाथ से पहले टूटी थी, उसको भी माफी।' सत्ताईस फूलदानियां टूट गईं और माफी भी मिल गई।

एक विवेकशील व्यक्ति विवेक से काम करता है तो अन्याय का भान करा देता है।

एक घटना और स्मृति में आ रही है। एक राजा ने खाना परोसने के लिए एक नौकर रखा। एक दिन परोसते समय थोड़ा-सा शाक का छींटा राजा के कपड़ों पर गिर गया। राजा लोग तो सनकी होते थे। थोड़ा-सा मन के प्रतिकूल कार्य होता और आवेश में आ जाते। शाक का छींटा पड़ते ही राजा उबल पड़ा। बोला—'तुम्हें परोसना भी नहीं आता। ऐसा व्यक्ति मुझे नहीं चाहिए।' राजा ने तत्काल मृत्युदंड का आदेश दे दिया। रसोइया यह देखकर विक्षुब्ध हो गया। उसने सोचा—यह तो अन्याय हो रहा है। आज मेरे साथी पर अकारण हो गया, कल मेरे साथ भी हो सकता है। वह आगे आया। पूरा व्यंजन से भरा पात्र

५६ पथ चुनें पर कौन-सा

राजा के ऊपर उंडेल दिया। रसोइए के इस कृत्य ने आग में घी का काम किया। राजा का पारा चढ़ गया। उसने आक्रोश के साथ पूछा—‘तुमने ऐसी गुस्ताखी क्यों की?’ रसोइया बोला—‘महाराज! मैंने समझ बूझकर ऐसा किया है।’

‘क्या इसे तुम समझ मानते हो?’

‘महाराज! आपकी दुनिया में बहुत बदनामी होती, लोग कहते—राजा कैसा मूर्ख है, थोड़ा-सा छींटा पड़ गया और बेचारे को फांसी का दण्ड दे दिया। अब आप फांसी का दंड देंगे तो कोई आपको बुरा नहीं कहेगा। सब कहेंगे—भई! इसका दंड और क्या हो सकता है? राजा पर शाक का पूरा पात्र जानबूझकर उंडेल दिया। थोड़ी सी बात पर जो आपकी बदनामी होती, उसे मिटाने के लिए मैंने ऐसा किया है।’

राजा को अपने अन्याय का भान हुआ। उसका आवेश शांत हो गया। उसने मृत्युदंड का आदेश वापस ले लिया।

जरूरी है आत्मनिरीक्षण

एक विवेक होता है कि कब क्या करना चाहिए और कैसे करना चाहिए। जिस व्यक्ति में तेजोलेश्या का विकास होता है, उसमें कार्य-अकार्य का विवेक जाग्रत् हो जाता है, वह आत्मनिरीक्षण और आत्मालोचन करता रहता है। बहुत सारे धार्मिक लोग भी आत्मनिरीक्षण नहीं करते। अगर हम प्रतिदिन सोने से पहले दस-बीस मिनट आत्मनिरीक्षण का अभ्यास करें तो हम अनेक दुष्प्रवृत्तियों से बच सकते हैं, अनेक अच्छे कार्यों में प्रवृत्त हो सकते हैं। आत्मनिरीक्षण के सन्दर्भ में भगवान महावीर का सुन्दर वचन है—किं मे कडं—आज मैंने क्या किया? किंच मे किच्च सेसं—कौन सा काम शेष रहा? किं सक्कडिज्जं न समायरामि—कौन सा काम ऐसा है, जो कर सकता था पर मैंने नहीं किया।

प्रत्येक व्यक्ति के लिए चिन्तनीय है—वह कौन सा काम है, जिसे मैं कर सकता हूं पर नहीं करता। मैं व्याख्यान सुन सकता हूं पर सुनता नहीं हूं। मैं स्वाध्याय कर सकता हूं पर करता नहीं हूं। मैं सामायिक कर सकता हूं पर करता नहीं हूं। मैं माला फेर सकता हूं पर फेरता नहीं हूं। क्यों नहीं करता मनुष्य? इसलिए कि कार्य-अकार्य का विवेक नहीं है। जिसमें कार्य-अकार्य का विवेक जाग्रत् है, मानना चाहिए—उस व्यक्ति में तेजोलेश्या का विकास हुआ है, उसके आभामण्डल में पीला रंग प्रधान बना हुआ है।

पथ चुनें पर कौन-सा ५७

लाभ और अलाभ में समभाव

तेजोलेश्या का चौथा लक्षण है—लाभ और अलाभ में समभाव। न लाभ में बहुत प्रसन्नता और न अलाभ में विषण्णता। उसमें समता की साधना प्रवर होती है। वह क्षण में रुष्ट अथवा तुष्ट नहीं होता। किसी का अनिष्ट चिन्तन नहीं करता। प्रियता की स्थिति में सुखी और अप्रियता की स्थिति में दुःखी नहीं होता। ऐसा व्यक्ति सबको प्रिय लगता है, अच्छा लगता है।

कई लोग ऐसे होते हैं, जो दिखने में बड़े अच्छे लगते हैं पर उनके पास कोई बैठना नहीं चाहता। वे प्रिय नहीं लगते। कुछ लोग ऐसे हैं, जो बूढ़े हो गए, चेहरे पर झुर्रियां पड़ गईं, फिर भी इतने प्रिय हैं कि लोग उनको छोड़ते नहीं हैं। इसका क्या कारण है? यह आकर्षण चमड़ी का नहीं होता, यह आकर्षण आभामण्डल का होता है। जिस व्यक्ति का आभामण्डल बड़ा सुखदायी होता है, उसके पास सब लोग बैठना चाहते हैं, बात करना चाहते हैं और उसका आशीर्वाद लेना चाहते हैं। जिसका आभामण्डल अच्छा नहीं होता, उसके पास बैठने पर मन में बेचैनी सी हो जाती है। आभामण्डल की पवित्रता और सुन्दरता का आधार है प्रशस्त तेजोलेश्या की प्रधानता। इसलिए हमें लेश्या पर बहुत गहराई से विचार करना चाहिए और प्रतिदिन यह सोचना चाहिए कि मेरा आभामण्डल कैसा है? मेरी लेश्या कैसी चल रही है? मेरी भावधारा कैसी चल रही है?

लेश्या का यह विवेक मुनि कीर्तिधर राजा प्रियंकर को दे रहे हैं। राजा प्रियंकर इन लक्षणों को अवधानपूर्वक सुन रहा है और अपने आपको तौल रहा है। क्या यह आत्मनिरीक्षण और विश्लेषण उसके जीवन में परिवर्तन का हेतु बनेगा?

किस लेश्या में जी रहे हैं आप (६)

मनुष्य सुखी रहना चाहता है, दुःखी होना नहीं चाहता। किन्तु इस दुनिया का क्रम है कि सुख और दुःख का जोड़ा साथ चलता है। कभी सुख और कभी दुःख। कभी का मतलब लम्बा समय भी नहीं है। कभी-कभी एक दिन में भी आदमी न जाने कितनी बार सुख और कितनी बार दुःख का अनुभव कर लेता है। यह भी नहीं होता कि कोई दुःख देने आता है या सुख देने आता है। व्यक्ति अपनी कल्पना से भी सुखी और दुःखी बन जाता है। कभी-कभी तो दुःख का कोई निमित्त बनता है किन्तु बहुत बार दुःख का कोई कारण नहीं होता, बस अपने अध्यवसायों से ही दुःखी बन जाता है और सुखी भी बनता है। इसे कहा गया—‘आयपइट्ठिण्ण’—आत्म प्रतिष्ठित। जैसे एक क्रोध होता है, वह बाहरी निमित्त से आता है और एक क्रोध होता है आत्म-प्रतिष्ठ। स्थानांग सूत्र में बतलाया गया—आत्म-प्रतिष्ठ क्रोध। यानी बाहर का कोई कारण नहीं, अपने आप गुस्सा आ गया। दूसरे पर नहीं, अपने पर भी आ गया। हमारा सुख और दुःख भी आत्म-प्रतिष्ठ है। हम कल्पना के साथ सुख और दुःख भोग लेते हैं।

सुख दुःख और कल्पना

ट्रेन के एक डिब्बे में दो व्यक्ति यात्रा कर रहे थे। एक व्यक्ति उठा, उसने खिड़की खोल दी। तत्काल दूसरा आदमी उठा और खिड़की को बंद कर दिया। पहला व्यक्ति पुनः उठा, खिड़की खोल दी। दूसरे व्यक्ति ने उसे पुनः बंद कर दिया। दोनों एक नाटक-सा खेलने लगे। एक उठता है, खिड़की को बंद कर देता है। दूसरा उठता है, खिड़की को खोल देता है। यात्री परेशान हो गए। वे बोले—यह क्या हो रहा है? लोगों ने दोनों को समझाने की कोशिश की पर वे सफल नहीं हुए। कुछ क्षण बीते। टी.टी. आया। लोगों ने शिकायत की—‘साहब! यह क्या हो रहा है? ये दोनों यात्री बार-बार उठते हैं, हमारे बीच में से जाते हैं। एक खिड़की को बंद करता है और दूसरा खोलता है।’

टी.टी. ने पूछा—‘भैया! ऐसा क्यों करते हो?’

एक बोला—‘मुझे गर्मी लगती है। खिड़की कैसे नहीं खोलूंगा?’

पथ चुनें पर कौन-सा ५६

दूसरे से पूछा—‘भाई! यह खोलता है तो तुम बंद क्यों करते हो?’

वह बोला—‘मुझे ठंडी हवा लग रही है। मैं कैसे बंद नहीं करूंगा?’

टी.टी. का ध्यान खिड़की की ओर गया। वह दोनों को खिड़की के पास ले गया, बोला—‘देखो, कोरा फ्रेम है, शीशा तो है ही नहीं।’

शीशा नहीं था फिर भी एक को गर्मी लग रही थी, एक को ठंड लग रही थी। एक बंद कर रहा था, एक खोल रहा था। खिड़की में यदि शीशा नहीं है तो खोलने और बंद करने का कोई मतलब नहीं होता।

कल्पना से न जाने कितना सुख और दुःख भोगा जाता है किन्तु एक धार्मिक आदमी को काल्पनिक सुखों में नहीं उलझना चाहिए। उसे जीना है प्रशस्त लेश्या में—तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या में।

राजा प्रियंकर ने जिज्ञासा की—मुनिवर! पद्म लेश्या तेजोलेश्या से श्रेष्ठ होती है? उसके लक्षण क्या हैं?

मुनि कीर्तिधर ने राजा की जिज्ञासा को समाहित करते हुए पद्मलेश्या के लक्षणों का विवेचन किया।

क्षमाशीलता

पद्मलेश्या का पहला लक्षण है—क्षमावान। जिसमें पद्मलेश्या की भावधारा आ जाती है, वह क्षमावान बन जाता है। क्षमा का अर्थ केवल खमतखामणा नहीं है। वह भी एक अर्थ है। कोई भूल कर दी और खमतखामणा कर लिया। यह एक अर्थ है पर इतना ही नहीं है। क्षमा का बहुत व्यापक अर्थ है। जिसमें सहन करने की शक्ति विकसित है, वह है क्षमावान। जो हर स्थिति को झेल सकता है—अनुकूल-प्रतिकूल, मनचाही-अनचाही स्थिति को सहन करने की जिसमें शक्ति है, जो इतना शक्तिशाली बन गया—कुछ भी आओ, सहन कर लूंगा, वह क्षमावान हो गया। बहुत कठिन काम है सहन करना। जहां पांच लोग साथ में रहते हैं, दस लोग साथ में रहते हैं। एक परिवार है, समुदाय है। साथ में रहना और क्षमावान होना—अत्यन्त दुर्लभ है। साथ में रहें और असहिष्णुता न आए—बहुत कठिन है।

बहुत कठिन है सहन करना

पूज्य कालूगणी के पास कुछ साधु आए, बोले—गुरुदेव! अमुक-अमुक साधु के आपस में प्रेम बहुत है, गाढ़ मैत्री है। कालूगणी बोले—एक वर्ष साथ

६० पथ चुनें पर कौन-सा

में विहार करा दो, कसौटी हो जाएगी। वास्तव में ही धर्मानुराग है तो ठीक है और नहीं है तो पता लग जाएगा।

जहां दो हैं वहां एक-दूसरे को सहना पड़ता है। रुचि अलग, विचार अलग, चिन्तन अलग और स्वार्थ अलग। किसी ने कहा—यह काम करो। उत्तर मिलता है—मैं ही क्यों करूं, तुम क्यों नहीं? मुझे क्यों कहते हो, तुम ही कर लो। यह उत्तर तनाव का कारण बन जाता है, सम्बन्धों में दुराव आने लग जाता है और कभी-कभी सम्बन्धविच्छेद की स्थिति भी बन जाती है।

उत्तराध्ययन सूत्र का एक सुन्दर प्रसंग है। गर्गाचार्य के ५०० शिष्य थे। एक दिन गर्गाचार्य अस्वस्थ हो गए। उन्होंने एक शिष्य से कहा—‘आज शरीर थोड़ा अस्वस्थ है। दवा की जरूरत है। तुम अमुक घर में जाओ, दवा ले आओ।’ वह बोला—‘गुरुदेव! जिस घर में जाने के लिए आप कह रहे हैं, उस घर वाली महिला तो पता नहीं कहां-कहां घूमती रहती है। मैं जाऊंगा तो मिलेगी या नहीं।’

गर्गाचार्य ने दूसरे से कहा—‘तुम जाओ।’

वह बोला—‘मैं ही मैं दीखता हूं। ये इतने सारे शिष्य बैठे हैं। ये क्या कर रहे हैं?’

उन्होंने अनेक साधुओं से कहा, पर सबका ऐसा उत्तर मिला कि गर्गाचार्य विक्षुब्ध हो गए। उन्होंने निर्णय कर लिया—‘ये शिष्य मेरे काम के नहीं हैं।’ वे सबको छोड़कर एकलविहारी हो गए।

मैं अनेक बार देखता हूं—लोग बैठे रहते हैं। एक आदमी आता है, इतना-सा कहता है कि भाई! थोड़ा-सा रास्ता दे दो, जरा सरक जाओ। इतना सुनते ही आगबबूला हो जाता है—मुझे कौन कहने वाला है। अहंकार इतना होता है कि अच्छी बात को भी सुनना नहीं चाहता, सहन करना नहीं चाहता। हम सीख किसको दें? इन दिनों बहुत लोग दर्शनार्थ आए, मैंने उनसे कहा—देखो, यह तुम्हारी कमी है कि इन बच्चों को तुमने अभी नवकार मंत्र गुनना भी नहीं सिखाया। उनका सीधा घड़ा-घड़ाया उत्तर मिलता है—आजकल के बच्चे मानते ही नहीं हैं, किसको कहें?

सचमुच सहन करना बड़ा कठिन होता है। अच्छी से अच्छी बात कहो तो भी एकदम सिर में चोट-सी लगती है। व्यक्ति सोचता है—मुझे कौन कहने वाला है? क्या मैं नहीं जानता? अहंकार इतना प्रबल होता है कि वह दूसरे

पथ चुनें पर कौन-सा ६१

की बात को सुनना भी पसन्द नहीं करता। बया और बंदर की प्रसिद्ध कथा है। बया ने बंदर को घर बनाने की सीख दी। बंदर ने अपना घर तो नहीं बनाया, क्रोधावेश में बया का घोंसला ही तोड़ दिया।

बंदर भी सहन नहीं कर सकता तो भला आदमी कैसे सहन करे? बड़ी कठिनाई है किन्तु धर्म ने यह सिखाया—तुम सहन करना सीखो। अहंकार को कम करो, दूसरों की बात सुनो, उस पर ध्यान दो, चिन्तन करो। उसमें अच्छाई है तो ग्रहण करो। अच्छा न लगे तो उपेक्षा कर दो, पर प्रतिक्रिया मत करो।

प्रशिक्षण सहिष्णुता का

जिस व्यक्ति में पद्मलेश्या का आभामण्डल विकसित होता है, जो व्यक्ति पद्मलेश्या की भावधारा में रहता है, वह हर बात को सहन कर लेता है। तेरापंथ साधु समाज में सहन करने की जो परम्परा विकसित हुई है, उसमें यह सूत्र घुट्टी के रूप में दिया जाता है। आचार्य भिक्षु से लेकर आज तक यह सिखाया जाता रहा है—सहन करना सीखो। सहिष्णुता का प्रशिक्षण दिया जाता है। जयाचार्य ने इस पर बहुत बल दिया। जैसे एक अग्रणी साधु होता है, वह पृथक् विहार करता है। एक साधु को मुख्य बनाते हैं, अग्रणी बना देते हैं, एक साध्वी को अग्रणी बना देते हैं। अग्रणी के लिए जयाचार्य ने कहा—‘तुम अग्रणी होकर विचरना चाहते हो तो चोट खमणी सीखो। जहां भूल होगी वहां उलाहना आएगा, दंड आएगा, प्रायश्चित्त आएगा। यदि तुम सहन करना नहीं जानते हो तो तुम्हारा भला नहीं होगा। बिना सहन किए कोरे अगवानी बनोगे तो ठीक नहीं रह पाओगे।’ अग्रणी हो या अनुगामी—छोटी सी भूल पर भी उलाहना और प्रायश्चित्त दिया गया। साधु-साध्वियों ने विनीत भाव से सब कुछ सहा।

स्वस्थ परम्परा

आचार्य डालगणी ने मंत्री मुनिश्री मगनलालजी स्वामी को एक बात पर काफी कड़ा उलाहना दे दिया। कुछ समय बाद स्वयं डालगणी को यह अनुभव हुआ कि इसमें मुनि मगनजी की कोई गलती नहीं थी। उन्होंने मुनि मगनलालजी को बुलाया और कहा—‘मगनजी! मैंने तुमको इतना कहा। अब मेरे बात ध्यान में आ गई कि तुम्हारी गलती नहीं थी।’

‘हां, अन्नदाता ठीक है।’

‘तुमने उस समय कुछ कहा क्यों नहीं?’

‘अन्नदाता! उस समय कहना ठीक नहीं था।’

६२ पथ चुनें पर कौन-सा

तेरापंथ की एक परम्परा रही है और साधु-साध्वियों ने उसका निष्ठा से निर्वाह किया है, उसे आगे बढ़ाया है—‘आचार्य जब भी उलाहना दे, उस समय मौन रहो। केवल तहत् कहकर स्वीकार करो, और कुछ मत बोलो। अगर गलती है तो उसका परिष्कार करो। अगर यह लगे कि मेरी कोई गलती नहीं है तो भी उस समय मत बोलो। दो-चार घंटा बाद उचित अवसर देखकर एकांत में विनम्रतापूर्वक प्रार्थना करो—‘गुरुदेव! आपने मुझे उलाहना दिया पर यह बात इस प्रकार नहीं है, इस प्रकार है।’ यह एक स्वस्थ परम्परा है।

दुराव क्यों बढ़ता है? एक व्यक्ति कुछ कहता है और दूसरा उसकी उपेक्षा या अवमानना करता है तब दुराव बढ़ता है। पिता कुछ कहता है तो पुत्र तत्काल इस भाषा में उत्तर देता है कि पिता देखता रह जाता है। ऐसा लगता है, जैसे लड़ने की मुद्रा बन गई है।

विकास का रहस्य

विनय की परम्परा, सहन करने की परम्परा का विकास जरूरी है। अनेक बार लोग पूछते हैं—तेरापंथ का विकास क्यों हुआ? क्यों हो रहा है? मैंने कहा—‘भाई! तेरापंथ का साधु-साध्वी पद्मलेश्या के भावों में जीता है। जो पद्मलेश्या की भावधारा में जीएगा, उसके विकास को कोई रोक नहीं पाएगा।’ हास किसका होता है? जो बुरी भावधारा में जीता है, वह नीचे गिरता चला जाता है। जो अच्छी भावधारा में जीता है, वह ऊपर उठता चला जाता है, विकास करता चला जाता है।

युग के आरम्भ में जैसे ही ‘अर’—कालचक्र बदलता है, अवसर्पिणी का अवसान होता है, उत्सर्पिणी काल का उदय आता है। उस आरम्भकाल में आदमी परस्पर मिलते हैं, विमर्श करते हैं—भाई! अब खाने को कुछ सहज उपलब्ध हो रहा है। हम अब तक विवशता से मांस खाते थे। खाने का अन्य कोई साधन नहीं था, तब विवशता से मांस खाना पड़ता था। अब पेड़-पौधे पनप रहे हैं, वनस्पति उत्पन्न हो रही है। अब हमें मांस को छोड़ देना है। वे मांस खाने का परित्याग करते हैं। जैसे ही मांस खाना छोड़ते हैं, विकास का क्रम शुरू होता है। इसका तात्पर्य है—भावधारा अच्छी आती है तो विकास शुरू होता है। जिसको गिरना होता है, सबसे पहले उसका आहार बिगड़ता है, भावधारा बिगड़ती है।

यह रास्ता है गिरने का

आज समाज की स्थिति को देखता हूं तो मन में संवेदना होती है, सोचता हूं—

**क्या कहूं, कुछ कहा न जाए।
कहे बिना भी रहा न जाए॥**

इन दिनों अनेक ऐसी घटनाएं, प्रसंग सामने आए। जैन समाज के युवकों का, रात-दिन धर्म के वातावरण में रहने वाले युवकों का खान-पान भी बिगड़ गया। शराब भी पीते हैं और मांस का भी परिहार नहीं है। हम कल्पना नहीं कर सकते कि जिनको निरामिष भोजन का संस्कार मिला है वे कैसे करेंगे? पर ऐसा ही यह कोई समय है या वातावरण है कि अंडों का परिहार तो छोटी बात है, मांस का भी परिहार नहीं है, शराब का भी नहीं है। हमने सुना—ओसवाल समाज की बरात आई और बरातियों ने बहुत झगड़ा किया? क्यों किया? इसलिए कि शराब पीये हुए थे। व्यक्ति में आवेश तो रहता ही है, शराब से उसे उद्दीपन मिल जाता है। अनेक बार तो यह स्थिति बनती है कि बरात बैरंग ही लौट जाती है। आजकल बरात ले जाने वाले शराब की मांग भी करते हैं। इस प्रकार की बातें सुनते समय भी कानों में कांटे जैसे चुभती हैं। लोग यह चिन्तन क्यों नहीं करते कि यह गिरने का रास्ता है, खराब होने का रास्ता है। जो इसमें ज्यादा फंस जाते हैं, उनका ध्यान फिर अच्छी बातों में कम जाता है। वे अनेक व्यसनों में चले जाते हैं। यह बहुत कठिन परिस्थिति है। इसीलिए मनुष्य अपनी स्थिति को बनाए नहीं रख पा रहा है।

रास्ता नीचे और ऊपर जाने का

हमारे सामने दो रास्ते हैं—एक है गिरने का रास्ता और एक है ऊपर जाने का रास्ता। कच्छ-सौराष्ट्र की घटना है। एक संन्यासी पेड़ के नीचे बैठा था। वहां का राजा शिकार करके आ रहा था। हाथ में मारा हुआ खरगोश था, खून टपक रहा था। उसने संन्यासी से पूछा—‘ओ महाराज! बोलो रास्ता किधर जा रहा है?’ संन्यासी को कोई डर तो था नहीं, बोला—‘मैं दो ही रास्ते जानता हूं। तीसरा रास्ता नहीं जानता।

‘कौन-से दो रास्ते जानते हो?’

‘एक रास्ता है ऊपर जाने का और एक रास्ता है नीचे जाने का।’

‘ऊपर जाने का रास्ता कौन-सा है और नीचे जाने का रास्ता कौन-सा है?’

६४ पथ चुनें पर कौन-सा

‘राजन्! जो तुम कर रहे हो, दूसरे जीवों को मार रहे हो—यह नीचे जाने का रास्ता है। तुम इस काम को छोड़ो, अहिंसक बनो तो ऊपर जाने का रास्ता है। इसके अतिरिक्त तीसरा कोई रास्ता नहीं है।’

यह सचाई है कि जो व्यक्ति इन व्यसनों में ज्यादा लिप्त होता है, वह नीचे जाने का रास्ता चुन रहा है। न वह बहुत आर्थिक विकास कर सकता और न ही जीवन को अच्छा बना सकता। क्योंकि उसकी धारणाएं मिथ्या बन जाती हैं, क्रूरता आती है, अनैतिकता आती है। वह सब कुछ आता है जो अवांछनीय है। इसीलिए इस दृष्टि से जागरूक रहना चाहिए कि भावधारा कैसे शुद्ध रहे?

विकास त्याग की शक्ति का

पद्मलेश्या का दूसरा लक्षण है—त्याग की शक्ति का विकास। यह भी बहुत कठिन काम है। दो दिन पहले एक युवक उपासना में बैठा था, वह बोला—‘आचार्यश्री! आप लोग केवल त्याग की ही बात क्यों सिखाते हैं?’

मैंने कहा—‘हम लोग त्याग की बात न सिखाएं तो और क्या सिखाएं?’ भोग की बात तो तुम जानते ही हो। उसे सिखाने की हमें जरूरत नहीं है। उसमें तो तुम निमग्न बने हुए हो। हम यह मानते हैं—कोरा भोग आदमी को नीचे ले जाता है, समाज में विकृति पैदा करता है, समस्या पैदा करता है। इसीलिए भोग के साथ त्याग की बात भी सीखो, कुछ सीमा करना सीखो, कुछ छोड़ना सीखो। अगर त्याग की चेतना नहीं रही, त्याग की शक्ति नहीं रही, तो फिर बचेगा क्या?’

जो व्यक्ति त्यागना नहीं जानता, छोड़ना नहीं जानता, वह कभी अच्छा नहीं रहता। स्वास्थ्य भी उसी का अच्छा रहता है, जो त्यागना जानता है। यदि भोजन की १० चीजें सामने आ गईं और सब अच्छी मात्रा में खा लीं, तो क्या होगा? आजकल स्वतः भोजन का क्रम चलता है। परोसने वाला कोई नहीं। सारी खाद्य वस्तुएं टेबलों पर रखी हुई हैं। स्वयं लो और खाओ। सामने इतनी चीजें रखी हुई हों और त्याग की शक्ति न हो तो व्यक्ति मनचाहा खाएगा। खाने के बाद हॉस्पिटल जाना पड़े तो आश्चर्य की बात नहीं है। बहुत बार भोजन में अनेक लोग बीमार हो जाते हैं, हॉस्पिटल में जाने की स्थिति बन जाती है। यह क्यों होता है? जिनमें त्याग की शक्ति नहीं है, वे आमय को आमंत्रण देते हैं। हम संयम करना सीखें, त्यागना सीखें, छोड़ना सीखें। यह तो एक अच्छा विकास हुआ है कि जैन समाज में बहुत लोग उपवास करते हैं, अनेक भाई-

पथ चुनें पर कौन-सा ६५

बहिन वर्षीतप करते हैं। यह त्याग की शक्ति और आहार का संयम सरल नहीं है। यदि व्यक्ति को स्वादिष्ट और मनभावन भोजन मिल जाए तो वह संयम रख नहीं पाता। त्याग की शक्ति का विकास पद्मलेश्या का लक्षण है।

आनंद का निर्झर

पद्मलेश्या का एक लक्षण है—सदानन्दः। सदा आनन्द का निर्झर प्रवाहित रहता है। एक स्थिति है क्षणिक सुख अथवा आनन्द की। एक स्थिति होती है निरन्तर सुख और आनन्द की। गर्मी का मौसम। गर्मी लगी और पंखा चलाया, एकदम सुख का अनुभव हो गया। बिजली गई, पंखा बंद हुआ तो दुःख हो गया। आज प्रातः हम लोग बाहर घूमकर आए। काफी लोग साथ थे। एक युवक ने पंखा चलाने का प्रयत्न किया। पंखा नहीं चला। वह बोला—‘उमस है, गर्मी लग रही है। पंखा चले तो कितना अच्छा हो।’

मैंने कहा—बिजली चली जाएगी, पंखा बंद हो जाएगा। तब क्या होगा ? तुम थोड़ा सहन करना सीखो। तुम उस आनन्द की खोज करो, जो चौबीस घंटा बना रहे। वह सुख मिल जाए तो दुःख कभी होता ही नहीं है। तुम केवल बाहर के सुख में मत उलझो। यह ठीक है कि एक सामाजिक प्राणी सुख-सुविधा भी जुटाता है। पंखा भी चलाता है, कूलर भी चलाता है, एयर-कंडीशन भी बना लेता है, और भी न जाने कितने साधन करता है। किन्तु उनमें मत अटको, मत उलझो। पद्मलेश्या को समझने का थोड़ा प्रयत्न करो। ऐसी स्थिति का निर्माण करो कि सदा आनन्द रहे। गर्मी है तो भी आनन्द, पंखा चला तो भी आनन्द। बिजली चली गई तो भी आनन्द। उस स्थिति का निर्माण करो तो कभी दुःख नहीं होगा।

जो लोग कोलकाता, मुंबई, दिल्ली जैसे शहरों में छोटे-छोटे बंद फ्लैटों में रहते हैं, जब बिजली चली जाती है तब कैसी स्थिति बनती है? बाहर का प्रकाश नहीं, बाहर की हवा नहीं। सब कुछ बिजली और कृत्रिम साधनों से चलता है। इस स्थिति में बड़ी कठिनाई होती है। पर आजकल एक उपाय निकाल लिया लोगों ने, जनरेटर लगा लिए, अपनी व्यवस्था कर ली। पर जनरेटर भी खराब हो सकता है।

खोज उस आनन्द की

जैन विश्व भारती में काफी बड़ा जनरेटर लगाया हुआ था। एक दिन ऐसा हुआ—बिजली भी गायब और जनरेटर भी खराब। इस स्थिति में सदा

आनन्द नहीं होता। एक ऐसा उपाय खोजें, ऐसा मार्ग खोजें, जो सदा आनन्द दे। जिस आनन्द में कोई बाधा नहीं डाल सके, उस आनन्द की खोज का मतलब है—प्रिय, अप्रिय—कोई भी स्थिति बाधा नहीं डाल सकती। २४ घंटा वह आनन्द का कूलर अथवा पंखा चलता रहता है, जो कभी थकता नहीं है, रुकता नहीं है, विश्राम नहीं करता। यह पद्मलेश्या का परिणाम है। जो व्यक्ति पद्मलेश्या की साधना करता है, वह इस स्थिति में चला जाता है—निरन्तर प्रसन्नता, निरन्तर आनन्द, निरन्तर सुख का अनुभव। कभी दुःख नहीं होता।

कारण दुःख का

प्रश्न है—यह स्थिति कब आती है? यह स्थिति वीतरागता में आती है। वीतराग कभी दुःखी नहीं होता। उसके दुःख होता ही नहीं। न वह पौद्गलिक सुखों से सुखी होता। दुःख का कारण है मोह-कर्म का चक्र। वह समाप्त हो गया तो काल्पनिक सुख की अनुभूति कराने वाला चक्र भी समाप्त हो गया। कहा गया—सदा दिवाली संत के आठों प्रहर आनन्द—वह आनन्द वीतराग के होता है। उससे कुछ नीचे आए तो अप्रमत्त के होता है। अप्रमत्त कभी दुःखी नहीं होता। वह सदा आनन्द में रहता है। जहां कोई प्रमाद नहीं है, वहां कभी दुःख नहीं होता। इससे नीचे आए तो प्रमत्त अवस्था है। क्या प्रमत्त अवस्था में सदा आनन्द का अनुभव हो सकता है? जिस व्यक्ति ने अपना सम्बन्ध आत्मा के साथ स्थापित कर लिया, वह सदा आनन्द में रहता है।

यह सुख और दुःख का चक्र चलता है पदार्थ के जगत् में। जहां वस्तु के साथ सम्बन्ध जोड़ा, वहां कभी सुख कभी दुःख होगा। अनुकूल वस्तु मिली, सुख हो गया। उसका वियोग हुआ, दुःख हो गया। जहां पदार्थ के साथ हमारा सम्बन्ध है वहां सुख और दुःख का चक्र चलेगा। जहां हमारा सम्बन्ध केवल अपनी आत्मा के साथ हो गया, बस न कुछ बाहर से लेना, न देना, न निन्दा, न प्रशंसा, न सम्मान, न अपमान, न लाभ, न अलाभ—कुछ भी नहीं, बस केवल आत्मा का अनुभव और ध्यान। वह सदा सुखी रहता है। उसके सुख में कभी कोई बाधा नहीं आती, विघ्न नहीं आता। यह सदा आनन्द का जो परिणाम है, हमारी चेतना की धारा है, वह पद्मलेश्या से प्राप्त होती है। जो व्यक्ति पद्मलेश्या में रहता है, उसमें यह स्थिति बनती है। यह बहुत सूक्ष्म धारा है।

पथ चुनें पर कौन-सा ६७

पथ सद्गति का

मूल शब्द है पक्ष्म-पराग। जैसे फूल पर पराग होता है, भंवरा उस पराग को लेता है, रस को लेता है। जो चिन्तन का सार है, वह है पद्मलेश्या। एकदम पवित्रता की स्थिति आ जाती है, आभामण्डल विशुद्ध बन जाता है। उसका एक लक्षण है सदानन्द-उस आनन्द को कोई समाप्त नहीं कर सकता, उसमें कोई बाधा नहीं डाल सकता।

सहन करने की शक्ति का विकास, त्याग की शक्ति का विकास, सदा आनन्द की अनुभूति-जिस व्यक्ति के जीवन के ये तीन सतत सहचर बने हुए हैं, मानना चाहिए-वह व्यक्ति पद्मलेश्या की भावधारा में अवगाहन कर रहा है, उसने सद्गति का पथ प्रशस्त कर लिया है।

किस लेश्या में जी रहे हैं आप (७)

मनुष्य का भाव उत्तरोत्तर विकसित होता है, प्रशस्त होता है, तो वह शुक्ल लेश्या तक पहुंच जाता है। शुक्ल लेश्या-आभामण्डल श्वेत रंगमय बन जाता है। जब रंग पूरा सफेद होता है, तब सब रंग उसमें समा जाते हैं। भावधारा निर्मल, स्वच्छ और पवित्र बन जाती है।

रागद्वेषविनिर्मुक्तः, शोकनिंदाविवर्जितः।

परात्मभावसंपन्नः, शुक्ललेश्यो भवेन्नरः॥

शांत हैं राग और द्वेष

शुक्ल लेश्या का एक लक्षण है-‘रागद्वेषविनिर्मुक्तः’। शुक्ल लेश्या की भावधारा में जीने वाला राग और द्वेष दोनों से मुक्त होता है। इस प्रकार भी कह सकते हैं-आभामण्डल में श्वेत रंग है तो समझ लें इस व्यक्ति का राग भी शांत है, द्वेष भी शांत है। राग-द्वेष की ऊष्मा, गर्मी नहीं है। जब राग की प्रबल आसक्ति और द्वेष की गर्मी होती है तब आभामण्डल में सफेद रंग नहीं होता। धुंधला-धुंधला, मटमैला सा रंग होता है।

अमेरिका की एक महिला वैज्ञानिक जे. सी. ट्रस्ट ने अनेक व्यक्तियों के आभामंडल के फोटो लिये। वे फोटो सामान्य कैमरे से नहीं लिए गए, हाई फ्रिक्वेंसी कैमरे से लिए गए। आभामण्डल का फोटो लेने के लिए विशिष्ट कैमरे होते हैं। उससे पूरे आभामण्डल का फोटो लें तो कैमरा पूरी कोटड़ी को कवर कर लेता है। अंगुली के आभामण्डल का लें तो मध्यम साइज का होता है।

राजलदेसर चतुर्मास (सन् १९६३) में कनाडा का एक प्रोफेसर आया। उसके पास वह कैमरा था, जिससे आभामण्डल का फोटो लिया जा सके। उससे बाहरी अवयवों का फोटो नहीं आता, किन्तु भीतर का फोटो आ जाता है।

जे. सी. ट्रस्ट ने आभामण्डल के चित्रों का विश्लेषण करते हुए एक पुस्तक लिखी ‘एटम एण्ड ओरा’। पुस्तक में लिखा-‘मैंने ऐसे लोगों के फोटो

पथ चुनें पर कौन-सा ६६

लिए, जो साधारण दिख रहे थे, कपड़े भी बहुत साफ नहीं थे किन्तु उनका आभामण्डल बहुत पवित्र था। मैंने ऐसे लोगों के फोटो भी लिये, जो बहुत साफ-सुथरे रहते थे और बड़े अच्छे लगते थे, किन्तु उनका आभामण्डल धुंधला, गंदला और खराब था।'

अमुक व्यक्ति कैसा है? सामान्य आदमी पहचान करता है आकार और रंग-रूप को देखकर। जब भीतरी पहचान करने वाला कोई गुरु होता है, वह आभामण्डल देखता है तो उसे आभामण्डल से पता लग जाता है कि व्यक्ति कैसा है। व्यक्ति धोखा देने वाला तो नहीं है? व्यक्ति अति चंचल तो नहीं है? व्यक्ति हानि पहुंचाने वाला तो नहीं है? आभामण्डल में सफेद रंग का वलय बन जाता है तो जाना जा सकता है कि राग शांत है और द्वेष भी शांत है।

शोक और निंदा से मुक्त

शुक्ल लेश्या का दूसरा लक्षण है—शोक और निंदा से मुक्त। वह सदा अशोक—शोक रहित रहता है, प्रसन्न रहता है। निंदा और विकथा से मुक्त रहता है।

परात्म-भाव

तीसरा लक्षण है 'परात्मभावसम्पन्नः'। वह परात्म भाव—परम भाव में चला गया है, आत्मा की उच्च भूमिका में चला गया है। जहां केवल आत्मा का दर्शन है, वहां चला गया है।

आत्मा को व्यवहार की दृष्टि से तीन भागों में बांटा गया—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। परमात्मा सबसे ऊंची भूमिका है।

बहिरात्मा वह है, जिसका दृष्टिकोण मिथ्या होता है। जिस व्यक्ति का दृष्टिकोण पदार्थपरक होता है, जिसे केवल पदार्थ ही अच्छे लगते हैं, खाना अच्छा लगता है, कपड़ा पहनना अच्छा लगता है, उसी में रुचि और आकर्षण रहता है, पदार्थ के सिवाय और कुछ भी दिखाई नहीं देता, वह व्यक्ति बहिरात्मा है।

अंतरात्मा वह व्यक्ति है, जो सम्यक् दर्शन को प्राप्त हो गया है। वह पदार्थ को छोड़ नहीं पाता किन्तु पदार्थ को मात्र उपयोगी मानता है, जीवन चलाने के लिए आवश्यक मानता है किन्तु उसमें आसक्त नहीं होता, लुब्ध नहीं होता। वह केवल पदार्थ को ही नहीं देखता। जो आदमी पदार्थपरक होता है वह उसी पर केन्द्रित होता है।

७० पथ चुनें पर कौन-सा

मूल्य चेतना का या पदार्थ का

घर में आग लग गई। सेठ ने अपने कर्मचारियों से कहा—देखो, वह पेटी निकालो, वह पेटी निकालो, वह निकालो। जिसमें गहना, आभूषण, चांदी, सोना रखा था, सारा कीमती सामान बाहर निकाल लिया। सोचा—अब चिन्ता की कोई बात नहीं है। सब बाहर खड़े मकान को जलता हुआ देख रहे हैं। पुराना जमाना था। दमकलें तो थी नहीं। अब आग कैसे बुझाएं? बहुत प्रयत्न किया पर आग नहीं बुझी। सेठानी पीहर गई हुई थी। गांव में ही पीहर था। पता लगा—घर में आग लग गई। वह दौड़ी-दौड़ी आई। सेठ ने कहा—बहुत बुरा हुआ, आग लग गई पर कोई खास चिन्ता की बात नहीं है। जितना कीमती सामान था सारा बाहर निकाल लिया। वह बोली—मेरा लड़का कहां है? छोटा मुन्ना सोया हुआ था, वह कहां है?

‘अरे! उसको तो भूल ही गये।’

जो भोगने वाला था वह तो जल गया और जो भोग्य पदार्थ थे वे सब बाहर निकाल लिए। जब पदार्थपरक दृष्टिकोण बनता है तब केवल पदार्थ, केवल वस्तु पर ही सारा ध्यान अटकता है। वहां आत्मा, चेतना, व्यक्ति गौण बन जाता है, उसकी ओर ध्यान ही नहीं जाता। यह बड़ी समस्या है।

दो भाइयों में लड़ाई होती है, किसलिए? जमीन के थोड़े से टुकड़े के लिए या रुपयों के लिए। धन का मूल्य ज्यादा है या भाई का? मूल्य ज्यादा किसका है? जब लड़ाई को देखते हैं तब यह नहीं कहा जा सकता कि भाई का, पिता का, मां का मूल्य ज्यादा है। ज्यादा मूल्य है धन का। धन के लिए न जाने कितने अनर्थ होते हैं। ऐसा इसलिए होता है कि पदार्थ में आदमी उलझ गया और इतना उलझ गया कि उसे लगता है—पदार्थ के सिवाय और कोई सारपूर्ण वस्तु नहीं है। इस असार संसार में केवल धन ही सार है, पदार्थ ही सार है। किन्तु जब सम्यक् दर्शन होता है तब धन को अनुपयोगी तो नहीं मानता, आवश्यक मानता है, उसकी उपयोगिता को स्वीकार करता है किन्तु उसे सब कुछ नहीं मानता। दृष्टिकोण बदल जाता है। वह है सम्यक् दर्शन या अंतरात्मा।

पांच परम आत्माएं

अंतरात्मा की भूमिका में आने के बाद आत्म-दर्शन की जिज्ञासा जाग जाती है, जैसे केवली जम्बूकुमार में जागी थी। उसके सामने एक ही संकल्प

पथ चुनें पर कौन-सा ७१

रहा—मुझे आत्मा का साक्षात्कार करना है, आत्मा को देखना है, चेतना का अनुभव करना है, चेतना के अनुभव में जीना है। यह स्थिति जब बनती है, तब परमात्म भाव की स्थिति आ जाती है, उस समय शुक्ल लेश्या होती है।

परमेष्ठी नमस्कार महामंत्र में जिनका स्मरण किया जाता है, वे पंच परमेष्ठी—पांचों परम आत्माएं हैं।

णमो अरहंताणं—अर्हत् परम आत्मा।

णमो सिद्धाणं—सिद्ध परम आत्मा।

णमो आयरियाणं—आचार्य परम आत्मा।

णमो उवज्झयाणं—उपाध्याय परम आत्मा।

णमो लोए सव्व साहूणं—शुद्ध साधु परम आत्मा।

इसका अर्थ यह है—जिस व्यक्ति ने आत्म-दर्शन की आकांक्षा से साधना शुरू कर दी—मुझे आत्मा का साक्षात्कार करना है, उसका परमात्मा की भूमिका की ओर प्रस्थान हो गया। यह शुक्ल लेश्या की ओर प्रस्थान का लक्षण है। जो शुक्ल लेश्या में जीता है वह परमात्मा की भूमिका पर पहुंच जाता है।

क्यों बना कीट ?

मुनि कीर्तिधर ने कृष्ण, नील, कापोत, तेजस्, पद्म, शुक्ल—इन छह लेश्याओं के लक्षणों का प्रतिपादन किया। राजा प्रियंकर ने अवधानपूर्वक सुना। राजा प्रियंकर बोला—‘महाराज! आपने लक्षण बतलाए। आप यह भी बतलाएं—मेरा पिता, जो राजा था, वह मरकर कीड़ा क्यों बना ? इसका क्या कारण है?’

मुनि कीर्तिधर ने कहा—‘राजन्! तुमने छहों लेश्याओं का वर्णन सुन लिया। यह जैन दर्शन का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। अब तुम्हारे प्रश्न का भी मैं उत्तर दे रहा हूं।’

‘राजन्! जो व्यक्ति कृष्ण लेश्या की भावधारा में जीता है, वह मरने के बाद नरक में जाता है।’

जो व्यक्ति नील लेश्या की भावधारा में जीता है, वह मरने के बाद स्थावर योनि में पैदा होता है। पांच स्थावर काय हैं—पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय। इनमें जन्म लेता है।

७२ पथ चुनें पर कौन-सा

जो व्यक्ति कापोत लेश्या की भावधारा में जीता है, वह मरने के बाद तिर्यच गति—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय—पशु, पक्षी योनि में पैदा होता है।

‘प्रियंकर! तुम्हारा पिता जब मरा तब कापोत लेश्या की भावधारा थी इसलिए वह कीट बन गया।’

जो पहले शक्तिशाली राजा था, वह मरने के बाद कीड़ा बन गया क्योंकि वह कापोत लेश्या के परिणाम में था। यह एक बिन्दु है, जहां आदमी को सबसे ज्यादा सोचना चाहिए। मरते समय कौनसी लेश्या रहे? मृत्यु के समय अगर अच्छी लेश्या होती है तो अच्छी गति में जाता है और मरते समय खराब लेश्या आ जाती है तो नीची गति—नरक या तिर्यच गति में जन्म होता है।

कैसा हो अंतिम समय ?

तीन अशुभ लेश्याएं हैं—कृष्ण, नील व कापोत। जब इन लेश्याओं का परिणाम होता है तब निम्न गति हो जाती है। इसीलिए यह परम्परा रही—भाई! अंतिम समय में धर्म-ध्यान सुनाओ, आराधना सुनाओ। चौबीसी सुनाओ। पूरा वातावरण धार्मिक रखो। यदि अचेत है तो भी सुनाते रहो। क्योंकि भीतर से एक शब्द भी सुन लेता है तो भीतर की भावधारा बदल जाती है। यह बहुत आवश्यक है। ऐसे न सुने तो जोर-जोर से बोलकर भी सुनाओ, शरण दिलाओ। मैंने पूज्य कालूगणी का अंतिम समय देखा है। अंतिम समय में कालूगणी ने पूछा—‘मगनलालजी स्वामी आए या नहीं?’

संतों ने कहा—‘गुरुदेव! अभी नहीं आए।’

‘आ रहे हैं क्या?’

संत गए बुलाने के लिए। मंत्री मुनि तेज चलते हुए आए। बदली हुई स्थिति को देखा, सोचा—अब तो बस अंतिम समय है। उन्होंने बहुत जोर से शरण सूत्र सुनाए—अरहंता को शरणो, सिद्धा को शरणो। इसका मतलब है—अंतिम समय में ऐसा वातावरण बने कि सिवाय धार्मिक वातावरण के कुछ भी न रहे। न मोह का वातावरण, न ममता का वातावरण, न पीछे की चिन्ता—सबसे मुक्त, केवल आत्मा का वातावरण। जब यह वातावरण होता है तब अच्छी गति हो जाती है। यह एक ऐसा समय है कि या इधर या उधर। अगर चेतना का परिणाम खराब आया तो निम्नगति और परिणाम अच्छा आ गया तो ऊर्ध्वगति। यह एक ऐसा निर्णायक मोड़ है कि उस समय ज्यादा

पथ चुनें पर कौन-सा ७३

सावधान रहना होता है। तिब्बत के जो लामा होते थे, उनमें परम्परा थी—जो लामा मर जाता, उसे मरने के बाद भी जोर-जोर से बोलकर सुनाते थे। श्रमण परम्परा में यह परम्परा रही है कि अंतिम समय में बहुत जोर से सुनाते हैं।

बहुत महत्वपूर्ण है कि अंतिम समय कैसा हो? जो समझदार श्रावक-श्राविका, साधु-साध्वी होते हैं वे पहले इस बात की सूचना दे देते हैं कि देखो ध्यान रखना, अंतिम समय संधारे के बिना न चली जाऊं, न चला जाऊं। यह भावना इसलिए रहती है कि अंतिम समय की परिणाम धारा पर आगामी गति निर्भर है। इस दृष्टि से बहुत अच्छा सूत्र है—जल्लेसे मरई तल्लेसे उववज्जई—जिस लेश्या में मरता है, उसी लेश्या में पैदा होता है। अगर कृष्ण लेश्या में मरता है तो कृष्ण लेश्या की गति—नरक आदि में पैदा होता है। नील लेश्या में मरता है तो स्थावर काय में पैदा होता है। कापोत लेश्या में मरता है तो तिर्यच योनि में पैदा होता है।

कहां से कहां चला गया

मुनि कीर्तिधर ने समाधान दे दिया—‘प्रियंकर! तुम्हारा पिता कापोत लेश्या में मरा था इसीलिए वह कीड़ा बन गया।’

राजा प्रियंकर यह बात सुनकर कांप उठा। यह कांपने की बात तो है ही। जो व्यक्ति दस मिनट पहले राजा था, दो मिनट पहले भी राजा था, पूरे देश का शासक था जिसकी सेवा में हजारों-हजारों व्यक्ति रहते थे, जिसका शासन चलता था, वह मरने के बाद क्या बना? अकूरड़ी पर कीड़ा बन गया। तुलना करें—कहां से कहां चला गया? इससे नीची गति और क्या होती है? नरक की स्थिति उससे भी बदतर है पर यह स्थिति भी क्या नरक से कम है? उसके लिए तो यह नरक जैसा ही हो गया।

राजा प्रियंकर का सारा शरीर कांप उठा, मन भी कंपित हो गया। भीतर में वेदना, पीड़ा, व्यथा, दुःख सब कुछ उत्पन्न हो गया। पर करे क्या?

अच्छी गति की लेश्याएं

प्रियंकर ने गहरा निःश्वास छोड़ते हुए पूछा—‘महाराज! यह भी बतलाएं कि अच्छी गति की लेश्याएं कौन सी हैं?’

मुनि कीर्तिधर बोले—‘प्रियंकर! जो तेजोलेश्या में मरता है, वह मरने के बाद मनुष्य बनता है।’

जो पद्मलेश्या की भावधारा में मरता है, वह देवलोक में जाता है।

शुक्ल लेश्या में मरने वाला ऊर्ध्व देवलोक में जाता है अथवा मोक्ष में जाता है।

यह देख लें कि मरते समय कौनसी लेश्या रही, कौनसी भावधारा रही? यदि मरते समय आभामण्डल का फोटो लिया जाए तो भविष्यवाणी की जा सकती है कि अमुक व्यक्ति किस गति में जाकर पैदा हुआ है। उस फोटो में लेश्या के रंग आ जाते हैं कि कौनसी लेश्या थी और कौन सा रंग आया है। आजकल अनेक बीमारियों के निदान भी इस प्रकार होते हैं। डाइग्नोसिस कराने के लिए बड़ी मशीनों के पास जाना नहीं पड़ता। फोटो लिया और पता लग गया कि कौन सी बीमारी हुई है। यह भी पता लग जाता है कि तीन महीने के बाद कौनसी बीमारी होने वाली है।

प्रियंकर का संकल्प

लेश्या के इस विवेचन को सुनकर प्रियंकर प्रतिबुद्ध हो गया। उसने राज्य का भार संभाला,, दायित्व का निर्वाह किया किन्तु एकदम अनासक्त होकर रहा, 'धाय खिलावै बाल' की तरह रहा। कहा गया—

**जिम समदृष्टि जीवड़ा, करै कुटुम्ब प्रतिपाल।
अंतर में न्यारा रहे, ज्यूं धाय खिलावै बाल॥**

जैसे धाय माता बच्चे का लालन-पालन करती है, खिलाती-पिलाती है, सब कुछ करती है पर एक क्षण के लिए भी वह यह नहीं समझती कि यह लड़का मेरा है। इसी प्रकार जो सम्यक्-दृष्टि जीव है वह काम करता है, समाज में रहता है, गृहस्थी को चलाता है, पालन-पोषण करता है, व्यापार करता है, धन कमाता है, जो उचित लगता है वह सब कुछ करता है, किन्तु भीतर में यह समझता है कि यह सब शरीर की चर्या है, आत्मा की चर्या नहीं है। वह धाय मां की तरह भीतर में एकदम अलग रहता है। यह स्थिति जब आ जाती है तब लेश्या विशुद्ध बनती चली जाती है।

प्रियंकर ने संकल्प कर लिया—मैं अधिक से अधिक प्रशस्त लेश्या में जीने का प्रयत्न करूंगा। मैं कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या की भावधारा में नहीं जीऊंगा।

पिता का मरण, कीट रूप में उत्पाद और मुनि कीर्तिधर का संबोध—प्रियंकर की चेतना का रूपान्तरण हो गया। वह प्रतिबुद्ध होकर अनासक्त भाव से अपने जीवन को चलाने लगा।

पथ चुनें पर कौन-सा ७५

समझें लेश्या का मर्म

जो व्यक्ति लेश्या के इस मर्म को समझ लेता है, वह निरन्तर भाव शुद्धि में रहने की साधना करता है। न कलह का भाव, न निन्दा, न ईर्ष्या, न चुगली, कुछ भी नहीं। विधायक भाव, अच्छा चिन्तन, अच्छा विचार—इस पवित्र भावधारा में जीता है। इस प्रकार विशुद्ध भावधारा में जीने वाला व्यक्ति सचमुच अपनी सद्गति का रिजर्वेशन करा लेता है। वह जब कभी जाएगा, ऊर्ध्वगति में जाएगा। नीची गति में जाने का रास्ता बंद हो जाता है। लेश्या के इस मर्म को समझें और गहराई से सोचें—मुझे किस लेश्या में जीना है? कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या में जीना है अथवा तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ल लेश्या में जीना है?

एक समुज्ज्वल भविष्य का पथ है और एक अंधकारमय भविष्य का पथ। एक चेतना के ऊर्ध्वारोहण का पथ है और एक चेतना के अधोगमन का पथ। कौन-सा पथ चुनेंगे आप?



कषाय को मंद कैसे करें?



कषाय को मंद कैसे करें? (१)

मौसम बदलता रहता है। जेठ का महीना होता है तब बीकानेर-चूरू संभाग में लूएं चलती हैं, हवाएं गर्म होती हैं, धूप बहुत तेज हो जाती है। व्यक्ति को सुख का अनुभव कम होता है। आषाढ़ का महीना आता है, मौसम बदल जाता है। आकाश में बादल छाए रहते हैं, ठंडी हवाएं भी आती हैं। मनुष्य को आनन्द का अनुभव होता है। शरीर जिसको चाहता है और मन उसका साथ देता है तब आनन्द का अनुभव हो जाता है, किन्तु वास्तव में आनन्द उसको मिलता है, जिसका कषाय मंद होता है। सुख और दुःख दोनों का जो कारण है, वह कषाय की तीव्रता और मंदता है। तीव्र कषाय, दुःख का अनुभव। मन्द कषाय, सुख का अनुभव। अग्नि जल रही है। उसके पास बैठना मुश्किल है। यदि कोई बैठ जाए तो टिक नहीं पाएगा। चूल्हा जलता है, सामान्य आंच है, थोड़ा-सा ताप आता है तो वह असह्य नहीं बनता।

विमर्शनीय बिन्दु

दो शब्द बहुत महत्वपूर्ण हैं—मन्द कषाय और तीव्र कषाय। जब तक व्यक्ति वीतराग नहीं बनता, कषाय विद्यमान रहेगा। क्रोध, मान, माया, लाभ—ये सब रहेंगे। किन्तु यदि इनको मन्द कर दिया तो फिर प्रज्वलन नहीं होगा, लपटें नहीं उठेंगी, चिनगारियां नहीं उछलेंगी, ये सताएंगे नहीं। यदि आग को भड़का दिया, तीव्र प्रज्वलित कर दिया तो वह आग कभी इतनी तीव्र हो जाती है कि पूरे गांव को भी जला देती है, नष्ट कर देती है।

पूज्य कालूगणी सरदारशहर चातुर्मास के लिए पधार रहे थे। मध्यवर्ती बुच्चास गांव के गढ़ में ठहरे। मध्याह्न का समय। गर्मी बहुत तेज थी। गांव में कहीं अचानक आग लगी और वह फैलती चली गई। ऐसा लग रहा था कि जैसे आग उगलता हुआ लाल लाल गोला आगे बढ़ रहा है। बड़ा भयंकर रूप बनता है, आग आगे से आगे बढ़ती चली जाती है और विनाश-लीला सी रच देती है।

७८ पथ चुनें पर कौन-सा

एक धार्मिक व्यक्ति के लिए सोचने का बिन्दु यह है—कषाय मन्द कैसे हो? एक व्यक्ति, जो स्वस्थ रहना चाहता है, बीमारियों से बचना चाहता है, उसके लिए भी यह विमर्शनीय है—कषाय मन्द कैसे हो? जो व्यक्ति तनाव से मुक्त रहना चाहता है, उसके लिए भी यह चिन्तनीय है कि कषाय मन्द कैसे हो? जो व्यक्ति कुछ काम करना चाहता है, अपनी शक्ति को व्यर्थ गंवाना नहीं चाहता, उसके लिए भी यह चिन्तन का विषय है कि कषाय मन्द कैसे हो? क्योंकि तीव्र कषाय की अवस्था में बुरे भाव ज्यादा आते हैं, बुरे विचार ज्यादा आते हैं, किसी काम में मन नहीं लगता। बस वैर-विरोध की ज्वाला ही दिखाई देती है इसीलिए अनेक दृष्टियों से यह सोचने का विषय है कि कषाय मंद कैसे हो?

जीवन की सफलता : कषाय की मंदता

कषाय की मंदता जीवन की सफलता है। एक नई पुस्तक प्रकाश में आई है—‘इमोशनल इंटेलिजेन्सी।’ जैन भाषा में उसका अनुवाद हो सकता है—कषाय का मंदीकरण। लेखक हावर्ड यूनिवर्सिटी में मनोवैज्ञानिक हैं। उन्होंने लिखा है—‘मैंने ऐसे लोगों को देखा है, जो बहुत होशियार हैं, दक्ष हैं, कला में कुशल हैं किन्तु वे लोग एक ऐसे व्यक्ति के नीचे काम कर रहे हैं जिस व्यक्ति का अपने कषायों पर नियंत्रण है।’ जो व्यक्ति बहुत पढ़ा-लिखा है किन्तु झगड़ा भी बहुत करता है, उसे कोई पसन्द नहीं करते। सब चाहते हैं—यह झगड़ालू आदमी यहां से चला जाए तो अच्छा रहे। उसके नीचे कोई रहना नहीं चाहता। उसके पास भी कोई रहना नहीं चाहता। जो शांत स्वभाव वाला होता है, हर कोई उसके साथ काम कर सकता है और उसके नीचे रह सकता है। बहुत बुद्धिमान पढ़े-लिखे लोग कम पढ़े-लिखे लोगों के नीचे काम करते हैं, इसका कारण है—कम पढ़े-लिखे लोगों का अपने कषायों पर नियंत्रण और अधिक पढ़े-लिखे लोगों का अपने कषायों पर अनियंत्रण।

लक्षण मंद कषाय का

अपने कषायों पर नियंत्रण जीवन की सफलता का, कार्य की सफलता का बहुत बड़ा सूत्र है। प्रश्न हो सकता है—हम मंद कषाय किसको मानें? मंद कषाय का लक्षण क्या है? कषाय की तीव्रता को कैसे पहचानें? यदि कोई बात जाननी होती है तो उसके लक्षण को देखना होता है। न्यायशास्त्र में दो शब्द आते हैं— लक्ष्य और लक्षण। लक्ष्य वह है, जिसको हमें जानना है और

लक्षण है जानने का साधन। नीलगाय कहीं घूम रही थी। प्रश्न आया—गोरयं गवयो वा—यह गाय है या गवय? कहा गया—यह गवय है, गाय नहीं है। यह नील गाय है, इसे रोझ भी कहते हैं। इसका लक्षण यह है कि इसके गल-कम्बल नहीं है। गाय के गल-कम्बल होता है, नीचे लटकता रहता है। गवय के गल-कम्बल नहीं होता। इस लक्षण से दोनों में भेद हो गया।

हम मंद कषाय किसको मानें? कषाय मंद है, उपशान्त है तो उसका लक्षण क्या है? बहुत सुन्दर लक्षण बतलाए गए—

सर्व्वेसिं पियवयणं, दुज्जणे वि खमकरणम्।
सर्व्वेसिं गुणगहणं, मंदकसायाण दिट्ठंता॥

सबके साथ प्रिय वचन बोलना, दुर्जन को भी क्षमा करना, सबके गुणों को ग्रहण करना—ये मन्द कषाय के लक्षण हैं।

प्रिय वचन

पहला लक्षण है—प्रिय वचन बोलना। मंद कषाय वाला व्यक्ति कभी कटु वचन नहीं बोलेगा। उसके मुंह से गाली नहीं निकलेगी, किसी के लिए कड़वी जबान नहीं होगी। मधुर भाषी, प्रिय भाषी, मृदु-भाषी होगा। अनावश्यक नहीं बोलेगा। अगर बोलना आवश्यक है तो प्रिय वचन कहेगा, मृदु, मीठा वचन कहेगा। किसी को गाली ही नहीं, 'रेकारा' 'तूंकारा' भी नहीं देगा। जयाचार्य ने आराधना में लिखा है—यदि मैंने राग-द्वेषवश किसी को 'रेकारा-तूंकारा' दिया हो तो खमतखामणा है। मंद कषाय वाला व्यक्ति 'अरे ओ' 'तूं जा रे' 'क्या पड़ा है' इस प्रकार 'रेकारा', 'तूंकारा' भी नहीं देता।

जोधपुर के लोग किसी युग में बहुत मृदुभाषी कहलाते थे। अब तो स्थितियां कुछ बदल गई हैं। जोधपुर की भाषाई शिष्टता की एक अलग पहचान थी। अलग संस्कृति, अलग सभ्यता और अलग बोली का ढंग। आपस में थोड़ी-बहुत कहा-सुनी भी हो जाती, लड़ाई भी होती तो वे आपस में इस भाषा में बात करते—'काई सा आप सा यूं काई फरमाओ सा।' यह बड़ी सतोली बोली रही है। बोली का बड़ा असर होता है, उससे पता लगता है कि व्यक्ति कैसा है? राजस्थानी लोकोक्ति है—'बोल्या कि लाधा' बोला और पता लग गया। जिसके आंख नहीं है, उसे अंधा भी कहा जा सकता है, सूरदास भी कहा जा सकता है, प्रज्ञा-चक्षु भी कहा जा सकता है। प्रज्ञाचक्षु का अर्थ है, जिसके चर्मचक्षु नहीं है। 'अंधा' शब्द व्यक्ति को चुभ सकता है।

c0 पथ चुनें पर कौन-सा

उससे अच्छा शब्द है सूरदास और उससे भी अच्छा शब्द है प्रज्ञाचक्षु। यह उत्तरोत्तर भाषा का विकास है।

वाणी से होती है पहचान

एक कोई प्रज्ञाचक्षु व्यक्ति बैठा था। उधर से एक ठाकुर और कर्मकर जा रहे थे। कर्मकर आगे-आगे चल रहा था, उसने कहा—अंधा भाई! राम राम! सूरदास ने भी उसी भाषा में कहा—‘गोलाभाई! राम-राम।’ ठाकुर पास आया, बोला—सूरदास जी! राम राम। उसने कहा—हां ठाकरां! राम राम। कर्मकर ने आश्चर्य के साथ पूछा—तुम अंधे हो फिर कैसे पहचान रहे हो? क्या केवल आंख बंद कर अंधे होने का अभिनय कर रहे हो?

‘नहीं, दिखाई नहीं देता।’

आश्चर्य के साथ पूछा—‘तो भेद कैसे किया?’

बोल्यो कि लाधा—बोली से पता लग गया। पहले ने जब कहा—अंधा भाई! राम-राम तब समझ लिया—कोई ऊंचा व्यक्ति नहीं है। दूसरे ने कहा—सूरदास भाई! राम-राम तब मैंने समझा कोई राजकुल का व्यक्ति है इसलिए मैंने भी वैसा कह दिया।

हमारी पहचान का सबसे बड़ा लक्षण है—वाणी, वचन। हम क्या बोलते हैं? कैसे बोलते हैं? जिसका कषाय मन्द है वह कभी रूखा वचन नहीं बोलेगा, कटुवचन नहीं बोलेगा, उतरती बात नहीं बोलेगा, निन्दा नहीं करेगा। जिसका कषाय शांत है, भीतर में आग नहीं जल रही है, कषाय का चूल्हा बुझा हुआ है, शांत है, वह सर्वत्र सबके साथ अच्छा व्यवहार करता है, किसी के लिए तिरस्कार की भाषा नहीं बोलता, अवज्ञा नहीं करता, अवहेलना नहीं करता, ताड़ना-तर्जना नहीं करता। एक मुनि के लिए यह विधान है—यदि साधु किसी को परुष वचन बोलता है, कठोर वचन बोलता है तो उसके मासिक प्रायश्चित्त आता है। मन्द कषाय का बहुत महत्वपूर्ण लक्षण है प्रिय वचन।

खम-करणम्

दूसरा लक्षण है—खम-करणम्, क्षमा करना। किसी ने दुर्वचन कहा तो सामने वाले व्यक्ति को क्षमा करना। एक धारणा यह होती है—एक अपशब्द कहा है तो वापस पांच शब्द कहे बिना बड़प्पन ही नहीं होता। ‘पाव पर पंसेरी’ या ‘ढेले का जवाब ईंट से’—यह धारणा रहती है। जो किया, उससे ज्यादा

पथ चुनें पर कौन-सा ८१

करो, जिससे वह पुनः दुस्साहस ही न करे। जिसका कषाय मन्द होता है, वह दुर्वचन को सहन करता है, क्षमा कर देता है और सोचता है—यदि सत्यं कः कोप, यद्यसत्यं किन्तु कोपेन। इसने जो कहा है, वह सत्य है, वास्तव में मुझमें कोई गलती है तो मैं क्रोध क्यों करूँ? इसने जो कहा है, वह असत्य है, मुझमें वह गलती नहीं है तो क्रोध करने का मतलब क्या? इस चिन्तन के साथ उपेक्षा कर देता है।

जब चिन्तन विधायक बनता है, सोचने का तरीका बदल जाता है।

कठिन है दुर्वचन सहना

भिक्षु धर्म प्रचार के लिए यात्रा पर जा रहे थे। गुरु ने कहा—भाई! तुम यात्रा पर जा रहे हो, तुम्हें सब तरह के लोग मिलेंगे। कुछ लोग ऐसे मिलेंगे जो तुम्हारी निंदा करेंगे, तुम्हें गालियां भी देंगे।

साधुओं ने कहा—‘हम सहन करेंगे।’

साधुओं को गालियां भी कम नहीं मिलती। कभी बहुत सम्मान होता है, कभी अपमान भी कम नहीं होता। पूज्य गुरुदेव ने स्वयं लिखा था—‘मेरा सम्मान भी इतना हुआ कि शायद कम लोगों का होता है। यदि कोरा सम्मान होता तो अहंकार आने का प्रसंग था। साथ में अपमान भी कम नहीं हुआ। संतुलन बन गया। न तो हीनभावना आई और न अहंकार की भावना।’

भगवान महावीर संथाल परगना क्षेत्र में गए। वह आदिवासी लोगों का प्रदेश था। वहां लोग कुत्ते पीछे लगा देते। भगवान अचेल थे, वस्त्र नहीं थे, लोग बड़ी अवज्ञा करते। गांव में नहीं जाने देते। भगवान ध्यान में बैठे हुए थे। लोग आए, भगवान को उठाया, यहां से उठाकर वहां पटक दिया। न जाने कितना अपमान किया और कितना कष्ट दिया किन्तु भगवान महावीर का कषाय शान्त था। बर्फ में से आग कैसे निकलेगी? हिमालय में आग कैसे लगेगी? जंगल में तो आग लग सकती है पर जहां हिमपात हो रहा है वहां आग कोई लगाना चाहे तो भी कैसे लगे? महावीर उस समय केवली नहीं बने थे, छद्मस्थ अवस्था में थे और छद्मस्थ में भी सराग छद्मस्थ अवस्था में थे फिर भी कषाय इतना मंद था कि सब कष्टों को समभाव से सहा।

दुर्वचन के कांटों को सहन करना कठिन होता है। अनेक व्यक्ति दूसरे की बात को तो सहन कर लेते हैं पर अपने साथ रहने वाला कुछ कह दे तो सहन नहीं होता। एक परिवार में पांच लोग साथ रहते हैं। उनमें से कोई कुछ

कह दे तो भयंकर स्थिति बन जाती है। यदि व्यक्ति दुर्वचन को सहन करता है तो मानना चाहिए—यह मन्द कषाय वाला व्यक्ति है।

चित्रण दुर्जनता का

जैसे दुर्वचन को सहना कठिन है, वैसे ही दुर्जन को सहन करना भी कठिन है। कुछ व्यक्ति प्रकृति से ही बड़े जटिल होते हैं। अच्छी बात कहो तो भी बुरा मानेंगे। कुछ भी कह दो, उलटा लेंगे, सम्यक् ग्रहण नहीं होगा, हर बात को विपरीत भाव से ग्रहण करेंगे।

आचार्य सोमदेवसूरि ने दुर्जनता का सुन्दर चित्रण किया है—

वरं विभवबंध्यता सुजनभावभाजां नृणा-
मसाधुचरितार्जिता न पुनरूर्जिता संपदः,
कृशत्वमपि शोभते सहजमायतौ सुन्दरं,
विपाकविरसा न तु श्वयथुसंभवा स्थूलता॥

इसका सारांश यह है—

वर दरिद्रता होय करत सज्जन कला,
दुराचार से मिले अर्थ सो नहीं भला।
वपू सहज कृश होय सुशोभा देत है,
सूज स्थूलता बड़े मरण के हेत है॥

धनरहित होना कोई बुरी बात नहीं है। एक आदमी को धन नहीं मिला, गरीबी को भोग रहा है किन्तु बुराई करके, गलत व्यवहार करके बहुत सारा इकट्ठा कर लेना भी अच्छा नहीं है। सुन्दर उदाहरण के द्वारा समझाया—किसी आदमी का शरीर पतला है, कृश है, अच्छा लगता है। शरीर पर सूजन आ गई, शरीर स्थूल बन गया। लोग कहते हैं कितना मोटा हो गया। यह स्थूलता मरण के हेत है—मृत्यु का लक्षण है।

दुर्जनता बहुत खराब होती है। जो व्यक्ति दुर्जन के व्यवहार को भी सहन कर लेता है, क्षमा कर देता है और दुर्जनता का व्यवहार नहीं करता—यह मंद कषाय का लक्षण है।

गुणी किसको मानें?

चौथा लक्षण है—सबके गुणों को ग्रहण करना। जिस दुनिया में हम जी रहे हैं, क्या आप एक भी व्यक्ति बता सकते हैं जो सर्वगुणसम्पन्न है अथवा वह

पथ चुनें पर कौन-सा ८३

व्यक्ति बता सकते हैं, जो सब अवगुणों से सम्पन्न है? एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिलेगा, जिसको सर्वगुणसम्पन्न कहा जाए, जिसमें सब गुण ही गुण हों। जिसको हम गुणी मानते हैं, उसमें भी कुछ कमियां होती हैं। जिसको हम बुरा मानते हैं, उसमें भी कुछ अच्छाइयां होती हैं। कुछ चोर, डाकू भी भले होते हैं। वैसे तो धंधा चोरी का करते हैं, डकैती करते हैं किन्तु उनमें कुछ विशेषताएं भी होती हैं। समाचार-पत्र में पढ़ा था—चम्बल की घाटी में जो डाकू डाका डालते थे, वे धनवान लोगों के घर से लाखों-लाखों रुपयों का धन-माल ले जाते थे और गांव में जो बहुत गरीब होते, उनमें उस धन को बांट देते थे। दुर्जन व्यक्ति में भी अच्छाइयां, विशेषताएं भी मिलती हैं। एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिलेगा, जिसको केवल गुणी कहा जाए और एक भी ऐसा नहीं मिलेगा, जिसको सर्वथा अवगुणी कहा जाए। हम किसको गुणी मानें और किसको अवगुणी?

हमारी विवक्षा यह होती है—जिसमें गुण ज्यादा होते हैं, उसको हम गुणवान कह देते हैं और जिसमें कमियां ज्यादा होती हैं, उसको अवगुणी कह देते हैं। किन्तु दोनों में कोई स्पष्ट भेदरेखा नहीं खींच सकते। बड़े-बड़े साधक हुए हैं, उन्होंने भी अपनी कमियों को स्वीकार किया है।

रामकृष्ण परमहंस ने लिखा—‘लोग मुझे कहते हैं कि बड़े साधक हैं, महर्षि हैं किन्तु मेरे में भी एक कमी है—मैं खाने का शौकीन हूं। उन्होंने लिखा—अगर यह कमी नहीं होती तो शायद मैं इस शरीर में रह नहीं पाता, और कहीं चला जाता।’

हर व्यक्ति में कोई न कोई कमी तो मिलती है फिर भी मन्द कषाय वाला व्यक्ति गुणों को ग्रहण करेगा, विशेषता बतलाएगा, वह अवगुणों को गौण कर देगा।

गुण ग्रहण करना बहुत बड़ी बात है। स्थिति यह है कि बहुत लोग गुणों को ग्रहण नहीं कर सकते। व्यक्ति में हजार अच्छाइयां होती हैं। एक जगह थोड़ी-सी भूल हो जाती है तो कह दिया जाता है—क्या पड़ा है इसमें। देखो, ऐसा काम करता है? व्यक्ति कुशल व्यवस्थापक है, अच्छी व्यवस्था करता है। एक दिन कहीं खामी हो गई तो किया कराया चौपट। बड़ी समस्या होती है। विशेष बात यह है कि व्यक्ति को दूसरे का अवगुण ज्यादा दिखाई देता है, अपना अवगुण दिखाई नहीं देता। समस्या इसलिए उलझती है कि दूसरे के अवगुण ही अवगुण दिखाई देते हैं। अपनी भूल को स्वीकार न करना, दूसरे

की विशेषताओं को छिपाना, दूसरे की भूलों को प्रगट करना—यह तीव्र कषाय का लक्षण है।

मानवीय प्रकृति की दुर्बलता

प्रसिद्ध घटना है। सास-बहू रसोई कर रही थी। घिलोड़ी (घी का पात्र) पास में पड़ा था। बहू किसी कार्य के लिए गई, ठोकर लगी और घी ढुल गया। सास बोली—‘अंधी है, देखकर नहीं चलती। घी कितना महंगा है। तूने ऐसे ही बेकार गंवा दिया।’ बहू मौन रही, सुन लिया शांति से।

दूसरा दिन। वही घिलोड़ी पड़ी थी। सास गई किसी काम से, ठोकर लगी और घी ढुल गया। सास बोली—‘कब तुममें चतुराई आएगी। रास्ते में घिलोड़ी रख देती हो, घी ढुल जाता है। थोड़ा एक ओर रखा करो, जिससे किसी का पैर न लगे।’

बहू एक दिन अंधी बन गई और दूसरे दिन रास्ते में रखने का दोष आ गया।

सन्ति सन्तः कियन्तः

हर चीज में कमी निकालना, कमी खोजना—यह तो मानवीय प्रकृति बन गई। यदि गुणों का थोड़ा-सा भी ग्रहण हो जाए तो शायद आदमी सुधर सकता है। केवल कमी का बखान करो, व्यक्ति नहीं बिगड़ता है तो भी बिगड़ जाएगा। यह गुणग्रहण हमारी बड़ी विशेषता है, उदार और विशाल व्यक्तित्व का लक्षण है। दूसरे के गुणों को देखना, ग्रहण करना—यह मंद कषाय का लक्षण है। जिसका कषाय मंद है, वह दूसरों की बहुत छोटी गुणात्मक बात को भी महत्त्व देता है। भर्तृहरि ने लिखा है—

परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं,
निजहृदि विकसन्तः सन्ति संतः कियन्तः।

जो दूसरे के गुण के अणु को पहाड़ बना कर बताए, वैसे संत कितने हैं? कुछ लोग ऐसा बखान करते हैं कि गुण के अणु को पहाड़ बना देते हैं। व्यक्ति बड़ा प्रसन्न होता है। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो दूसरे की अच्छाई को सुनते ही आवेश में आ जाते हैं। तत्काल प्रतिक्रिया कर देते हैं—तुम उसकी प्रशंसा करते हो? उसने यह किया, वह किया। इस प्रकार अवगुण का व्याख्यान करता है कि व्यक्ति अवाक् सा रह जाता है।

पथ चुनें पर कौन-सा ८५

गुणग्रहण की प्रशस्त परम्परा

तेरापंथ धर्मसंघ में गुणग्रहण की प्रशस्त परम्परा रही है। मंत्री मुनि मगनलालजी में एक दुर्लभ विशेषता थी—किसी में थोड़ा-सा कोई गुण होता तो उसका इतना बखान करते कि वह बस एकदम झूम जाता और शायद अच्छा बन जाता। उनके मुख से कभी किसी की आलोचना, कटु बात, कमी की बात मैंने नहीं सुनी। प्रशंसा, गुणोत्कीर्तन बहुत सुना। वे इतने बड़े संत थे कि धर्मसंघ में आचार्य के बाद सबसे बड़ा स्थान था। वे वृद्ध अवस्था में सरदारशहर में विराजमान थे। श्रावकों का झुण्ड उनके पास जमा रहता। उनकी बुद्धि, उनकी दृष्टि इतनी सूक्ष्म थी कि वे कहीं जाते तो ५०-१०० आदमियों का झुण्ड पीछे-पीछे चलता। इतना आकर्षण था। गर्मी का मौसम, कभी-कभी साधु पानी पिलाना भूल जाते। जैसे ही उन्हें याद आता, वे मंत्री मुनि से निवेदन करते—‘महाराज! भूल हो गई। आप माफ करें। मुझे याद नहीं आया, पानी नहीं पिलाया।’

मंत्री मुनि सहृदयता से कहते—‘भाई! कोई खास बात नहीं है।’

उनके मुख से यह कभी नहीं सुना कि कितनी देर हो गई, पानी लाए नहीं। प्यास भी लगती है, तुम ध्यान नहीं देते हो। हमेशा इस भाषा में बोलते—तुम लोग कितनी सेवा करते हो, कितना काम करते हो।

वे इस प्रकार सेवाभाव का वर्धापन करते कि करने वाले का मन और अधिक उल्लसित हो जाता।

आचार्य भिक्षु ने अपने शिष्यों का जिस प्रकार गुणोत्कीर्तन किया है, वह उनकी महानता का निदर्शन है। सभी शिष्य आचार्य के सहायक होते हैं, इसमें कोई खास बात नहीं है किन्तु आचार्य भिक्षु ने उनके सेवाभाव को बहुमान दिया। अपने शिष्यों के प्रति इन शब्दों में अपनी भावना व्यक्त की—‘मुनि भारमलजी, खेतसीजी, रायचंदजी आदि साधुओं के योग से मैंने शुद्ध साधुपन सुखे-सुखे पाला।’

श्रीमज्जयाचार्य की गुण-ग्रहण की वृत्ति विशिष्ट थी। उन्होंने व्यवस्था दी—चौमासा उतरने के बाद हर साधु-साध्वी जहां आचार्य है उस दिशा में विहार करेगा। व्यवस्था करना एक बात है, उसका अनुपालन बड़ा कठिन होता है। चौमासा उतरते ही जो सिंघाड़ा पहले आता, जयाचार्य उनके गुणों की ढालें बनाते। हमारी भाषा में कहते हैं कि उनको बहुत लडाया। सरस रागिनियों में रचना करते हुए लिखा—देखो, कितना विनीत साधु है, कितनी

८६ पथ चुनें पर कौन-सा

विनीत साध्वियां हैं जो चौमासा उतरते ही आचार्य के पास आ जाते हैं। उनके गुणों का ऐसा बखान किया कि न आने वाले भी सकुचाने लगे, मन में आने की बात आ गई, सोचा—हमको भी जाना चाहिए।

पहले भोजन की हमारी जो व्यवस्था थी, उसमें पांती (संविभाग) नहीं होती थी। साधु-साध्वी भिक्षा लाते, जो अच्छा आहार होता, वह साधु रख लेते और शेष बचता, वह साध्वियों को दे देते। जयाचार्य ने पांती की व्यवस्था की। किसी भी संस्कार को सहसा बदलना मुश्किल होता है। संस्कार ऐसा जम जाता है कि सहजता से बदला नहीं जाता। जयाचार्य ने अपने पट्ट शिष्य मधराजजी से कहा—मधजी! पांती की व्यवस्था करें?

उन्होंने स्वीकृतिसूचक उत्तर देते हुए कहा—‘हां, गुरुदेव!’

कुछ साधुओं के गले पांती की व्यवस्था नहीं उतरी। जयाचार्य ने पांती की व्यवस्था को उपयुक्त मानने वालों को बहुत लडाया। जो पांती की व्यवस्था में रुचि नहीं लेते थे उनकी उपेक्षा कर दी। जयाचार्य ने संविभाग का समर्थन करने वालों का इन शब्दों में वर्धापन किया—

**निज पांती में जो रंजे जी,
तिण मुनि नै कहो कुण गंजे जी।**

जो अपनी पांती में अनुरक्त रहता है, उस मुनि की कौन बराबरी कर सकता है? इस प्रकार गुणों का बखान किया कि जो पांती में रस नहीं लेते थे, वे भी पांती (संविभाग) के समर्थक हो गए।

गुण-ग्रहण एक बहुत बड़ी विशेषता है। यदि घर का मुखिया, ऑफिस, फैक्ट्री का मालिक अपने सहवर्ती कर्मचारियों के गुणों को ग्रहण करना नहीं जानता तो वह सफल नहीं हो सकता। यह गुण-ग्रहण की प्रवृत्ति मन्द कषाय का लक्षण है।

हमें यह सोचना है कि कषाय को मंद कैसे करें? क्रोध को कम कैसे करें? अहंकार को कम कैसे करें? कपट की वृत्ति को कैसे बदलें? भय बहुत लगता है, कम कैसे करें? मन में घृणा की भावना बनी रहती है, कैसे कम करें? अपनी वासना को कम कैसे करें? यह सीखना है धर्म के क्षेत्र में। जो व्यक्ति धर्म के क्षेत्र में आता है और इनका उपाय नहीं सीखता तो उसके लिए स्वयं चिन्ता का प्रश्न है कि मैंने क्या किया? इसलिए आप कषाय मंद करने का उपाय भी जानें और इस दिशा में प्रयत्न भी करें, जिससे जीवन सुखी और शांतिपूर्ण हो जाए।

पथ चुनें पर कौन-सा ८७

कषाय को मंद कैसे करें? (२)

इन दिनों आकाश में बादल छाए रहते हैं। मौसम बदला है, ताप कम हो गया। चारों ओर शीतलता व्याप्त है। ठंडा मौसम सुहावना और अच्छा लगता है। वैसे ही दिमाग ठंडा हो तो बहुत अच्छा लगता है। वह गरमा जाए, दिमाग में लू चलने लग जाए और दिमाग में टेम्प्रेचर ४५-५० तक पहुंच जाए तो बहुत समस्या हो जाती है। समाचारपत्र में पढ़ा—इस वर्ष पाकिस्तान में तापमान ५२-५३ डिग्री तक चला गया। यदि दिमाग में ५० डिग्री तक टेम्प्रेचर हो जाए, इतना सेल्सियस तापमान हो जाए तो कैसा लगेगा? आश्चर्य की बात यह है—दूसरे का ठंडा दिमाग सबको अच्छा लगता है, किन्तु अपना दिमाग गर्म हो जाए तो उसकी कोई चिन्ता नहीं करता। वह चाहता है कि औरों का दिमाग ठंडा रहे। जैसे मौसम में तापमान बढ़ता है, सर्दी के बाद गर्मी की ऋतु आती है। सूर्य जैसे-जैसे उत्तरायण की ओर जाता है, तापमान बढ़ता चला जाता है। जैसे सूर्य के दो अयन—उत्तरायण और दक्षिणायन होते हैं वैसे ही दिमाग में भी उत्तरायण और दक्षिणायन होते हैं।

प्रश्न होता है—दिमाग गर्म क्यों होता है? इसका कारण है—कषाय की तीव्रता। जब कषाय तीव्र होता है, कषाय की अग्नि ज्यादा प्रज्वलित होती है, तब दिमाग गरमा जाता है। जब कषाय शांत रहता है, दिमाग वातानुकूलित बन जाता है।

तीव्र कषाय का लक्षण

मनुष्य के मस्तिष्क में गर्मी भी होती है और ठंडक भी। स्वास्थ्य के संदर्भ में प्रसिद्ध कहावत है—हाथ पैर गर्म रहे और दिमाग ठंडा रहे। आज शायद विपरीत स्थिति है—दिमाग तो ज्यादा गर्म रहता है, हाथ पैर ठंडे रहते हैं। यदि थोड़ी सी कोई छेड़-छाड़ कर ले तो थर्मामीटर का पारा और तापमान—सब ऊंचे चले जाते हैं। प्रश्न है ऐसा क्यों होता है? इसका कारण है तीव्र कषाय।

पूर्व आलेख में हमने मंद कषाय के लक्षणों को जाना। अमुक प्रकार का लक्षण है, व्यवहार है तो समझना चाहिए कि कषाय मंद है। वैसे ही

८८ पथ चुनें पर कौन-सा

अमुक प्रकार के लक्षण हैं जिनसे समझा जा सकता है कि कषाय बहुत तीव्र है।

अप्पपसंसकरणं, पुज्जेसु वि दोषगहणं।
वैरधरणं च सूईरं, तिव्व कसायाण लिंगाणि॥

तीव्र कषाय के तीन लक्षण हैं—१. आत्म-प्रशंसा २. पूज्यों में दोष-दर्शन ३. दीर्घकालीन वैरानुबंध।

आत्म-प्रशंसा

पहला लक्षण है—अप्पपसंसकरणम्—आत्म-प्रशंसा करना। जो आदमी अपनी प्रशंसा ज्यादा करता है, मानना चाहिए उसका कषाय तीव्र है। जिसका कषाय तीव्र नहीं है, वह आत्म-श्लाघा नहीं करेगा। जिसका कषाय तीव्र है, वह अपनी प्रशंसा, अपना ही बखान करता रहता है—मैं ऐसा हूँ, मैं वैसा हूँ। मैंने यह किया, मैंने वह किया। कभी भी कोई पास में चला जाए, आत्म-श्लाघा और अपनी प्रशंसा के सिवाय कोई दूसरी बात नहीं आती। नीतिशास्त्रों में भी इस आत्मश्लाघा को बहुत जघन्य कार्य माना गया है।

पूज्य में दोष का दर्शन

तीव्र कषाय का दूसरा लक्षण है—पूज्यों में दोष-दर्शन। जो बड़े हैं, पूज्य हैं, उनमें भी दोष देखता रहता है, छिद्रान्वेषण करता है। यह छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति बहुत चलती है। कहां छेद हैं, जहां से झांक सकूँ।

एक गुरु चमत्कारी डंडा रखते थे। कोई भी आता, उस डंडे का उपयोग कर लेते, जिससे पता लग जाता कि आने वाला व्यक्ति कैसा है? किस भावना से आया है? उसका चरित्र कैसा है? उसका व्यवहार कैसा है? एक दिन नवदीक्षित चेला आया, पूछ लिया—‘गुरुदेव! यह क्या है।’

‘वत्स! यह जादुई डंडा है।’

‘गुरुदेव! इससे क्या होता है?’

‘वत्स! जिसके सामने घुमाओ, उसका पूरा चित्र सामने आ जाता है, व्यक्ति के भीतर का पता लग जाता है। जैसे एक्सरे से भीतर का फोटो आ जाता है, यह एक्सरे से भी ज्यादा रहस्य खोल देता है।’

शिष्य बोला—‘गुरुदेव! कृपा करें। आज यह डंडा आप मुझे दे दें। आज जितने लोग आएंगे उन सबको मैं देखूंगा।’

पथ चुनें पर कौन-सा ८६

गुरु के मन में करुणा आई, डंडा दे दिया। आश्रम में जो भी लोग आते, शिष्य सबके सामने डंडा घुमाता। डंडा घुमाते ही व्यक्ति का चरित्र सामने आता और शिष्य बोलना शुरू हो जाता—यह ऐसा है, यह वैसा है। गुरु ने कहा—‘इतना ज्यादा मत करो।’

‘गुरुदेव! आज तो देख लूं। मैं फिर नहीं करूंगा।’

‘वत्स! रहने दो, ज्यादा मत करो।’

‘गुरुदेव! आज आपने दे ही दिया है। आज तो देखने दें।’

शिष्य ने अनेक लोगों को देखा, उसका आकर्षण बढ़ता गया। मन में विकल्प आया—गुरु के सामने भी घुमाकर देखूं।

अपात्र के हाथ में कोई शक्ति आती है तो कभी-कभी देने वाले पर उसका प्रयोग हो जाता है। इसीलिए योग्य-अयोग्य, पात्र-अपात्र का विचार किया गया। यह निर्देश रहा—शक्ति अपात्र के हाथ में मत दो, अयोग्य व्यक्ति के हाथ में मंत्र मत दो। अन्यथा वह मंत्र स्वयं देने वाले को भी सताने लग जाता है।

जैसे ही गुरु की तरफ डंडा घुमाया, शिष्य एकदम नाच उठा, बोला—‘गुरुदेव! कमी तो आप में भी है। देखो, यह कमी है वह कमी है। तीन-चार कमियां बता दी।’

गुरु ने कहा—‘मूर्ख! केवल दूसरों की तरफ घुमाता है, जरा अपनी ओर भी तो घुमा कर देख।’

शिष्य ने अपनी ओर डंडा किया और एकदम अवाक् रह गया।

गुरु ने पूछा—‘क्या हुआ?’

‘गुरुदेव! आपमें तो छोटा सा छेद था पर यहां तो बघारे ही बघारे पड़े हैं।’

कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो पूज्य व्यक्तियों का भी छिद्रान्वेषण करते हैं, दोष ग्रहण करते हैं। इसका मतलब है कि कषाय तीव्र है, कषाय उपशान्त नहीं हुआ है।

वैर को धारण करना

तीसरा लक्षण है—वैर को चिरकाल तक धारण करना। किसी से कोई अनबन हो गई, बोलचाल हो गई, कटु व्यवहार हो गया। बस अब तो कभी भुलाने का नहीं है। वर्ष बीत जाए, दो वर्ष बीत जाएं, दस वर्ष बीत जाएं।

६० पथ चुनें पर कौन-सा

गांठ खुलती नहीं है। आज कुछ लोगों के साथ दो भाई आए। वे आपस में खमतखामणा करना चाहते हैं। मैंने पूछा—बोलचाल बंद कब से है। उत्तर मिला—बहुत लम्बे समय से है। एक भाई ने कहा—‘मैंने तो दो वर्ष पहले ही खमतखामणा कर लिया। पर इन्होंने नहीं किया।’

मैंने पूछा—‘भाई! आपने क्यों नहीं किया?’

उसने सरलता के साथ कहा—‘गुरुदेव! मेरा मन साफ नहीं हुआ था, गांठ खुली नहीं थी, मैं कैसे करता? अब मन साफ हुआ है, इसलिए अब करता हूँ।’

लम्बे समय तक वैर के उत्स को बनाए रखते हैं, बात को भुलाते नहीं हैं। चिरकाल तक वैर की गांठ खुलती नहीं है। यह तीव्र कषाय का लक्षण है।

बहुत कठिन है भुलाना

जहां अनेक लोग साथ रहते हैं, वहां कुछ होना अस्वाभाविक नहीं है। एक महत्त्वपूर्ण शब्द है द्वन्द्व। संस्कृत में द्वन्द्व का एक अर्थ है दो और दूसरा अर्थ है लड़ाई। यानी दो और लड़ाई—दोनों साथ-साथ चलते हैं। जहां दो हैं वहां लड़ाई हो सकती है। एक ने कुछ कहा, दूसरा समझ नहीं सका तो लड़ाई शुरू हो जाती है। कई बार ऐसा होता है कि किसी ने कोई गूढ शब्द कह दिया। अर्थ नहीं समझ पाया, मन से ही कल्पना कर ली—यह मेरा विरोध कर रहा है, यह मेरा मजाक कर रहा है और लड़ाई शुरू कर दी। लड़ाई होना कोई बड़ी बात नहीं है। जहां बहुत लोग इकट्ठे रहते हैं, जहां परिवार है, समाज है वहां लड़ाई हो सकती है किन्तु जो हुआ, उसकी गांठ बांध कर बैठ जाना—अब इसको मैं बदलूंगा ही नहीं, जीवन भर पकड़े रखूंगा—यह तीव्र कषाय की स्थिति है। ऐसे लोगों को हमने देखा है। प्रकृति की इतनी जटिलता कि कभी भुलाना जानते ही नहीं। गुरुदेव तुलसी ने तो लिखा था—भूलो अतीत काल की भूला आगामी अनुकूलो। किन्तु बड़ा कठिन है भुलाना।

कुछ बातों को याद रखना अच्छा है तो कुछ बातों को भुलाना अच्छा है। जो केवल याद रखना जानता है, भुलाना नहीं जानता, वह सबसे ज्यादा दुःख का जीवन जीता है। बहुत बातें भुलाने की होती हैं। बहुत निकम्मी बातें जीवन में आती हैं, उन्हें भुला दो, मन से निकाल दो, जीवन में तनाव नहीं होगा, अशांति नहीं होगी।

एक सूत्र हमने बहुत लोगों को बताया—‘भाई! कुछ भी हो जाए, तुम्हारा कोई अपमान कर दे, कोई वैर विरोध करे, कुछ अवज्ञा कर दे तो यह सोच लो कि यह दुनिया है, इसमें बहुत कुछ होता है। जो उपकारी है, उसके प्रति भी कृतज्ञता नहीं होती। इतना सोच ले तो बात समाप्त है। जो इतना सोच नहीं पाता, वहां फिर गांठ खुलती नहीं है।’

मैत्री का उच्च आदर्श

जैन धर्म में बारह अनुप्रेक्षाएं प्रचलित हैं। बौद्ध धर्म में चार अनुप्रेक्षाएं प्रचलित हैं—मैत्री, मुदिता, करुणा व उपेक्षा। जैन धर्म में इन चार अनुप्रेक्षाओं को भी जोड़ा गया है। महर्षि पतंजलि ने भी इन चार अनुप्रेक्षाओं का वर्णन किया है। मैत्री की अनुप्रेक्षा का जो चिन्तन है बहुत महत्वपूर्ण है। जो व्यक्ति मैत्री की अनुप्रेक्षा कर लेता है, वह कषाय को मन्द कर देता है। उसका कषाय मंद हो जाता है।

मैत्री का एक उच्च आदर्श रखा गया, बहुत उदात्त चिन्तन किया गया। मैत्री की भावना जागे बिना ऐसा कोई सोच नहीं सकता। उपाध्याय विनयविजयजी ने लिखा—मेरे शत्रु लोग सुखी रहें। उनमें सन्मति आए, वे मोक्ष सुख को प्राप्त करें।

**शत्रुजनाः सुखिनः समे मत्सरमपहाय।
सन्तु गन्तु मनसोप्यमी शिवसौख्यगृहाय॥**

क्या इतना महत्व का चिन्तन कोई कर सकता है? यह सोचना भी मुश्किल है कि मेरे मित्र भी सुखी बनें। मैं सुखी बनूं—यह तो आदमी सोचता है किन्तु मेरे शत्रु भी दुःखी न बनें। क्या यह बात समझ में आती है? ईर्ष्या को छोड़कर यह कहे—शत्रु सुखी बनें, उनमें भी सद्बुद्धि आए, सन्मति आए, वे भी आत्मा की पवित्रता की ओर प्रस्थान करें, मोक्ष की ओर जाएं। कषाय मंद होता है तभी ऐसा चिन्तन संभव होता है, उदात्त भावना जागती है।

उदात्तता और महानता का निदर्शन

ऐसे मंद कषाय वाले लोगों के उदाहरण इतिहास में भरे पड़े हैं, जिन्होंने शत्रु का भी कल्याण किया है। सिंधु सौवीर देश का राजा उद्रायण भगवान महावीर का भक्त श्रावक था। उसने उज्जैनी के शक्तिशाली राजा चंडप्रद्योत को युद्ध में बंदी बना लिया। वह बंदी बने राजा को अपने देश ले जा रहा था। रास्ते में संवत्सरी का पर्व आ गया। उद्रायण ने संवत्सरी का उपवास किया,

६२ पथ चुनें पर कौन-सा

प्रतिक्रमण किया, सबसे खमतखामणा किया। उद्रायण बंदी बने चण्डप्रद्योत के पास आया, बोला—‘महाराज चंडप्रद्योत! आपसे भी खमतखामणा है।’

चण्डप्रद्योत बोला—‘कैसा खमतखामणा? बंदी तो बना रखा है। मैं नहीं करूंगा ऐसा खमतखामणा?’

उद्रायण ने तत्काल चिन्तन किया, आगे बढ़ा, स्वयं चण्डप्रद्योत को बंधन-मुक्त किया। सम्मान के साथ कहा—आओ, बैठो आसन पर। उद्रायण चौदह राजाओं का मुखिया था। वह बंदी चण्डप्रद्योत को अपने बराबर बिठाकर बोला—‘चण्डप्रद्योत! अब खमतखामणा है।’

यह उदात्तता और महानता का निदर्शन है। वैर को भुला देना—शायद इससे बड़ी कोई महानता नहीं होती। बहुत कम लोग मिलते हैं जो अतीत को भुला पाते हैं।

एक छोटा लड़का रास्ते पर घूम रहा था। कोई ट्रक आया और कुचल दिया। लड़का मर गया। कोर्ट में मुकदमा चला। पिता भी हाजिर और कुचलने वाला ड्राइवर भी हाजिर। न्यायाधीश ने कहा—कैसे हुआ? पिता ने सोचा—जो हुआ, वह तो हो गया। अब मैं अगर यह कहूंगा कि ड्राइवर की गलती के कारण हुआ तो इसके लड़के और दुःखी बन जाएंगे। जैसे मेरे पुत्र के जाने पर मुझे कष्ट हुआ है, वैसे ही इसके परिवार को कष्ट होगा। मैं किसी परिवार को दुःखी बनाना नहीं चाहता। पिता ने गवाही देते हुए कहा—‘न्यायाधीश महोदय! गलती मेरे लड़के की थी। वह सड़क के बीच से जा रहा था, ड्राइवर की कोई गलती नहीं है।’

सारा मामला रद्द हो गया।

इतनी महानता कौन कर सकता है? वही व्यक्ति कर सकता है, जिसका कषाय मंद होता है। जिसमें कषाय तीव्र है, ऐसी बात कह नहीं सकता।

तीव्र कषाय का तीसरा लक्षण है—वैर को बांध कर रखना, नहीं भुलाना।

कषाय को मंद कैसे करें?

हमने तीव्र कषाय और मंद कषाय के लक्षणों पर विमर्श किया पर प्रश्न यह है—तीव्र कषाय को मंद कैसे करें? तीव्र करने के उपाय तो बहुत हैं। रोज लड़ाई करो, कषाय तीव्र होता चला जाएगा। उसके लिए कहीं धर्मस्थान में जाने की जरूरत नहीं है। घर में ही लड़ाई करो, खूब तेज लड़ो, कषाय बढ़ता

पथ चुनें पर कौन-सा ६३

चला जाएगा। आग को बुझाने के लिए तो दमकलें बाहर से आती हैं पर आग को जलाने के लिए ईंधन घर में मिल जाता है—लकड़ियां हैं, केरोसिन तेल है, पेट्रोल है, गैस है, और भी साधन हैं। आग अपने आप भड़क जाएगी। आग को बुझाना बड़ा कठिन है इसीलिए दमकलों को बुलाना पड़ता है।

आत्मनिरीक्षण

कषाय को मंद कैसे किया जाए? उसके लिए सबसे बड़ा साधन है आत्म निरीक्षण, अपने आपको देखना, अपने बारे में चिन्तन करना, अपने आचरण की मीमांसा करना, विवेचना करना। जो व्यक्ति प्रतिदिन दस मिनट आत्म चिन्तन करता है, सोने से पहले अपनी दिनचर्या का लेखा-जोखा करता है वह कषाय की तीव्रता को मंद कर सकता है। जैसे व्यापारी शाम के समय लेखा-जोखा करता है—कितना माल बिका, कितना आया, कितना लगा? सारा हिसाब मिला लेता है, तलपट बराबर रखता है। वैसे पूरे दिन की चर्या का तलपट बने—आज मैंने क्या किया? कितने प्रसंगों में मैं तेज बोला? कितनी बार अपशब्द मुंह से निकल गये? कितनी बार मैंने कटु बात कही? इसका पूरा लेखा-जोखा करें।

‘इयाणिं णो’ का संकल्प

कषाय को मंद करने का दूसरा उपाय है—संकल्प। लेखा-जोखा करने के बाद संकल्प करें—अब मुझे ऐसा काम नहीं करना है। मैं संकल्प करता हूँ—इयाणिं णो जमहं पुव्वमकासि पमाएणं—इतना सुन्दर सूत्र है महावीर का—मैं अब वह नहीं करूंगा, जो पहले प्रमादवश किया। अब मैं जागरूक रहूंगा। इस संकल्प सूत्र—इयाणिं णो जमहं पुव्वमकासि पमाएणं—को दस बीस बार दोहराएं। धीरे-धीरे आप स्वयं अनुभव करेंगे कि चेतना का रूपान्तरण शुरू हो गया है, कषाय की तीव्रता कम होती जा रही है। जो उत्तेजना आवेश-आवेग हैं, वे मंद होने शुरू हो गए हैं।

प्रयोग मौन का

कषाय के शमन का एक उपाय है मौन। जिस व्यक्ति को उत्तेजना ज्यादा आती है, वह यह प्रयोग करे—उत्तेजना आने पर न बोले, दस मिनट मौन का अभ्यास करे। दस मिनट मौन का यह प्रयोग हमने सैकड़ों-सैकड़ों लोगों को करवाया और वह काफी सफल रहा। दस मिनट मौन करना कठिन तो है। लोग कहते हैं—महाराज! उस समय तो बोले बिना रहा नहीं जाता। मैंने कहा—भाई!

६४ पथ चुनें पर कौन-सा

वही तो कसौटी है। संकल्प पक्का हो जाए कि जब उत्तेजना का अवसर आएगा, दस मिनट नहीं बोलूंगा। जीभ को उलट कर खेचरी मुद्रा का प्रयोग कर लूंगा तो कषाय स्वतः कम होने लग जाएगा। यह बहुत बड़ा उपाय है।

एक व्यक्ति बोले, दूसरा मौन कर ले तो अकेला कब तक बोलेंगा? कब तक लड़ेगा? लड़ने का मूड ही बदल जाएगा। सामने वाला व्यक्ति लड़ाई की मुद्रा में होता है तब तो लड़ने का मजा आता है। आवेश के प्रसंग में दस मिनट न बोलना कषाय को मंद करने का बहुत सुन्दर उपाय है। इससे उत्तेजना धीरे-धीरे शान्त होती चली जाती है।

ललाट पर श्वेत रंग का ध्यान

प्रेक्षाध्यान में आवेश शमन का एक उपाय है—ललाट पर श्वेत रंग का ध्यान। जो व्यक्ति पूरे ललाट पर सफेद रंग का ध्यान करता है, श्वेत चन्द्रमा का ध्यान करता है, उसका कषाय शान्त होता है।

हरियाणा के एक आई. ए. एस. ऑफिसर शिविर में आए। उनके आवेश की समस्या बहुत जटिल थी। पूरा परिवार परेशान था। उन्होंने शिविर में प्रयोग किए। ललाट पर श्वेत रंग का ध्यान—इस प्रयोग को ऐसा पकड़ा कि पांच दिन में स्थिति बदल गई। शिविर की समाप्ति के पश्चात् घर गए। परिवार के लोग उनके स्वभाव से परिचित थे। उन्होंने सोचा—आज क्या बात है? लड़ाई का कोई प्रसंग नहीं बना। पत्नी ने सोचा—पतिदेव लड़ाई न करें, यह तो अनहोनी घटना है। पूरा दिन शांति से बीत गया। सबको आश्चर्य हुआ। पत्नी ने पूछा—आज आप लड़े नहीं, आज क्रोध नहीं किया, यह क्या हो गया? मित्रों ने भी पूछा। लड़कों को भी आश्चर्य हुआ कि पिताजी घर में रहें और रणभेरी न बजे, यह कैसे हो सकता है?

उन्होंने कहा—मैं प्रेक्षाध्यान शिविर में रहकर आया हूँ। मेरा क्रोध शान्त हो गया है।

धर्म का सार

प्रयोग के द्वारा कषाय की तीव्रता को कम किया जा सकता है, शांतिमय संतुलित जीवन जीया जा सकता है। शांत और संतुलित जीवन जीने के लिए उपरोक्त प्रयोग करें, जिससे तीव्र कषाय मंद कषाय में बदल जाए और मन की शांति इतनी चिरकालीन बन जाए कि कोई आदमी तालाब के जल में एक ढेला फेंककर लहर पैदा न कर सके।

आत्मनिरीक्षण, संकल्प, मौन का अभ्यास, ललाट पर श्वेत रंग का ध्यान—ये कषाय-शमन के प्रयोग हैं। इनका अभ्यास कर कषाय की तीव्रता को कम करें, कषाय को मंद करें तो मानसिक शांति, परिवार में शांति, एक-दूसरे के प्रति वैर-विरोध की भावना की समाप्ति, सबके प्रति मैत्री की भावना और आनन्द का वातावरण बनता है।

यह कषाय का उपशम धर्म का सार है। भगवान महावीर से पूछा गया—श्रामण्य का सार क्या है? महावीर ने कहा—उवसमसारं खु सामण्णं— श्रमण जीवन का सार है उपशम, कषाय को उपशान्त करना, मन को शांत करना। क्या आप धर्म के इस सार को समझेंगे? कषाय के उपशम की साधना का पथ चुनेंगे?



उदितोदित कैसे रहें ?



उदितोदित कैसे रहें? (१)

आगमकारों ने पूरी मनुष्य जाति का अध्ययन किया। केवल मनुष्यों का ही नहीं, प्राणी मात्र का, षड्जीवनिकाय का अध्ययन किया। मनुष्यों का विशेष अध्ययन किया, सुदीर्घ काल में होने वाले मनुष्यों को देखा, देखने के बाद एक निष्कर्ष सामने रखा। जैसे वैज्ञानिक सर्वेक्षण या परीक्षण के बाद एक निष्कर्ष प्रस्तुत करता है वैसे ही एक निष्कर्ष प्रस्तुत किया और वह निष्कर्ष एक चतुर्भुजा के रूप में प्रस्तुत किया—

१. उदित-उदित
२. उदित अस्तमित
३. अस्तमित-उदित
४. अस्तमित-अस्तमित।

उदितोदित

कुछ मनुष्य उदितोदित होते हैं, आरम्भ से लेकर अंत तक उदित रहते हैं। वे कभी अस्त नहीं होते। जीवन भर उनका सितारा चमकता रहता है। जब मृत्यु के पास जाते हैं तो उदित अवस्था में ही जाते हैं। पूरा जीवन उदित रहता है। उन्हें अस्त के क्षण का कोई अनुभव नहीं होता। सदा प्रकाशमान, दीप्तिमान, उज्वल, प्रज्वल और चमकते हुए रहते हैं। कभी मुरझाते नहीं हैं, कभी कुम्हलाते नहीं हैं। एक सदाबहार फूल की भांति उनका जीवन सदा विकस्वर रहता है।

उदित-अस्तमित

कुछ मनुष्य उदित-अस्तमित होते हैं। वे जन्म लेते हैं तब उदयकाल होता है, बड़े अच्छे लगते हैं, किन्तु जैसे-जैसे जीवन बीता, वे अस्ताचल की ओर बढ़ते चले गए, सूरज ढलता चला गया। प्रारंभ में उदय और अंत में अस्त। जब जन्मे तब सितारा चमक रहा था। जब जीवन का क्रम आगे बढ़ा, सितारा अस्त हो गया।

६८ पथ चुनें पर कौन-सा

अस्तमित उदित

कुछ मनुष्य अस्तमित-उदित होते हैं। जब जन्मते हैं, अस्त जैसी स्थिति में होते हैं। बहुत साधारण अवस्था। पता ही नहीं चलता कि कोई पैदा हुआ है। किन्तु बाद में एकदम उदित हो जाते हैं, दुनिया के सामने आते हैं और सितारे की तरह चमकने लग जाते हैं।

अस्तमित-अस्तमित

कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं, जो जन्म के समय भी अस्तमित और अंतिम अवस्था में भी अस्तमित बने रहते हैं। वे ऐसे लोग हैं, जिन्होंने कभी उदय-काल देखा ही नहीं।

चार प्रकार के व्यक्ति : चार उदाहरण

ये चार प्रकार के लोग हैं। इनके उदाहरण दिए जा सकते हैं। आगम सूत्रकार ने स्वयं उदाहरण दिये हैं। उदितोदित के लिए उदाहरण दिया है भरत चक्रवर्ती का। वे भगवान ऋषभ के पुत्र थे। जन्म से उदित और अंतिम समय तक उदित रहे। कभी सितारा अस्त हुआ ही नहीं।

उदित-अस्तमित के लिए उदाहरण दिया है चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त का। जन्म के समय उदित था, यौवन में उदित था किन्तु जैसे जैसे अंतिम समय निकट आया, अस्त होता गया। जीवन भर राजसी सुख भोगने वाले की अंतिम अवस्था दयनीय रही। एक चरवाहे ने चक्रवर्ती की आंख फोड़ डाली। अंतिम समय अच्छा नहीं रहा, अस्त हो गया।

कुछ व्यक्ति अस्तमित अवस्था में पैदा होते हैं और कालान्तर में उदित हो जाते हैं। इसका उदाहरण हैं मुनि हरिकेशबल। चाण्डाल वंश में बुरी दशा में पैदा हुआ। बचपन बहुत बुरा बीता। इतना बुरा कि जगह-जगह से निकाल दिया गया। अवहेलना, अवमानना, अवज्ञा, तिरस्कार, अपमान—सब कुछ जहर की घूंट की तरह पीना पड़ा। जब हरिकेशबल मुनि बने, ऐसी शक्तियां जाग्रत् हुई कि देवता निरन्तर सेवा में रहने लग गए। अपनी तपस्या और दिव्य शक्ति से इतने प्रभावी बन गये कि ब्राह्मण पंडितों को उनके चरणों में नत होना पड़ा। एक दिन ब्राह्मणों ने कहा—‘यहां तुम्हें भिक्षा नहीं मिल सकती। यह ब्राह्मणों के लिए है। यहां चाण्डाल आ नहीं सकता।’ मुनि हरिकेशबल और ब्राह्मणों के मध्य लंबी चर्चा हुई। चर्चा के बाद ऐसी स्थिति बनी कि मुनि की अवज्ञा करने वाले मुनि के चरणों में प्रणत हो गए।

पथ चुनें पर कौन-सा ६६

हरिकेशबल अस्त अवस्था में जन्मे, बाद में उदय होता गया और ऐसा उदय हुआ कि एक महान् ऋषि और सर्व-वन्दनीय बन गए।

कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो प्रारम्भ में भी अस्तमित होते हैं और जीवन के अंत तक अस्तमित बने रहते हैं। इस संदर्भ में उदाहरण दिया गया कालसौकरिक का। वह अस्त अवस्था में ही जन्मा और अस्त अवस्था में ही मरा। प्रतिदिन पांच सौ भैंसों को मारना कालसौकरिक कसाई का नियम था। श्रेणिक ने उसे कुएं में डाल दिया। इसलिए कि वह भैंसा न मार सके। कुएं में डालने के बाद श्रेणिक ने गुप्तचरों से कहा—जाओ, पता करो कि वह किस अवस्था में है? भैंसा तो नहीं मार रहा है? गुप्तचर जांच कर वापिस आए, बोले—‘महाराज! वह तो भैंसा मार रहा है।’

‘अरे! अंधकूप में भैंसा कहां से आएगा?’

‘महाराज! वहां जो कीचड़ है, मिट्टी है या शरीर का मेल है, उसे हाथ में लेता है, भैंसे का आकार बनाता है, उसे मारते हुए बोलता है—एक मारा। फिर मिट्टी का दूसरा बनाया, उसे मारा और बोलता है—दो मारे। वह रोज इस प्रकार ५०० भैंसे मारने की प्रक्रिया कर रहा है।’

वह अस्त अवस्था में जन्मा और अस्त अवस्था में ही मरा।

खोज करें कारण की

चार प्रकार के लोग, चार प्रकार की श्रेणियां या वर्ग बन गए।

प्रश्न है ऐसा क्यों होता है? इसका कारण क्या है? हम कारण को खोजें। जो प्रारम्भ में उदित है, वह जीवन-भर उदित रहेगा—इसका कारण क्या है? पहले पुण्य का उदय था, उदित अवस्था में जन्मा किन्तु बाद में वह व्यक्ति ऐसा आचरण और व्यवहार करता है, ऐसा चिन्तन करता है कि पवित्र लेश्या को बढ़ाता चला जाता है, जिससे अस्त होने का कोई अवसर नहीं आता। वह पुण्य को क्षीण नहीं करता। जो आदमी शराबी, अपराधी और दुराचारी बनता है, वह पुण्य को क्षीण करता चला जाता है, वह अस्त हुए बिना नहीं रहता। जो व्यक्ति सदाचार, अहिंसा और करुणा की भावना, अनासक्ति और सबके प्रति प्रमोद की भावना, सबके साथ मैत्री का व्यवहार करता है, वह उदित ही रहता है, कभी अस्त नहीं होता। वह ऐसे पुण्यों का संचय और बढ़ा लेता है, जिससे अशुभ कर्म या पाप का उदय आते-आते रुक जाता है या वह निर्वीर्य हो जाता है और प्रबल पुण्य का उदय होता रहता है।

१०० पथ चुनें पर कौन-सा

भरत उदित रहा। इसका कारण है—भरत चक्रवर्ती में जैसी अनासक्ति थी, वैसी अनासक्ति दुर्लभ है। इतना बड़ा साम्राज्य, इतनी बड़ी सेना, सब कुछ था किन्तु स्वयं एकदम निर्लिप्त रहे।

जहा पोंमं जले जायं नोवलिप्पई वारिणा—जैसे कमल कीचड़ में पैदा होता है किन्तु कीचड़ से कभी लिप्त नहीं होता, सदा ऊपर बना रहता है। भरत सदा वैसे रहे, कोई अन्तर नहीं आया।

निदर्शन भरत का

बहुत प्रसिद्ध प्रसंग है। भगवान ऋषभ से पूछा गया—भगवन्! आपकी सभा में कौन व्यक्ति है जो मोक्ष में जाएगा? भगवान ऋषभ ने उत्तर दे दिया—भरत चक्रवर्ती। यह सुनते ही सभा में खलबली मच गई। कितना बड़ा राज्य, कितना आरम्भ-समारम्भ फिर भी मोक्ष में जाएगा? दूसरों की क्या बात करें, पक्षपात तो भगवान के घर में भी बहुत है। कुछ लोगों ने बात को मन में रख लिया किन्तु एक तेजतर्र चण्ड प्रकृति का व्यक्ति वहीं बोलने लग गया—भगवन्! आप भी पक्षपात करते हैं। भरत मोक्ष में जाएगा तो नरक में कौन जाएगा?

भरत ने सुना, अधिकारियों से कहा—जैसे ही यह आदमी बाहर जाए, गिरफ्तार कर लेना।

सभा सम्पन्न हुई। सब अपने घर की ओर लौटने लगे। जैसे ही वह आदमी बाहर आया, पुलिस ने उसको गिरफ्तार कर लिया। दूसरा दिन। चक्रवर्ती की राज्यसभा में उसे प्रस्तुत किया गया। चक्रवर्ती ने कहा—‘तुम बोलना ज्यादा जानते हो?’

वह कांपने लग गया, सोचा—फंस गया। आदमी पहले बिना सोचे-विचारे बोल देता है। जब परिणाम आता है तब घबरा भी जाता है। जब तूफान आता है तब सारे वृक्ष के पत्ते ऐसे कांपते हैं मानो झूला झूल रहे हैं। कई बार तो ऐसा लगता है, जैसे कोई बच्चा शाखा और तने पर झूल रहा है। वह व्यक्ति झूलने लग गया, कांपने लग गया, बोला—‘राजन्! मैंने अपराध किया है। आप क्षमा करें।’

भरत—‘नहीं, क्षमा नहीं होगी। इसका तुम्हें दण्ड मिलेगा और दण्ड होगा मृत्यु-दण्ड।’

पथ चुनें पर कौन-सा १०१

वह बहुत गिड़गिड़ाया, प्रार्थना की—‘महाराज! कोई उपाय है छूटने का?’

भरत—‘अगर तुम एक काम करो—एक तेल का लबालब भरा कटोरा हाथ में लो, पूरे अयोध्या नगर के बाजारों, चौराहों में घूमो और तेल की एक भी बूंद नीचे न गिरे तो तुम बच सकते हो। यदि तेल की बूंद नीचे गिर गई तो पुलिस का सिपाही तत्काल सिर धड़ से अलग कर देगा। बोलो, स्वीकार है यह शर्त?’

इस शर्त को सुनकर स्तब्ध रह गया पर जीवन बचाने का दूसरा कोई उपाय भी नहीं था।

व्यवस्था कर दी, हाथ में भरा हुआ तेल का कटोरा दे दिया। वह चला, साथ में पुलिस चल रही है। राजा ने नगर में ऐसी व्यवस्था कर दी कि स्थान-स्थान पर गाना, बजाना, खेल, नाटक शुरू हो गए। वह पूरे नगर की परिक्रमा कर भरत चक्रवर्ती के सामने आया। चक्रवर्ती ने पूछा—‘कोई तेल की बूंद गिरी?’

‘महाराज! यदि गिरती तो मैं आप तक पहुंचता ही नहीं। ये आरक्षक वहीं काम तमाम कर देते। महाराज! अब क्षमा करें।’

भरत—‘प्राण-दण्ड माफ है पर यह तो बताओ कि नगर में तुमने क्या देखा? क्या सुना?’

‘महाराज! केवल तेल का कटोरा देखा और मृत्युदण्ड की आवाज सुनी। और न कुछ सुना, न कुछ देखा। देखा तेल के कटोरे को और सुनी मौत के नगाड़े की आवाज।’

भरत—‘अरे! कैसे आदमी हो तुम? अमुक चौक में कितना बढ़िया नाटक हो रहा था, सैकड़ों आदमी उसे देख रहे थे। ऐसा बढ़िया नाटक भी तुमने नहीं देखा?’

‘महाराज! मैं केवल मौत को देख रहा था, और कुछ नहीं देख रहा था। तेल का कटोरा या मौत—दो के सिवाय सामने कुछ नहीं था।’

भरत ने कहा—‘भाई! मेरे सामने भी निरन्तर मौत रहती है। तुम्हें सोचना चाहिए था कि भगवान ऋषभ ने किस आधार पर कहा? मैं छह खण्ड पर राज्य करता हूं, चक्रवर्ती का शासन है। ऐश्वर्य, ठाट-बाट, धन-दौलत सब कुछ है किन्तु मैं न तो सुनता हूं, न देखता हूं। तुम एक जन्म की मौत से डर

१०२ पथ चुनें पर कौन-सा

रहे थे और मैं अनंत अनंत जन्म और मौतों से डर रहा हूँ। यदि मैं सत्ता, सम्पदा और भोगों में लिप्त हो गया, आसक्त हो गया तो न जाने कितनी बार जन्म लेना पड़ेगा और कितनी बार मरना पड़ेगा। इसीलिए मैं इन सबसे ऊपर रह रहा हूँ। सब कुछ हो रहा है पर मैं उनसे न्यारा हूँ।’

उस व्यक्ति को ऋषभ के कथन का मर्म समझ में आ गया।

दहेज की समस्या और आसक्ति

कुछ लोग चिन्तन कम करते हैं। हर बात को स्थूल रूप में पकड़ लेते हैं। यह भी तथ्य है कि सबको उतनी गहरी दृष्टि प्राप्त नहीं होती। जो स्थूल बुद्धि वाले लोग होते हैं, वे स्थूल बात को पकड़ लेते हैं। सूक्ष्म बात को पकड़ने के लिए सूक्ष्म दृष्टि चाहिए। जो व्यक्ति पदार्थों में जीता है, वह उससे परे सोच भी नहीं पाता। आज व्यक्ति के सामने कितनी समस्याएं हैं। भोजन की समस्या, पानी की समस्या, मकान की समस्या, कपड़ों की समस्या और फिर बाद में सामाजिक जीवन में विवाह शादी की समस्या, गहनों की समस्या। आज इन सबसे भी बड़ी समस्या है दहेज की। आदमी को कितनी चिन्ता रहती है। अनेक लोग हमारे पास आते हैं, कहते हैं—‘महाराज! लड़कियां युवा हैं, कोई काम धंधा नहीं है। लड़कियों की शादी कैसे करें? दहेज के बिना होती नहीं है।’ कुछ लड़कियों ने कहा—‘पिताजी! आप चिन्ता न करें। हम कुंआरी रह जाएंगी।’ वे पिता की चिन्ता करती हैं। यह बड़ी समस्या है।

बावलास (मेवाड़) के एक श्रद्धालु श्रावक हुए हैं जोधराजजी। बहुत साधारण स्थिति में थे। उनकी पुत्रियां सुशील, सुन्दर और सुयोग्य थी। उन्होंने समाज के लोगों से कहा—‘भाई! देखो इनकी शादी करनी है। पर मेरे पास देने के लिए कोई दहेज नहीं है, न बरात को भोजन कराने का सामर्थ्य है। किसी को सुशील लड़की चाहिए तो दो-चार बराती के साथ आ जाओ। मीठा चावल खिला दूंगा, एक थाली और एक लौटा दे दूंगा। बस इसके सिवाय मेरे पास कुछ भी नहीं है।’ किन्तु उस व्यक्ति का ऐसा कोई पुण्य-प्रभाव रहा कि सातों लड़कियां अच्छे घरों में गईं। इस प्रकार की घटनाएं विरल मिलती हैं किन्तु ऐसी घटनाएं निरन्तर पढ़ते और सुनते हैं कि दहेज के कारण कितने अनर्थ होते हैं। दहेज के कारण न जाने कितनी लड़कियां कुंआरी रहती हैं, कितनी लड़कियां शादी के बाद जला दी जाती हैं। कितना तिरस्कार और अपमान किया जाता है। पति, सास, ससुर, ननद, देवरानी, जेठानी न जाने कितने ताने कसती हैं,

पथ चुनें पर कौन-सा १०३

जलील करती रहती हैं। इस स्थिति में वह तनाव का जीवन जीती है या स्वयं आत्महत्या करती है या दूसरे जला देते हैं। यह भयंकर समस्या है। इस समस्या से समाज तभी छुटकारा पा सकता है जब धन का लोभ कम हो, आसक्ति कम हो, मूर्च्छा कम हो। मूर्च्छा और आसक्ति तब कम होती है जब यह चिन्तन पुष्ट होता रहता है—मुझे सदा उदित रहना है, कभी अस्त नहीं होना है।

शुद्धा हि बुद्धिः किल कामधेनु

आचार्य भिक्षु जन्मे तब उदित अवस्था में थे। गृहस्थ जीवन में भी बहुत होशियार और चतुर व्यक्ति के रूप में माने जाते थे। बुद्धि प्रबल थी, योग्यता थी, मान्यता थी। बुद्धि का कौशल बचपन से ही अद्भुत था। बाद में बुद्धि से आगे चले गए, अतीन्द्रिय चेतना अथवा प्रज्ञा की भूमिका में चले गए।

आचार्य भिक्षु गृहस्थ जीवन में भी बड़े उदित थे।

गृहस्थ अवस्था की घटना है। ठाकुर और भीखणजी जा रहे थे। ठाकुर साहब को नशा था चिलम का। पास में तम्बाकू रही नहीं। ठाकुर बोले—‘भीखणजी! अब मैं तो नहीं चल सकता। पैर काम नहीं दे रहे हैं, कहीं से कोई चिलमिया लाओ, चिलम पी लूं तो चल सकता हूं।’ चिलम पीने वाले चिलम पीकर खंखारा करते हैं, नशा सा चढ़ जाता है, तब चल सकते हैं। भीखणजी ने कहा—‘जंगल में कहां से लाऊं? कोई आदमी भी नहीं दिखाई दे रहा है।’

ठाकुर ने कहा—‘चिलम पीए बिना अब एक कदम भी चलना मुश्किल है।’ भीखणजी ने सोचा—मुसीबत है। यदि नहीं चलेंगे तो मुझे भी बैठा रहना पड़ेगा। भीखणजी ने कहा—ठाकुर साहब! मैं इधर-उधर खोज कर कोई व्यवस्था करता हूं। भीखणजी कुछ आगे गए। कहीं गोबर का छाणा जलाया हुआ पड़ा था। उसे उठाया, चूरा कर बुकनी बना दी और एक पुड़िया में बांधा। ठाकुर के पास आए, बोले—‘लो ठाकुर साहब! आपके भाग से कुछ मिल गया।’ ठाकुर साहब ने लिया, सूंघा, चिलम भरी, पीया और बोले—‘भीखण जी! चलो अब बिल्कुल तैयार हूं।’

उनमें बुद्धि का ऐसा कौशल था कि हर बात का समाधान खोज लेते। जब प्रज्ञा की भूमिका में चले गए तो और अधिक उदित हो गए।

एक बार जोधपुर राजा के दीवान ने कहा—‘भीखणजी! आपकी बुद्धि तो ऐसी है कि नौ कोटि मारवाड़ राज्य का संचालन कर सकती है।’ तब आचार्य भिक्षु ने कहा—

१०४ पथ चुनें पर कौन-सा

**बुद्धि वाहि सराहिए, जो सेवै जिन धर्म।
वा बुद्धि किण काम री, जो पड़िया बांधे कर्म॥**

मुझे वह बुद्धि नहीं चाहिए, जिससे कर्म का बंध हो। वही बुद्धि प्रशंसनीय होती है, जिससे कर्म के बन्धन टूटे।

शुद्धा हि बुद्धि: किल कामधेनु—शुद्ध बुद्धि कामधेनु की तरह होती है, जो चाहो सो मांग लो। जब प्रज्ञा के लोक में चला जाए तब तो उसकी स्थिति ही विलक्षण हो जाती है, व्यक्ति उदितोदित बना रहता है।

विकास का कारण

मैंने पूज्य गुरुदेव तुलसी के जीवन को गहराई से देखा है, गहराई से पढ़ा है। जो विकास चार-पांच दशक पहले नहीं था, वह विकास हुआ है। कारण क्या है? लोग कहते हैं—अवस्था ढलती है तो विकास भी कम होता जाता है। यहां अवस्था के साथ-साथ विकास और बढ़ रहा है। इसका कारण है—निरन्तर अप्रमाद, निरन्तर जागरूकता, निरन्तर पवित्रता का विकास। यह जहां होता है, वहां उदय निरन्तर बढ़ता चला जाता है। जहां प्रमाद है, वहां बुढ़ापा आ जाता है। किसी को साठ वर्ष आए, कहने लग गया—हम तो बूढ़े हो गए। मैंने कहा—अरे! अभी तो साठ के हुए हो, बूढ़े कहां हो गये? आगम साहित्य कहता है कि सत्तर वर्ष पहले तो कोई बूढ़ा बनता ही नहीं है। बुढ़ापे का पहला दिन कौनसा है। सत्तर पूरे हो गये, ७९वें वर्ष का पहला दिन बुढ़ापे का प्रारम्भ दिन है।

धर्म का मर्म

एक धारणा यह रही—साठी बुद्धि नाठी। साठ हो गए, बुद्धि नष्ट हो गई। पता नहीं यह कैसे लिखा। वस्तुतः अवस्था के साथ अनुभव का विकास होता है। आधुनिक वैज्ञानिक जगत् की नई मान्यता भी यह है—जो व्यक्ति साठ वर्ष के बाद मस्तिष्क से जितना काम लेता है, उतना ही विकास होता है, उतनी आयु भी दीर्घ हो जाती है। जो मस्तिष्क से काम नहीं लेता, उसका विकास नहीं होता, वह जल्दी मरता है, अल्प-आयु हो जाता है। तेरापंथ का जो विकास हुआ है, इसका कारण है—अप्रमत्तता, जागरूकता, पवित्रता, निरन्तर ज्ञान की आराधना, दर्शन की आराधना, चरित्र की आराधना, सम्यक् दृष्टिकोण, विधायक दृष्टिकोण, सदा अच्छाई को देखा, कभी बुरी बातों में ध्यान केन्द्रित नहीं किया। जो बुरी बात पर ज्यादा ध्यान देता है, वह कभी

पथ चुनें पर कौन-सा १०५

उदित नहीं रह सकता। बुराई को मत देखो। बुराई को जानो, प्रतिकार करो पर बुरा चिन्तन मत करो। ईर्ष्या करो, अगले का बिगड़ेगा या नहीं पर तुम्हारा तो निश्चित बिगड़ जाएगा। क्रोध करो, सामने वाले का कुछ अहित होगा या नहीं, तुम्हारा अहित निश्चित हो जाएगा। यह धर्म का एक बड़ा मर्म है।

धर्म किसलिए

मैंने कल कुछ विद्यार्थियों से पूछा—‘भूख लगती है तो भूख किससे मिटती है? रोटी से बुझती है या धर्म से?’

विद्यार्थी—‘रोटी से।’

‘प्यास लगती है तो किससे मिटती है? पानी से या धर्म से?’

विद्यार्थी—‘पानी से।’

‘कपड़ा चाहिए। पैसे से मिलता है या धर्म से?’

विद्यार्थी—‘पैसे से।’

‘मकान चाहिए तो किससे मिलता है?’

विद्यार्थी—‘पैसे से।’

‘तो फिर धर्म क्यों करते हो? धर्म का मतलब क्या है? रोटी, पानी, कपड़ा, मकान—ये सब पैसे से मिलते हैं फिर धर्म बीच में कहां से आया? क्यों धर्म करते हो?’

विद्यार्थी—‘आत्म-शुद्धि के लिए।’

‘ठीक बात है। आत्मा कहां है? कौन कहेगा कि आत्मा है। यदि तुम अपनी स्कूल के विद्यार्थियों से कहोगे कि आत्म-शुद्धि के लिए धर्म करना चाहिए तो क्या वे समझ पाएंगे?’

विद्यार्थी—‘नहीं, गुरुदेव! फिर उन्हें कैसे समझाया जाए?’

रोटी, पानी—ये सारे शरीर बल से जुड़े हुए हैं। धर्म करना है मनोबल बढ़ाने के लिए। मनोबल कब बढ़ेगा? भावशुद्धि होगी, विधायक चिन्तन, विधायक भाव पुष्ट होता रहेगा तो मनोबल बढ़ेगा। जहां निषेधात्मक भाव या चिन्तन आया, वहां मनोबल टूट जाएगा। धर्म के क्षेत्र में इसलिए आते हैं कि हमारा मनोबल बढ़ता रहे। मनोबल तब बढ़ेगा, जब सोचने का तरीका सही हो, दृष्टिकोण विधायक हो, न कलह, न ईर्ष्या, न द्वेष। अठारह पाप से बचने

१०६ पथ चुनें पर कौन-सा

का जितना प्रयत्न, उतना मनोबल बढ़ेगा। अठारह पापों में जितनी लिप्तता, उतना मनोबल घटेगा।

सतत उदय का मंत्र है सामायिक

इसको इस भाषा में भी कहा जा सकता है—जो सामायिक करता है, उसका मनोबल बढ़ेगा। सामायिक का मतलब ही है—अठारह पाप का त्याग। सामायिक स्वीकार करते समय व्यक्ति सावद्य योग का प्रत्याख्यान करता है। सावद्य योग का मतलब है अठारह पाप। सामायिक करने वाले व्यक्ति को अठारह पाप के नाम याद रहने चाहिए। यदि अठारह पाप के नाम याद नहीं हैं तो फिर सामायिक का अर्थ कहां समझा? जो अठारह पाप का त्याग करता है वह उदितोदित रहता है, उसका उदय बढ़ता चला जाता है, वह कभी अस्त नहीं होता। यदि आप यह चाहते हैं—मेरा निरन्तर उदय रहे, कभी अस्तकाल न आए, जीवन में सुख-सम्पदा और शांति रहे तो आपको अवश्य सामायिक करना चाहिए। वही सही अर्थ में सामायिक करता है, जो अठारह पाप को जानता है और उनका प्रत्याख्यान करता है। जिसको अठारह पाप के नाम याद नहीं है, वह सामायिक कैसे करेगा? सामायिक में किसका प्रत्याख्यान करेगा?

सामायिक करें और अठारह पाप का ठीक ज्ञान न हो तो सामायिक का पूरा लाभ नहीं मिलता। जिसको उदित रहना है उसके लिए सामायिक करना और सामायिक के अर्थ को समझना जरूरी है। जो व्यक्ति पवित्रता के साथ, एकाग्रता के साथ सामायिक करता है, दृढ़ विश्वास है—वह कभी अस्त नहीं होगा, सतत उदितोदित रहेगा।

उदितोदित कैसे रहें? (२)

प्रमाद से अप्रमाद की ओर गति—यह विकास का रास्ता है। निरन्तर अप्रमत्त अवस्था में रहना, जागरूक रहना उदितोदित होने का मार्ग है। उदय, विकास हुआ और निरन्तर बढ़ता चला गया। एक अंकुर बना और वह महान् विशाल वृक्ष के रूप में बदल गया। विकास ही विकास।

दूसरी अवस्था है उदिते-अत्थमिते। उदय हुआ किन्तु निर्वाह नहीं हो सका, अन्त तक उदय नहीं रहा। इसका कारण भी वही है। जिस व्यक्ति का विचार विधायक नहीं रहा, चिन्तन विधायक नहीं रहा, आचरण सम्यक् नहीं रहा और व्यवहार मृदु नहीं रहा, वह व्यक्ति ऊंचाई में आया और फिर ढलान में आ गया। जैसे ऊंचे टीले से पानी नीचे गिरता है, वैसे ही गिरता चला जाता है। इस अवस्था का कारण व्यक्ति का अपना प्रमाद है। जो व्यक्ति सचाई को नहीं समझता, नहीं जीता, वह अत्थमिते-अस्त की ओर जाता है। इसका उदाहरण दिया गया ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती का। बहुत विशाल होता है चक्रवर्ती का राज्य, सब कुछ प्राप्त होता है। आदि का कुछ समय ब्रह्मदत्त का ऐसा बीता कि वे घोर विपत्ति में फंस गए। मां ने लाक्षागृह बनाया, उसमें ब्रह्मदत्त को जलाने का प्रयत्न किया। किन्तु वह जला नहीं, बच गया। जंगलों में घूमता रहा। फिर उदय हुआ और उसी नगर का राजा बना। राजा बनने के बाद चक्रवर्ती बना, एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया। ऐसा लगता रहा कि उदय हो रहा है किन्तु आसक्ति में इतना चला गया कि पतन शुरू हो गया। भरत का विकास इसीलिए बढ़ता चला गया कि उसने अनासक्ति का जीवन जीया।

मार्ग उदय और अस्त का

हम लम्बी चर्चा में न भी जाएं, केवल दो शब्दों को पकड़ लें—एक आसक्ति का जीवन और एक अनासक्ति का जीवन। आसक्ति का जीवन मूर्च्छा का जीवन है। जो उत्तरोत्तर मूर्च्छा में चला जाता है, वह चेतना को खो देता है। जैसे बीमार व्यक्ति का ऑपरेशन करना होता है तो एनिस्थीसिया

१०८ पथ चुनें पर कौन-सा

का प्रयोग करते हैं, व्यक्ति मूर्च्छा में चला जाता है वैसे ही अपने प्रमाद के कारण जो व्यक्ति मूर्च्छा में चला जाता है, वह उदय का रास्ता बंद कर देता है, अस्त की ओर प्रस्थान कर देता है। जो व्यक्ति आसक्ति में नहीं जाता, मोह के चक्र में नहीं फंसता, निरन्तर जागरूक रहता है, वह उदय के मार्ग पर बढ़ता रहता है। उसमें यह विवेक होता है—मुझे क्या करना है? मेरा कर्तव्य क्या है? मुझे कैसे जीना है? मुझे कैसे बोलना है? कैसे चलना है? कैसे व्यवहार करना है? वह हर क्रिया को जागरूकता के साथ करता है, संयम के साथ करता है। उसकी कोई भी क्रिया उच्छृंखल नहीं होती। हर क्रिया पर एक नियन्त्रण रहता है। वाणी पर ऐसा संयम कि मुंह से कोई भी अपशब्द नहीं निकलेगा, कटु बात नहीं निकलेगी, सोचेगा तो अच्छी बात सोचेगा, बुरी बात नहीं सोचेगा। हमेशा अच्छा काम करेगा, बुरा काम नहीं करेगा। यह है जागरूकता और अनासक्ति। एक आदमी वह होता है, जो आसक्त हो जाता है, मूर्च्छा में चला जाता है। कुछ भी प्रिय देखा, उसी में लुब्ध हो गया। किसी का अच्छा मकान दिखाई दिया, सोचता है—मेरा भी ऐसा मकान होता तो कितना अच्छा रहता। अच्छा कपड़ा देखा और सोचा—मुझे भी ऐसा कपड़ा चाहिए।

झलकती है आसक्ति

आजकल यह जो फैशन चल रही है, वह एक प्रकार की आसक्ति है। कोई आकर्षक विज्ञापन आया, किसी के पास कोई नई चीज देख ली, आकर्षण हो गया। एक वर्ष बाद वह सबमें व्यापक मिल जाएगी। सब सोचते हैं—ऐसा ही होना चाहिए। यह विवेक नहीं होता कि क्यों होना चाहिए? यदि वेशभूषा का विश्लेषण करें, मीमांसा करें तो ऐसा लगेगा—अनावश्यक भार बहुत बढ़ रहा है। इस मंच पर पचासों साधु-साध्वियां बैठी हैं, पचास वर्ष पहले भी उनकी यही वेशभूषा थी, आज भी यही वेशभूषा है। मेरे सामने हजारों युवक-युवतियां बैठी हुई हैं। उनकी वेशभूषा कितनी बदल गई है। नई डिजाइन, नया कुछ आता है तो पुराना बेकार हो जाता है। एक भाई ने कहा—‘महाराज! क्या करें? पहले वर्ष में जितना लाते हैं, अगले साल में कुछ नया आते ही वह सारा बेकार हो जाता है।’ यह क्या है? यह आसक्ति है। इसको कहते तो हैं फैशन पर है यह भीतर में छिपी हुई आसक्ति। हर चीज के प्रति आसक्ति आ जाती है। चीज अच्छी या बुरी का सवाल नहीं है, सवाल फैशन का है।

हम लोग दिल्ली में थे। सम्भ्रान्त परिवार की एक लड़की आई जाटनी की वेशभूषा में। आज से ५०-१०० वर्ष पहले राजस्थान में थली-संभाग की जाट-महिलाएं जो वेशभूषा पहनती थी, वह पहनावा था। हमने पूछा—‘क्या यह राजस्थान के जाट परिवार से है?’

आजकल चौधरी परिवार की महिलाएं भी वैसी वेशभूषा नहीं पहनती, पर अब वह नई फैशन के रूप में आ गई, युवतियां पहनने लग गईं।

आसक्ति का एक चक्र चलता है। जहां आसक्ति का चक्र तोड़ दिया, वहां फैशन के प्रति आकर्षण नहीं होता। वस्तुतः कपड़ा पहनना एक उपयोगिता है। कपड़ा साफ रहे, स्वच्छ रहे और पहनावा उचित रहे—इतना तो उपयुक्त है। पर नित नूतन वेश का परिवर्तन—यह तो आसक्ति का ही काम है। केवल वस्त्र का प्रश्न नहीं है, हर बात में आसक्ति झलकती है।

परिणाम आसक्ति और अनासक्ति का

यह निश्चित मानें—जिस व्यक्ति में, जिस समाज में आसक्ति ज्यादा होगी, मूर्च्छा ज्यादा होगी, बंधन ज्यादा होगा, वह उत्तरोत्तर उदय नहीं कर सकता। वह विकास से हास की ओर, उदय से अस्त की ओर चला जाएगा।

दूसरा सूत्र है अनासक्ति का। भरत का विकास हुआ, इसका कारण था भरत की अनासक्ति। पास में सब कुछ था फिर भी किसी वस्तु के प्रति आसक्ति नहीं थी। भरत इतना अनासक्त था कि पदार्थ का पूरा भोग भी नहीं करता था। इतना अनासक्त जीवन जीया इसीलिए अन्त तक उदय होता रहा।

भरत और ब्रह्मदत्त—दोनों चक्रवर्ती, दोनों का समान राज्य, दोनों की समान सम्पदा, किन्तु दोनों में अंतर था आसक्ति और अनासक्ति का। जहां अनासक्ति थी, उदय का पथ प्रशस्त होता रहा और जहां आसक्ति थी, वहां पतन होता चला गया।

मुनि चित्त ने ब्रह्मदत्त से कहा—भाई! तुम थोड़ा आर्य कर्म करो। इस भोग-विलास से विरत बनो। मुनि चित्त ने बहुत समझाया—देखो भाई! हम क्या थे? हमारा सम्बन्ध आज का नहीं है, छह जन्मों से हम भाई होते आ रहे हैं।

११० पथ चुनें पर कौन-सा

आस्व दासौ मृगौ हंसौ, मातंगावमरौ तथा।
एषा नौ षष्टिका जातिः, अन्योन्याभ्यां वियुक्तयोः॥

एक समय हम दोनों दास पुत्र थे। दास प्रथा थी। हम गुलाम के पुत्र थे। वहां से मरकर हम मृगौ-हरिण बने। जंगल में दोनों साथ घूमते रहे, भटकते रहे। तीसरे जन्म में हम हंस बने।

चिह्न अंकित होता है सूक्ष्म शरीर में

आप सोचते होंगे-हम आदमी हो गए, अब सदा आदमी ही रहेंगे। ऐसी मिथ्या मान्यता न करें। अगर आदमी बनने के योग्य काम किए तो हो सकता है अगले जन्म में फिर मनुष्य बन जाएं। यदि गलत काम किया तो पता नहीं क्या बनेंगे? हरिण, कुत्ता, हंस, कौआ, बकरा-कुछ भी बन सकते हैं।

एक बकरा रोज बाजार में आता और एक दुकान पर ही बैठता। दुकान का मालिक तंग हो गया। एक दिन उसने हाथ में लाठी लेकर बकरे को पीटना शुरू किया-‘मूर्ख कहीं का। बार-बार इसी दुकान पर आता है, मुझे तंग करता है।’ उसी समय एक ज्ञानी साधु उधर से निकला। साधु ने कहा-‘अरे भाई! अपने पिता को क्यों मार रहा है?’

वह बोला-‘साधु महाराज! आपके आंख है या नहीं? जरा देखो ध्यान से। मैं बकरे को मार रहा हूं। आप कैसी बचकानापन की बात कर रहे हैं?’

साधु-‘मेरे तो यह आंख ही नहीं, भीतर की आंख भी जाग्रत है, पर तेरी आंख कहां है? जरा आंख को खोल और देख-यह बकरा कौन है?’

‘महाराज! आप बताएं कौन है?’

‘भाई! यह तेरा पिता है। यदि तुम्हें विश्वास नहीं है तो तुम इधर आओ, देखो।’

दुकान का मालिक बकरे के पास गया। साधु वहीं खड़ा था। बकरे के शरीर में एक चिह्न था। साधु ने चिह्न की ओर अंगुली करते हुए पूछा-‘तेरे पिता के इसी स्थान पर यह चिह्न था या नहीं?’

भाई की आंख खुली रह गई। ध्यान से देखा तो उसी स्थान पर वही चिह्न।

पथ चुनें पर कौन-सा १११

ऐसा होता है। एक भाई ने बताया—कुछ मास पहले एक लड़का दुर्घटना में मरा। दुर्घटना में मुंह के पास जो टुड्डी का हिस्सा है, उस पर चोट लगी। वह उसी घर में पैदा हुआ। उस बच्चे के टुड्डी पर वही चिह्न था। जैसे ही वाक्-शक्ति का विकास हुआ, उसने कहना शुरू कर दिया—मेरा घर यही है। वही चिह्न है, जहां चोट लगी थी।

हमारे सूक्ष्म शरीर में सारे चिह्न अंकित होते हैं और स्थूल शरीर में भी आगे चलते रहते हैं। उस भाई ने मुनिजी से कहा—महाराज! आप ठीक कह रहे हैं। मुनि बोले—‘भाई! इसका इस दुकान से इतना मोह था कि मृत्यु के क्षण तक सघन बना रहा। उस मोह के कारण तिर्यच गति में चला गया, मर कर बकरा हो गया और इसी दुकान पर आकर बैठने लग गया क्योंकि दुकान से मोह अब भी नहीं छूटा है।’ आसक्ति इतनी लम्बी चलती है कि छूटती नहीं है।

नीचे तो न जाएं

हम अपने जीवन को समझने का प्रयत्न करें और एक बात पर ध्यान दें—आप मनुष्य बन गए हैं, अब ऐसा आचरण करें कि अगले जन्मों में कम से कम मनुष्य से नीचे तो न जाएं।

पचीस बोल का पहला बोल है—गति चार—१. नरक गति २. तिर्यच गति ३. मनुष्य गति ४. देव गति। सबसे नीची गति है नरक गति। दूसरी है तिर्यच गति। तीसरी है— मनुष्य गति। चौथी है देव गति। पांचवीं मानें तो सिद्ध गति। गतियां चार भी हैं और पांच भी। पांच हो तो सिद्ध गति, मोक्ष गति।

मोक्ष की बात छोड़ दें। चार में दो गतियां नीची मानी जाती हैं। तीसरी गति है मनुष्य। आप कम से कम इतना तो सोचें कि मनुष्य बन गए हैं, तीसरी गति में आ गए हैं। मरकर देवगति में न जा सकें तो कम से कम तीसरी में तो रह जाएं, पुनः मनुष्य बन जाएं पर इससे नीचे जाना, नरक में जाना, तिर्यच में जाना बिल्कुल अच्छा नहीं है। मनुष्य गति से नीचे जाने का तात्पर्य है—उदिते अत्थमिते—उदय से अस्त की ओर गति। ब्रह्मदत्त मरने के बाद कहां गया? आगमकार कहते हैं—नरक में गया। कहां चक्रवर्ती राजा और कहां नरक? कहा जाता है—१६ हजार राजा चक्रवर्ती की आज्ञा में रहते हैं। जिनकी एक आंख के इशारे पर सब कुछ होता था।

११२ पथ चुनें पर कौन-सा

इतनी बड़ी सम्पदा, इतना भोग-विलास, इतना ऐश्वर्य किन्तु मरने के बाद गया नरक में। वहां किस पर शासन चलाएगा? कौन पानी पिलाएगा? कौन रोटी खिलाएगा? कोई पूछने वाला भी नहीं है। लड़ते रहो, झगड़ते रहो और दुःख पाते रहो।

क्या होगा भोग का परिणाम?

उदय के बाद अस्त क्यों हुआ? उस कारण पर विचार करें। चित्त मुनि ने बहुत समझाया—‘राजन्! तुमने बहुत भोग भोग लिए। अब इन्हें छोड़ो, मेरे साथ आ जाओ।’

चक्रवर्ती बोला—‘चित्त भाई! तुम साधु बन गए। तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है। खाने को रोटी नहीं मिलती। पैदल चलते हो। तुम साधुत्व को छोड़ो, विपुल भोगों का भोग करो।’

चक्रवर्ती निमंत्रण दे रहा है मुनि को और मुनि निमंत्रण दे रहा है चक्रवर्ती को। मुनि ने कहा—‘राजन्! यदि तुम इन भोगों को नहीं छोड़ोगे तो परिणाम क्या होगा? जरा चिन्तन करो।’

ब्रह्मदत्त ने निराश स्वर में कहा—‘भाई! जैसे दल-दल में फंसा हुआ हाथी सामने स्थल भूभाग को देखता है पर वह दल-दल से निकल नहीं पाता। उसी प्रकार मैं काम भोग के दल दल में आकंठ निमग्न हूँ। मुझे तट दिखाई दे रहा है पर उससे निकलना मेरे लिए संभव नहीं है।’

नागो जहां पंकजलावसन्नो!

दट्टं थलं नाभिसमेइ तीरं।

एवं वयं कामगुणेषु गिद्धा,

न भिक्खुणो मग्गमणुव्वयामो॥

दल-दल की स्थिति ही ऐसी होती है। दल-दल का ऊपर से तो पता नहीं चलता किन्तु यदि पैर रख दो तो फिर निकलना वश की बात नहीं है। निकलने का प्रयत्न करो तो पैर और नीचे चला जाएगा, और इतना नीचे चला जाएगा कि आदमी डूब जाएगा। किसी को पता ही नहीं चलेगा कि कोई यहां है। इतना भयंकर काम होता है।

ब्रह्मदत्त ने चित्त से कहा—भाई! तुम बात तो ठीक कहते हो पर यह हाथी भोग के दल-दल में फंस गया है। अब निकलना संभव नहीं है।

पथ चुनें पर कौन-सा ११३

मुनि ने कहा—राजन्! मुझे क्या पता था कि तुम मेरी बात नहीं सुनोगे। अब मैं सोचता हूँ कि मैंने क्यों इतना समय लगाया, क्यों इतनी शक्ति लगाई? और क्यों तुम्हें समझाने का प्रयत्न किया। अब मैं जा रहा हूँ। तुम जानो, तुम्हारा काम जाने।

न तुज्झ भोगे चइऊण बुद्धी,
गिद्धोसि आरंभपरिग्गहेसु।
मोहं कओ एत्तिउ विप्पलावो,
गच्छामि राय! आमंतिओ सि॥

अनुत्तर भोग : अनुत्तर नरक

बहुत लोग कहते हैं कि भाई! रोज उपदेश सुनते हैं, रोज धर्म की बात सुनते हैं, पर असर नहीं होता। क्यों नहीं होता? इसलिए नहीं होता कि आसक्ति प्रबल है। जिस व्यक्ति में आसक्ति की प्रबलता है, मोह कर्म का उदय अधिक है उसको नीम का पत्ता भी मीठा लगेगा। कहते हैं—बुखार में नीम का कड़वा पत्ता मीठा लगने लग जाता है। जिस व्यक्ति में मोह ज्यादा है, उसको वही मीठा लगता है जो वास्तव में कड़वा है और जो मीठा है वह कड़वा लगता है। ब्रह्मदत्त इतनी आसक्ति में चला गया, ध्यान नहीं दिया। आखिर परिणाम क्या हुआ? उत्तराध्ययन सूत्र में बहुत सुन्दर बतलाया—

पंचालराया वि य बम्भदत्तो, साहुस्स तस्स वयणं अकाउं।
अणुत्तरे भुंजिय कामभोगे, अणुत्तरे सो नरये पविट्ठो॥

चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त ने मुनि के वचन को शिरोधार्य नहीं किया। उसने अणुत्तर काम-भोगों का आसेवन किया और अनुत्तर नरक में गया। चक्रवर्ती के काम-भोगों से बढ़िया कोई काम भोग नहीं होता। अच्छे शब्दों को सुनना, अच्छे-अच्छे नाटकों को देखना। पुराने जमाने में नाटक बहुत होते थे। आज तो नाटक का रूप बदल गया है। आज तो कहीं-कहीं कोई नुक्कड़ नाटक आदि होता होगा। कहीं-कहीं शालीन नाटक भी होते हैं। पर आज कान और आंख को तृप्ति देने के जितने साधन हैं, शायद चक्रवर्ती के जमाने में भी सुलभ नहीं थे। ब्रह्मदत्त ने कभी टी.वी. नहीं देखी होगी, सिनेमा नहीं देखा होगा, रेडियो नहीं सुना होगा, फिल्मी गाने भी नहीं सुने होंगे। न कान को तृप्ति देने वाले उतने साधन थे और न आंख को तृप्ति देने वाले साधन थे। एक अर्थ में तो मानना चाहिए—वर्तमान युग में आसक्ति को बढ़ाने के जितने साधन हैं उतने

११४ पथ चुनें पर कौन-सा

प्राचीनकाल में नहीं थे। आज तो पग-पग पर आसक्ति बढ़ाने वाले साधन हैं। मोह बढ़ाने वाले साधनों की कमी नहीं है।

कौन है शरण ?

पुराने जमाने में बड़े से बड़े राजा, सेठ साहूकार का कोई आयोजन होता, भोज होता तो बत्तीस व्यंजन तैतीस तरकारी प्रसिद्ध शब्द था। कितने पदार्थ बने तो कहा जाता—३२ व्यंजन व ३३ तरकारी। हमने सुना—आज तो ६५ प्रकार के सलाद बन जाते हैं। न जाने कितने पकान्न, कितने व्यंजन और कितनी तरकारियां बनती हैं। कितना विकास हुआ है? एक भाई ने बताया—अमुक परिवार में शादी हुई, १०० आइटम थे। एक भाई ने बताया—मैं अमुक की शादी में गया। वहां १५० आइटम थे। एक भाई अपनी पुत्री की शादी का गुणगान करते हुए बोला—मैंने दिल्ली में होटल में शादी की। इतनी चीजें बनाई कि एक आदमी सबका एक कोर भी चख नहीं सकता। पूरा व्याख्यान दे दिया।

मैंने कहा—‘जहां इतना कुछ है, वहां डॉक्टर ही शरण रहेगा, दवा ही शरण रहेगी और हॉस्पिटल ही शरण रहेगा। तीन चीजें खास उसके लिए काम की होगी—हॉस्पिटल, डॉक्टर व दवा। चौथा हो सकता है—कैमिस्ट—दवा बेचने वाला। अध्यात्म के क्षेत्र में चार परम शरण मानी गई हैं—चत्तारि सरणं पवज्जामि—अरहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवली पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।

आज बीमारी के संदर्भ में—हॉस्पिटलं सरणं पवज्जामि, डॉक्टरं सरणं पवज्जामि, औषधं शरणं पवज्जामि और कैमिस्टं सरणं पवज्जामि—यह शरण चतुष्टयी हो गई। और क्या होगा? जब आदमी आसक्ति को कम नहीं कर पाएगा, मूर्च्छा को तोड़ नहीं पाएगा, अनासक्ति के मार्ग पर नहीं चलेगा तो इसके सिवाय और कोई गति लगती नहीं है। जैसे-जैसे आसक्ति बढ़ रही है और जैसे-जैसे आसक्ति को बढ़ाने वाले साधन बढ़ रहे हैं वैसे-वैसे शारीरिक, मानसिक और भावात्मक स्वास्थ्य की समस्याएं भी जटिल बन रही हैं। यदि कषाय-जनित बीमारियों से बचना है तो आसक्ति को कम करना होगा।

आसक्ति का चक्र कम किए बिना व्यक्ति उदितोदित नहीं हो सकता। आसक्ति का चक्र हास की ओर ले जाता है। इसीलिए जरा चिन्तन करें,

पथ चुनें पर कौन-सा ११५

सोचें—आप उदित रहना चाहते हैं या अस्त होना चाहते हैं? इस तथ्य का अनुशीलन करें—जो आसक्ति को कम नहीं करता, वह ब्रह्मदत्त की भांति उदित होकर भी अस्त की ओर चला जाता है। यदि आप सदा उदित रहना चाहते हैं तो आसक्ति, मोह को कम करें। उदय का पथ सदा प्रशस्त बना रहेगा।

उदितोदित कैसे रहें? (३)

हर मनुष्य ऊपर उठ सकता है। जो धरातल पर है, वह आकाश की ऊंचाइयों को छू सकता है, वायुयान और अन्तरिक्ष यान के बिना वहां जा सकता है। जहां वायुयान और अन्तरिक्ष यान या स्पूतनिक-किसी की पहुंच नहीं है, वहां आदमी जा सकता है। बहुत सारे विद्याधर बहुत ऊंचाई तक गए हैं। वे मेरु पर्वत की चूलिका पर चले जाते। लब्धिधर मनुष्य मनोवांछित स्थानों पर पहुंच जाते। जंघाचारण, विद्याचारण और आकाशगामिनी विद्यासिद्ध पुरुष को किसी वायुयान की जरूरत नहीं होती। वे जहां खड़े हैं, खड़े-खड़े ही विद्या का स्मरण किया, लब्धि का प्रयोग किया और आकाश में उड़ते चले जाते, वे स्वयंभूरमण समुद्र तक पहुंच जाते, जहां आज का कोई भी यान नहीं जा सकता।

कब होता है बदलाव?

मनुष्य में अपार क्षमता है, असीम शक्ति है पर वह कब उठ सकता है? जब कोई निमित्त मिल जाए और पवित्र चेतना जाग जाए तब वह ऊपर उठ सकता है। ऐसा मौका मिले कि कोई चोट हो जाए। केवल चोट की जरूरत है। बिना चोट के यह संभव नहीं होता। कहीं चोट लग जाए-चाहे शरीर पर लग जाए, चाहे मन पर लग जाए और चाहे भावों पर लग जाए। ऐसी चोट लगे कि मनुष्य की चेतना बदल जाए।

एक योगी-संन्यासी का प्रवचन हो रहा था। एक भक्त पहली बार आया, प्रवचन सुना और चेतना पर ऐसी चोट लगी कि वैराग्य हो गया। वह खड़ा हुआ, परिषद् की ओर देखा-कोई ऊंघ रहा है, कोई सिर नीचे किये हुए है, कोई सुनने की मुद्रा में भी नहीं है। इस स्थिति को देखकर वह बोल पड़ा-

**एक बार प्रवचन सांभल्यो, हुयो ज्ञान में गरक।
रोज-रोज ए सांभलै, अरे कान है क दरक॥**

पथ चुनें पर कौन-सा ११७

मैंने एक बार सुना और ज्ञान में गरक हो गया, ज्ञान में डूब गया। ये रोज-रोज सुनते हैं, इनमें कोई परिवर्तन लगता नहीं है। इनके ये कान हैं या दरक-गड्ढे हैं।

जब तक कोई चोट नहीं होती, आदमी जागता नहीं है। एक चोट ऐसी होती है कि अत्थमिते उदिते-अस्त से उदय की ओर चला जाता है। हरिकेश बल चाण्डाल किशोर अवस्था में इतना उद्वण्ड, उच्छृंखल और आक्रामक था कि हर किसी के साथ लड़ाई-झगड़ा करता रहता। दिन हो या रात, जब तक जाग्रत् रहता, शांत नहीं रहता। मारवाड़ी में कहा जाता है सिचलो कोनी रेवै-सीधा, शांत नहीं रहता। लड़ना-झगड़ना, गाली-गलौज करना, हाथापाई करना, पत्थर फेंकना, छेड़छाड़ करना-यही धंधा था। न पढ़ाई-लिखाई, न कमाई, कुछ भी नहीं। केवल ऊधम मचाना, सारे दिन निकम्मा काम करना। घर वाले बहुत समझाते पर वह नहीं मानता। बहुत बार समझाने से काम नहीं होता। कभी ऐसा कोई निमित्त मिले, सीधी चेतना पर चोट कर दे तो काम हो जाता है।

चाण्डाल हरिकेशबल एक दिन जंगल में खड़ा था। काला नाग आया। चारों तरफ से लोग दौड़े, पत्थर फेंके, सांप को मार डाला।

कौन है सबसे ज्यादा जहरीला ?

आदमी अन्याय तो करता है। क्यों मारा ? इसलिए कि वह जहरीला है, काट लेता है, आदमी को मार देता है। वास्तव में विचार करें तो आदमी से ज्यादा जहरीला प्राणी दुनिया में कोई नहीं है। सबसे ज्यादा जहरीला प्राणी कोई है तो वह आदमी है। सांप तो दयनीय प्राणी है। कभी किसी को काट खाए और कोई मर जाए। वह तो दो चार को मारता होगा। आदमी तो इतना जहरीला है कि हजारों, लाखों को एक साथ भून डालता है। जब नागासाकी-हिरोशिमा पर बम डाला तो कितनी बर्बादी हुई। बम सांप ने बनाया या आदमी ने बनाया ? अणुबम सांप ने डाला या आदमी ने ?

भगवती सूत्र में एक बहुत सुन्दर प्रसंग आता है। उसमें जहर का वर्णन है। बिच्छू में जहर कितना होता है ? मेढक में जहर कितना होता है ? सांप में जहर कितना होता है ? सबका जहर बतलाया। अंतिम प्रश्न आया-आदमी में जहर कितना होता है ? भगवती सूत्र में बतलाया गया-सबसे ज्यादा जहर आदमी में होता है। अगर आदमी के जहर को फैलाया जाए तो शायद वह पूरे जम्बूद्वीप को समाप्त कर सकता है, बिना अणुबम के समाप्त कर सकता है।

११८ पथ चुनें पर कौन-सा

इतना भारी जहर आदमी में होता है। आदमी सबसे ज्यादा विषैला होता है। वह समर्थ है इसीलिये बेचारे असमर्थ प्राणियों को मार डालता है। इस आशंका से मार देता है कि वे मार न दें।

अस्त से उदय की ओर

हरिकेशबल सांप की मौत अवाक् बन देखता रहा। कुछ समय बाद एक गिरगिट निकला। वह दिखने में सांप जैसा ही होता है। रंग बदलता रहता है। किसी ने पत्थर नहीं फेंका, उसे मारा नहीं। हरिकेशबल ने सांप के प्रति क्रूरता का और गिरगिट के प्रति सहानुभूति का भाव देखा। जाने-अनजाने दिमाग पर एक चोट हो गई।

वह लोगों के पास आया, बोला—पहले सांप निकला, चारों ओर से पत्थर फेंके गए, सांप को मार डाला। इस गिरगिट को किसी ने मारा नहीं। क्या कारण है?

लोगों ने बताया—सांप आदमी को काटता है, नुकसान पहुंचाता है इसीलिए उसे मार डाला। गिरगिट किसी को मारता नहीं, हानि नहीं पहुंचाता इसलिए किसी ने इसको नहीं छोड़ा।

इस एक घटना ने हरिकेशबल के दिमाग को बदल दिया। मन पर ऐसी चोट हुई, सोचा—जो छेड़छाड़ करता है, दूसरों को सताता है उसे लोग मारते हैं। जो नहीं सताता, उसे कोई नहीं मारता। मैं भी सबके साथ छेड़छाड़ करता हूँ इसीलिए मुझे सब लोग सताते हैं। अब मैं गिरगिट बनूंगा, सांप नहीं रहूंगा। चोट ऐसी हुई कि उस आक्रामक किशोर का कायाकल्प हो गया। वह भगवान महावीर के शासन में दीक्षित हो गया, प्रसिद्ध मुनि हो गया।

आगम साहित्य में भगवान महावीर के समय के कुछ साधु-साध्वियों के नाम मिलते हैं, उनमें हरिकेशबल का अपना स्थान है। उत्तराध्ययन सूत्र में हरिकेशबल मुनि के लिए लिखा गया—जाति की विशेषता नहीं है, तप की विशेषता है। जिसकी ऋद्धि अचिन्त्य शक्ति संपन्न है, वह हरिकेशबल चाण्डाल का पुत्र है—

सक्खं खु दीसइ तवो विसेसो।

न दीसई जाइविसेस कोई।

सोवागपुत्ते हरिएससाहू।

जस्सेरिसा इड्ढि महाणुभागा॥

पथ चुनें पर कौन-सा ११६

महानता का निदर्शन

हरिकेशबल की घटना प्रसिद्ध है। वे यज्ञ के बाड़े में गए। ब्राह्मणों ने तिरस्कार किया, छात्रों ने सताया। मारने-पीटने की चेष्टा की, गालियां दी। आक्रोश भरे स्वर में कहा—निकल जाओ हमारे बाड़े से। सब कुछ किया। आखिर वे सब प्रणत हो गए। ब्राह्मण सोमदेव आगे आया, बोला—‘महाराज! क्षमा करें। इन अनजान छात्रों ने आपका अविनय किया है, आसातना की है। आपके साथ अक्षम्य व्यवहार किया है। किन्तु आप जैसे त्यागी तपस्वी मुनि महान् प्रसाद वाले होते हैं। वे कभी कोप नहीं करते।

बालेहि मूढेहि अयाणएहिं,
जं हीलिया तस्स खमाह भंते!
महप्पसाया इसिणो भवंति,
न हु मुणी कोवपरा हवंति॥

मुनिप्रवर! आप प्रसाद करें। ये मेरे सारे छात्र औंधे मुंह गिर गए हैं, मुंह से खून आ रहा है। ये मर न जाएं, आप जल्दी कृपा करें, इनको खड़ा कर दें।

यह क्यों हुआ? किसने किया? यह मुनि की सेवा में रहने वाले यक्ष ने किया। इतना सताए जाने पर, इतना अपमान और तिरस्कार किए जाने पर भी मुनि हरिकेशबल शांत बने रहे। उन्होंने जो उत्तर दिया, वह महानता का निदर्शन है—पुरोहितवर! पहले भी मेरे मन में रोष नहीं था। वर्तमान में भी मेरे मन में कोई रोष नहीं है। मैं तुझे विश्वास दिलाता हूं—भविष्य में भी मेरे मन में कोई रोष नहीं होगा।

पुव्विं च इण्हिं च अणागयं च,
मणप्पदोसो न मे अत्थि कोई॥

बदलता है व्यक्ति

तुलना करें। एक वह हरिकेशबल, जो बिना मतलब दूसरों को सताता था, गुस्सा करता था, क्रूरता का व्यवहार करता था। एक वह हरिकेशबल, जो इतना सताये जाने पर, गालियां देने पर भी उपशम रस में लीन है। शांत-समुद्र में कोई तूफान नहीं, कोई बवंडर नहीं, वह सहज गंभीर स्वर में कह रहा है—मेरे मन में न रोष था, न है और न होगा।

हम ध्यान दें—वह हरिकेशबल और यह हरिकेशबल—दो नहीं हैं, एक ही व्यक्ति है। एक व्यक्ति इतना बदल सकता है मानो नया जन्म हो गया।

१२० पथ चुनें पर कौन-सा

एक वह हरिकेशबल था, जो अत्थमिते-अस्त की दशा में था और एक वह हरिकेश बल है, जो उदय की अवस्था में आ गया। भगवान ने कितना सुन्दर बतलाया-अत्थमिते उदिते-एक अस्त की अवस्था में होता है किन्तु अपनी साधना के द्वारा, अपनी पवित्रता के द्वारा, अपने अच्छे व्यवहार के द्वारा उदय की अवस्था में चला जाता है।

यह जरूरी नहीं है कि सब व्यक्ति उदय-काल में आएँ। कोई व्यक्ति अस्तकाल में भी आता है किन्तु अपनी अच्छी साधना और अच्छे व्यवहार से इतना बदल जाता है कि उदय-काल प्रारम्भ हो जाता है।

व्यवहार बदला : संसार बदल गया

एक बहुत प्रचलित कथा है। लड़की की शादी कर दी गई। वह ससुराल में गई। वह लाड-प्यार में पली बड़ी थी। सहना उसने सीखा नहीं था। ससुराल में कोई भी कुछ कहता, सीख देता तो उसे अप्रिय लगता। निरन्तर कलह और संघर्ष का वातावरण रहने लगा। कुछ दिन बाद पिता लेने गया। ससुराल वाले बहुत प्रसन्न हुए। उसे पीहर भेजकर सुख का अनुभव किया। पिता ने पूछा-बेटी! क्या स्थिति है?

लड़की रोते हुए बोली-पिताजी! आपको शादी करनी थी या वैर का पोषण करना था? ऐसे घर भेजा है, जहां कोई भी मेरे अनुकूल नहीं है। मैं दुखियारी बन गई। अब मैं वहां नहीं जाऊंगी।

पिता ने कहा-‘बेटी! मैं तुझे एक मंत्र बताता हूँ। अगर तुम मंत्र की साधना कर लो तो सब कुछ बदल जाएगा। जो तुम्हें भूत, पिशाच लग रहे हैं, वे अच्छे आदमी बन जाएंगे।’

पुत्री बोली-‘पिताजी! अगर ऐसा कर दो तो मैं निहाल हो जाऊँ।’

पिता ने उसे नवकार मंत्र सिखाया, कहा-‘बेटी! सास, ससुर, देवर, जेठ, देवरानी, जेठानी, ननद कोई भी लड़ाई करे तो तुम हाथ जोड़ लेना, नवकार मंत्र का जप करना और दस मिनट तक कुछ मत बोलना। यह उसका पथ्य है। यदि छह महीना तक इस मंत्र की साधना कर लोगी तो सारा परिवार तेरी मुट्ठी में हो जाएगा।’

पुत्री बोली-‘पिताजी! मैं यह अवश्य करूंगी।’

पिता ने उसे ससुराल पहुंचा दिया। ससुराल वालों ने सोचा-यह समस्या फिर आ गई। लेकिन इस बार उसका दूसरा रूप सामने आया। सास ने कुछ

कहा तो वह बोली नहीं, नवकार मंत्र जपने लग गई। हाथ जोड़ लिए, दस मिनट तक मौन रही।

दो-चार दिन वह शांत रही, जप करती रही। विनम्रता ने सबका दिल जीत लिया। छेड़छाड़ करने वाले भी विस्मित रह गए। सास उसकी परम संरक्षिका बन गई। कोई छेड़छाड़ करता तो सास बोलती—खबरदार! मेरी बहू इतनी अच्छी है, तुम छेड़छाड़ करते हो। सास ने छेड़ने वालों को डांटना शुरू कर दिया। दस-बीस दिन में ऐसी स्थिति बनी कि घर की चाबियां हाथ में आ गईं। जिसे वह यमदूत, भूत, पिशाच जैसा मानती थी, वे देवदूत जैसे लगने लगे।

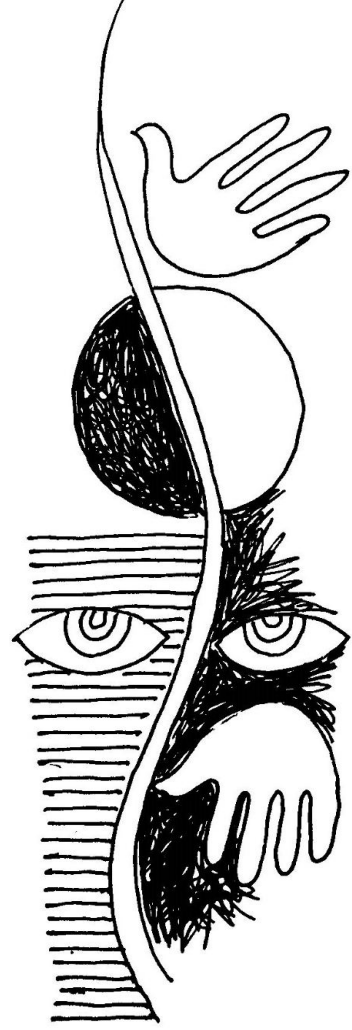
व्यवहार बदला और संसार बदल गया।

उदय के सूत्र

आप निश्चित मानें—आदमी बदल सकता है, बदलता है पर तब बदलता है जब कोई चोट हो जाए। हरिकेशबल पर ऐसी चोट हुई कि बिल्कुल बदल गया, मुनि बन गया। यह उदाहरण है प्रारम्भ में अस्त और बाद में उदय का। वह अस्त दशा से उदय में ऐसा आया कि महावीर के शासन का एक अग्रणी साधु बन गया, देवों के लिए भी पूज्य बन गया।

यह विश्वास रहे—हम अच्छे प्रयत्न के द्वारा अपने विकास को बढ़ा सकते हैं, उदय में जा सकते हैं और अपना इतना उदय कर सकते हैं कि शायद सबके लिए अनुकरणीय बन जाएं। क्या आप इस विश्वास को निरन्तर पुष्ट बनाएंगे, ऐसा प्रयत्न करेंगे जिससे उदय, विकास निरन्तर बढ़ता रहे, आपकी आत्मा निरन्तर गुण और विशेषता के शिखर को छूती रहे?

उदय के सूत्र हैं—उपशम, समता और अनासक्ति की भावना। इनकी साधना अनवरत चलती रहे, एक दिन आप स्वयं को श्रेष्ठता के शिखर पर पाएंगे।



असंख्यं जीविय मा पमायए



असंख्यं जीविय मा पमायए

उत्तराध्ययन सूत्र का एक वचन है—असंख्यं जीविय मा पमायए—जीवन का संस्कार नहीं किया जा सकता, संधान नहीं किया जा सकता इसलिए प्रमाद मत करो, जागरूक रहो, सोओ मत, नींद मत लो। रात को तो नींद लेनी पड़ती है पर कम से कम प्रवचन-श्रवण के समय नींद मत लो, दिन में भी ज्यादा नींद मत लो। यह नहीं कि दिन में कुछ विश्राम के लिए सोए तो तीन घंटे सोए ही रहे। दिन का समय सोने का नहीं, जागने का समय होता है। जब सूरज अस्त हो जाता है, रात गहरी होने लगती है तो नींद भी आ जाती है। नींद लेना आवश्यक भी होता है पर कम से कम भाव नींद मत लो, प्रमाद मत करो, जागरूक रहो और जीवन को समझने का प्रयत्न करो।

जागरूक रहें जीवन के प्रति

जीवन क्या है? असंख्यं—जीवन असंस्कृत है, उसका संस्कार और संधान नहीं किया जा सकता। कपड़ा मैला हो गया। धुलाई की और साफ हो गया। बर्तन खराब हो गया तो उसका भी संस्कार होता है, सफाई होती है। पर जीवन ऐसा है, जिसका संस्कार नहीं होता। इसीलिए जीवन के प्रति जागरूक रहना होता है। हम कैसे जीएं? हमारा जीवन कैसे चले? जीने की कला बहुत कड़ी कला है।

बहुत लोग जीवन में दुःख का अनुभव करते हैं, अशांति का अनुभव करते हैं। और तो क्या, जिन्होंने घर-बार को छोड़ दिया, संन्यासी बन गए, उनमें भी कभी-कभी आर्तध्यान और अशांति की बात आ जाती है। इसलिए कि जीना नहीं जानते।

दुःख में से सुख निकालें

आप एक सूत्र को पकड़ लें—मैं इस दुनिया में दुःख भोगने के लिए नहीं जन्मा हूं, आनन्दमय जीवन जीने के लिए आया हूं। क्या इसका मतलब यह है कि समस्या नहीं आएगी? दुःख के प्रसंग नहीं आएंगे? आर्तध्यान के निमित्त

१२४ पथ चुनें पर कौन-सा

नहीं आएंगे? ये कैसे नहीं आएंगे? सब कुछ आएगा। समस्या आएगी, पर समस्या का मतलब दुःख नहीं है। उलझन आएगी, पर उलझन का मतलब दुःख नहीं है। जटिल परिस्थितियां भी आएंगी, पर उनका मतलब दुःख नहीं है। दुःख तो अपनी मानसिक कल्पना है। आपने मान लिया इसलिए दुःख है। यदि न मानें तो कोई दुःख नहीं है। हम प्रेक्षाध्यान के द्वारा अनेक लोगों को एक बात समझाते हैं और उनका दुःख बहुत कम हो जाता है। हम सुझाते हैं—जो भी स्थिति आए, समस्या आए, उस समस्या को जानो किन्तु भोगो मत। तुम दुःखी मत बनो; सुख और आनन्द से जीओ, दुःख में से सुख निकालने का प्रयत्न करो, दुःख में से सुख निकाल लो। प्रश्न हो सकता है कि क्या यह संभव है? यदि हम जीवन को समझ लें तो यह संभव हो सकता है।

अनुभव की बात

मैं अपना अनुभव बताऊँ—मैंने अपने जीवन में दुःख का अनुभव बहुत कम किया है। कभी यह लगा ही नहीं कि जीवन में दुःख होता है। लोग कहते हैं कि जीवन में बहुत दुःख हैं पर मैंने कभी दुःख का अनुभव नहीं किया, निरन्तर शांति और सुख का अनुभव किया तभी यह बात मेरे समझ में आई—‘सदा दीवाली संत के आठों पहर आनन्द। संत के जीवन में सदा दीवाली होती है, आठों पहर आनन्द का अनुभव होता है।’ वह प्रत्येक व्यक्ति इस सचाई का अनुभव कर सकता है, जिसके जीवन में संतता का विकास है।

जब तक मोह प्रबल रहेगा, मोहात्मक चिन्तन रहेगा और कमी को देखते चले जाएंगे तब तक सुखी नहीं बन सकेंगे। कमी और अभाव की अनुभूति दुःख का कारण बनती है। एक मनुष्य लखपति बन गया। वह सोचता है—मेरे पास कुछ है पर उतना नहीं है जितना अमुक करोड़पति के पास है। इस चिन्तन से वह दुःखी बन जाता है। जो पास में है, उससे सुखी नहीं है किन्तु जो नहीं है, उसके कारण दुःखी बनता है। इस बात पर विचार करें—जो है, उसका सुख नहीं भोगते। जो नहीं है, उस ओर ध्यान जाता है और उससे दुःखी बनते हैं। मेरे पास यह नहीं है, वह नहीं है, इस चीज की कमी है—इस चिन्तन का कभी अंत नहीं आता।

बोधपाठ मिला शेखसादी को

एक भिखारी भीख मांग रहा था। प्रसिद्ध संत शेखसादी उधर से गुजरे। उन्होंने देखा—भिखारी के चेहरे पर प्रसन्नता टपक रही है। शेखसादी ने सोचा—

पथ चुनें पर कौन-सा १२५

भिखारी भीख मांगता है फिर भी इतना प्रसन्न है। मैं संत बन गया फिर भी इतना प्रसन्न नहीं हूँ। क्या कारण है? संत शेखसादी उस भिखारी के पास गए, बोले—भाई! तुम्हारे पैरों में लंगड़ापन है, तुम चल नहीं सकते फिर भी तुम इतने प्रसन्न कैसे रहते हो?

भिखारी ने बहुत मार्मिक उत्तर दिया—पैर नहीं है तो क्या? मेरे दोनों हाथ सही-सलामत हैं, मेरी आंखें ठीक हैं, मेरा दिमाग शांत और स्वस्थ है। एक पैर को छोड़कर सब कुछ सही है। जो बहुत कुछ अच्छा है, उससे मैं सुखी बनूँ? या केवल दो पैर नहीं हैं, उससे मैं दुःखी बनूँ?

संत शेखसादी को एक सबक और बोधपाठ मिल गया। प्रत्येक व्यक्ति इस पर विचार करे—मेरे पास जो है, उससे मैं सुखी हूँ अथवा जो मेरे पास नहीं है, उससे मैं दुःखी बना हुआ हूँ। यदि थोड़ा सा चिन्तन करें तो दुःख काफी कम हो जाएगा। जहां जीवन है, वहां समस्याएं आती हैं, कठिनाइयां आती हैं, परीक्षाएं होती हैं, किन्तु मुझे इन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होना है, सफल बनना है। जिस व्यक्ति का यह संकल्प बन गया, वह हजार कठिनाइयों में भी सुखी रह सकता है। जिस व्यक्ति का यह संकल्प नहीं बना, उसके दुःख को कभी कम नहीं किया जा सकता।

परीक्षा और उत्तराधिकारी का मनोनयन

मगध सम्राट् प्रसेनजित बहुत शक्तिशाली राजा था। उसके सौ पुत्र थे। प्राचीन परम्परा रही—ज्येष्ठ पुत्र उत्तराधिकारी बनता था। चुनाव, मनोनयन अथवा नियुक्ति का प्रश्न नहीं था। जो बड़ा होता, वह राजा बन जाता। पर कभी-कभी कोई प्रयोगधर्मा व्यक्ति होता है, वह नया प्रयोग कर लेता है। प्रसेनजित ने सोचा—मुझे प्रयोग करना है, परीक्षा करके अपना उत्तराधिकारी चुनना है। जो परीक्षा में उत्तीर्ण होगा वह राज्य का उत्तराधिकारी होगा। सम्राट् प्रसेनजित ने परीक्षा की योजना बना ली, अपने विश्वस्त अधिकारियों को समझा दी।

एक दिन आदेश हुआ—आज सब कुमारों को एक साथ भोजन करना है। स्थान और समय निश्चित हो गया। कुमार निर्धारित समय पर आए और एक विशाल हॉल में पंक्तिबद्ध बैठ गए। सबके सामने पक्वान्न से भरे थाल रखे हुए थे। घोषणा की गई—सब कुमार भोजन प्रारम्भ करें। कुमार भोजन करना शुरू कर पाते, उससे पहले ही मुख्य दरवाजा खुला और एक साथ अनेक शिकारी कुत्ते भोजन-कक्ष में घुस गए। चारों ओर भगदड़ मच गई। खूंखार

१२६ पथ चुनें पर कौन-सा

शिकारी कुत्तों को देखते ही कुमार भयभीत हो गए। सारे कुमार भोजन छोड़ कर पलायन कर गए। केवल कुमार श्रेणिक वहां बैठा रहा। सम्राट् प्रसेनजित महल के झरोखे से सारा दृश्य देख रहे थे। श्रेणिक की अभयवृत्ति को निहार कर प्रसन्न हो गए।

दूसरा दिन। घोषणा की गई—आज राज्यसभा में सम्राट् प्रसेनजित अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति करेंगे। राज्यसभा खचाखच भर गई। हजारों लोग बाहर खड़े थे। सबमें उत्सुकता थी—हमारा नायक कौन बनेगा? कौन होगा भावी शासक? उस युग में राजा का मतलब ही ईश्वर था। इतना सम्मान और प्रभुत्व होता था उसका।

राज्यसभा में सम्राट् प्रसेनजित ने सबसे पहले ज्येष्ठ पुत्र को खड़ा किया, पूछा—‘कल सामूहिक भोजन की व्यवस्था थी। तुमने अच्छी तरह भोजन किया?’

ज्येष्ठ कुमार आवेश में उबल पड़ा, बोला—‘महाराज! आपके अधिकारी कितने गैर जिम्मेदार हैं। जहां सौ राजपुत्रों को भोजन करना था वहां भोजन शुरू होने से पहले ही शिकारी कुत्ते आ गए। हम भोजन कैसे कर सकते थे? हम तो भोजन के थाल छोड़कर भागने के लिए विवश बन गए।’

सम्राट् प्रसेनजित ने यही प्रश्न शेष पुत्रों से पूछा, निन्यानबे पुत्रों ने आक्रोश की भाषा में यही उत्तर दिया कि हम अधिकारियों के गैर जिम्मेदाराना व्यवहार के कारण भोजन नहीं कर सके।

सबसे छोटे पुत्र श्रेणिक से पूछा—‘क्या तुमने भी भोजन नहीं किया?’

श्रेणिक—‘महाराज! मैंने भोजन किया और खूब आनन्द से किया।’

‘श्रेणिक! ऐसा लगता है तू समझदार नहीं है। निन्यानबे पुत्र समझदार हैं वे इसलिए भाग गए कि कहीं कुत्ता न काट जाए। क्या तुम्हें डर नहीं लगा?’

‘नहीं महाराज! मुझे कोई डर नहीं लगा। मैंने भरपेट भोजन किया।’

‘लेकिन तुमने भोजन किया कैसे? तुम्हें डर कैसे नहीं लगा?’

‘महाराज! मेरे पास निन्यानबे थाल पड़े थे। कुत्ते आते गए, मैं उनके सामने एक-एक थाल सरकाता गया। कुत्ते उसे खाने में मग्न हो गए। महाराज! कुत्ते उसे काटते हैं, जो स्वयं खाना जानते हैं, दूसरों को खिलाना नहीं जानते। उसको कुत्ते कभी नहीं काटते, जो दूसरों को खिलाना जानता है।’

पथ चुनें पर कौन-सा १२७

श्रेणिक की मर्म-भरी बात सुनकर पूरा वातावरण शांत हो गया। राजा प्रसेनजित प्रसन्न हो गए, उन्होंने तत्काल घोषणा कर दी—श्रेणिक मेरा उत्तराधिकारी होगा।

जटिल है ईर्ष्या की वृत्ति

राज्यसभा में युवराज श्रेणिक का जयनाद हुआ, प्रजा हर्षित हो गई किन्तु निन्यानबे भाई विषण्ण हो गए। उनका मन अशांत बन गया। यह राजगद्दी और सत्ता का प्रश्न ऐसा है कि उसके लिए कितने षड्यंत्र रचे जाते हैं, कितना संघर्ष और अनर्थ होता है। सत्ता का प्रश्न है और वहां कोई झंझट नहीं है तो आश्चर्य मानना चाहिए। चाहे गृहस्थ का प्रश्न है या साधु-संन्यासियों का, जहां उत्तराधिकार का प्रश्न आता है, वहां कुछ न हो तो आश्चर्य मानना चाहिए। यह बहुत जटिल काम है। श्रेणिक का मनोनयन निन्यानबे भाइयों के लिए असह्य बन गया। उन्होंने सोचा—श्रेणिक को सम्राट बनाने के लिए हमारी उपेक्षा की गई। एक ओर श्रेणिक उत्तराधिकारी बन गया, दूसरी ओर ईर्ष्या का पात्र भी बन गया।

दो वृत्तियां हैं—१. ईर्ष्या २. प्रमोद भावना। जहां प्रमोद भावना है, दूसरे के गुणों के प्रति अनुराग है, दूसरे की विशेषताओं का ग्रहण है वहां कोई झंझट नहीं होता। जहां ईर्ष्या की वृत्ति है, दूसरों का उत्कर्ष सहन नहीं होता, वहां समस्या जटिल बन जाती है। निन्यानबे भाइयों के मन में ईर्ष्या और आक्रोश का भाव जाग गया।

दूसरी परीक्षा

सम्राट श्रेणिक को पता चला—निन्यानबे भाई असंतुष्ट हैं। क्या करूं? सम्राट ने सोचा—एक परीक्षा और कर लूं, जिससे सब भाइयों को संतोष हो जाए, सब यह समझ लें कि श्रेणिक सबसे अधिक बुद्धिमान और समझदार है इसलिए उसे चुना गया है।

तीसरा दिन। सम्राट श्रेणिक ने कहा—‘मैंने श्रेणिक को उत्तराधिकारी चुन लिया है फिर भी मैं एक परीक्षा और करना चाहता हूं। यदि उस परीक्षा में कोई दूसरा उत्तीर्ण होगा तो मैं निर्णय पर पुनर्विचार करूंगा।’

परीक्षा का दिन निर्धारित हो गया। निश्चित समय पर सब कुमार उपस्थित हो गए। पात्रों में भोजन रखा हुआ था। भोजन-पात्रों के मुख लाख के चूर्ण से बंद किए हुए थे। घोषणा की गई—जो राजकुमार पात्र का मुख खोले बिना

१२८ पथ चुनें पर कौन-सा

भोजन कर लेगा अथवा करा देगा, वह उत्तीर्ण होगा। जो भूखा, प्यासा रहेगा, वह उत्तीर्ण नहीं होगा। निन्यानबे कुमार इस घोषणा को सुनकर स्तब्ध रह गए। उनकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि पात्र का मुंह खोले बिना भोजन कैसे करें? भूख कैसे बुझाएं? निन्यानबे भाई कुछ कर नहीं पाए। सबके बाद श्रेणिक का क्रम आया। उसने अवधानपूर्वक देखा और रहस्य पकड़ में आ गया। रहस्य इतना सा था कि पात्रों के मुख पर जो चूर्ण का लेप किया हुआ था, वह पात्र को हिलाते ही झड़ जाएगा। श्रेणिक पात्र को हिलाता गया, खाद्य सामग्री बाहर आती गई और उसे सब कुमारों को खिलाता गया। सबको खिलाने के पश्चात् उसने स्वयं भी भोजन कर लिया।

पानी के बर्तन का मुंह भी नहीं खोलना था। जल-पात्र ऐसे थे, जिनमें से पानी झर रहा था। श्रेणिक झरते हुए पानी से वस्त्र को गीला करता गया, निचोड़ता गया और पिलाता गया।

श्रेणिक उत्तीर्ण हो गया। उसने एक बार फिर अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित कर दी फिर भी ईर्ष्या की आग बुझी नहीं। सम्राट् प्रसेनजित ने सोचा—क्या करें। एक ओर निन्यानबे भाई हैं, दूसरी ओर श्रेणिक अकेला है। एक ओर निन्यानबे भाइयों का बल, दूसरी ओर श्रेणिक का बल। क्या होगा? यह राज्य के लिए अच्छा नहीं है।

तीसरी परीक्षा

सम्राट् प्रसेनजित ने एक और प्रयत्न किया। उसने निर्देश दिया—सब राजकुमार कोषागार में जाएं। कोषागार में हीरा, पन्ना, माणिक आदि अनेक कीमती वस्तुएं हैं। उनमें से एक कीमती वस्तु पसंद आए, उसे ले जाएं। सब कुमार कोषागार में गए, किसी ने हीरा उठाया, किसी ने पन्ना और माणिक लिया। श्रेणिक ने सोचा—हीरे, पन्ने क्या काम आएंगे। मुझे शासक बनना है, राजा बनना है तो भंभा भेरी काम आएगी। उसने कोई कीमती वस्तु नहीं उठाई, भंभा भेरी उठाई। सब कुमार रत्नों को लेकर बाहर आए। श्रेणिक के हाथ में थी भंभा भेरी। सम्राट् प्रसेनजित ने श्रेणिक के हाथ में भंभा भेरी देखकर सोचा—मैं ईर्ष्या को कैसे मिटाऊं? इसकी बुद्धि को कम कैसे करूं? यह कितना बुद्धिमान है। इसने उस राज्य चिह्न को उठाया है, जो शासक/राजा के लिए अनिवार्य है। सम्राट् प्रसेनजित ने श्रेणिक का नाम कर दिया भंभासार। आजकल साहित्य में बिम्बसार का प्रयोग होता है किन्तु मूल नाम रहा भंभासार। उसी का अपभ्रंश हो गया बिम्बसार।

भाइयों ने सोचा—पिताश्री श्रेणिक को सम्मान दे रहे हैं, श्रेणिक का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। अब क्या करें?

कषाय की प्रबलता से उलझती हैं समस्याएं

आदमी कहां तक चला जाता है? यह कषाय की प्रबलता क्या क्या नहीं करवाती? जैन धर्म ने मूल बात को पकड़ा—कषाय को कम करो। कषाय कम होता है तो समस्याएं कम होती हैं। कषाय प्रबल होता है तो समस्याएं उलझती चली जाती हैं। जिसका कषाय प्रबल है वह न स्वयं शांति से जीता है, न दूसरों को शांति से जीने देता है। जो कषाय को शांत कर लेता है, वह शांति के साथ जीता है, सुख और आनन्द में रहता है। जिसका कषाय शांत नहीं है, उसके दिमाग में रात-दिन अनिष्ट का चक्र चलता रहता है। अमुक व्यक्ति को कैसे गिराऊं? कैसे नीचा दिखाऊं? उसकी प्रतिष्ठा को कैसे ध्वस्त करूं? दूसरों को सताने के लिए आदमी न जाने कितने मायाजाल रच लेता है। तंत्र-मंत्र, मारकशास्त्र आदि गलत तत्त्वों का प्रयोग भी कर लेता है। निन्यानबे भाइयों के मन में यह विचार संक्रांत हो गया—‘इस समस्या से मुक्ति का एक ही उपाय है कि हम श्रेणिक को किसी प्रकार समाप्त कर दें।’

प्रबल है प्रतिशोध की भावना

यह मनोवृत्ति बहुत खतरनाक है। वर्तमान युग में भी समस्या के समाधान के लिए हिंसात्मक तरीके काम में लिए जाते हैं, पिस्तौल, रायफल अथवा रिवाल्वर का प्रयोग किया जाता है। यह गोली की भाषा हिंसात्मक मनोवृत्ति से उत्पन्न होती है। आज यह मनोवृत्ति ऊपर से नीचे तक व्याप्त है और इसका कारण है कषाय। आज कषाय को शांत करने का कोई उपाय अथवा प्रक्रिया नहीं चल रही है। यह धारणा बन गई कि समस्या का समाधान केवल गोली से होता है। आज प्रतिक्रिया, प्रतिशोध की भावना इतनी प्रबल बनी हुई है कि किसी को मारना तो जैसे सामान्य बात हो गई है। राजनीति के क्षेत्र में कितने बड़े-बड़े लोगों की हत्या कर दी जाती है। आज आतंकवाद के कारण कितने निरपराध लोगों की हत्या हो जाती है। ऐसा लग रहा है, जैसे कषाय को प्रबल करने का तंत्र सक्रिय बना हुआ है। अनेक विकासशील और विकसित राष्ट्रों में आतंकवाद के स्कूल चलते हैं, जहां हिंसा का प्रशिक्षण दिया जाता है। प्राचीन युग में कुछ चोर-डाकू होते थे, आज तो कितने ही नए-नए तरीके विकसित हो

१३० पथ चुनें पर कौन-सा

गए हैं। आज अपहरण और फिरौती का एक नया धंधा खुल गया है। ये सारी महामोह की विडम्बनाएं हैं।

श्रेणिक को पता चला गया—मुझे मारने का षड्यंत्र रचा जा रहा है। सम्राट प्रसेनजित को भी इस योजना का पता चल गया। उन्होंने सोचा—अब श्रेणिक का यहां रहना उचित नहीं है। भीतर ही भीतर निर्णय हो गया, श्रेणिक राज्य का परित्याग कर अज्ञात स्थान पर चले गए। यह घटना-प्रसंग बहुत आगे बढ़ता है, अनेक उतार-चढ़ाव आते हैं। हम सोचें—भव्य राजप्रासाद में रहने वाला सुकुमार राजकुमार किस स्थिति में चला गया। अनजाने पथ का राही बन गया। न कोई साथी, न कोई सुरक्षा—प्रबंध और न कोई भोजन, चिकित्सा आदि की व्यवस्था। सुख-दुःख की बात पूछने वाला भी कोई नहीं था। अकेला जंगल में भटकता रहा।

एकरूप नहीं रहता जीवन

जीवन में ऐसे क्षण भी आते हैं, उतार-चढ़ाव आता है, अनेक घाटियां और विषम परिस्थितियां आती हैं, कभी दिन और कभी रात का अनुभव होता है। जीवन कभी एकरूप नहीं रहता। जीवन को समझने और जानने का मतलब यह है कि हम इन स्थितियों में संतुलन बनाए रख सकें। उस व्यक्ति ने जीवन को समझा है, जो हर स्थिति में संतुलन को बनाए रख सकता है। थोड़ी स्थिति आते ही जो विचलित हो जाता है, घुटने टेक देता है, भयभीत हो जाता है, ऐसा अनुभव करता है कि मानो आकाश फट जाएगा, उस व्यक्ति का जीवन अच्छा नहीं होता। जीना है तो अच्छे ढंग से जीना चाहिए, शांति और समग्रता के साथ जीना चाहिए। जहां जीवन है वहां अनेक प्रकार की स्थितियां आएंगी, पर मुझे अपने आनन्द को कम नहीं करना है। परिस्थितियां बाहर से आती हैं और आनन्द हमारे भीतर है।

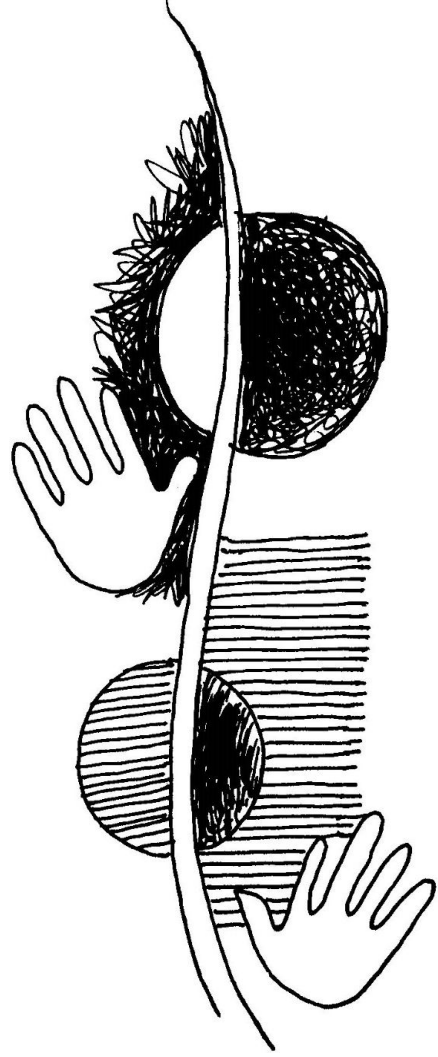
तुम्हारे हाथ में है चाबी

यदि हम धर्म के मर्म को समझना चाहते हैं, महावीर की मूल वाणी को समझना चाहते हैं तो उसका सार यही है—अपने कषाय को शांत रखो, तुम्हें कोई दुःख नहीं होगा। महावीर के जीवन में कितने कष्ट आए पर वे कभी दुःखी नहीं बने। इसलिए कि उनका कषाय शांत था। आचार्य भिक्षु ने कितने कष्ट सहे किन्तु वे कभी दुःखी नहीं बने। क्योंकि वे इस सचाई को जानते थे—सुख और दुःख तुम्हारे भीतर है।

पथ चुनें पर कौन-सा १३१

आप भी इस सचाई को समझें—सुख-दुःख का कर्ता मैं स्वयं हूं। यदि तुम चाहो तो सुख का दरवाजा तुम्हारे लिए खुला है और तुम चाहो तो दुःख का दरवाजा भी खोल सकते हो। तुम स्वयं निर्णय करो कि तुम्हें सुखी जीवन जीना है या दुःखी जीवन? सुख और दुःख की चाबी तुम्हारे हाथ में है।

भगवान महावीर का यह वचन दिशादर्शक और उत्प्रेरक है—असंख्यं जीविय मा पमायए—जीवन का संस्कार नहीं होता इसलिए प्रमाद मत करो, जागरूक रहो। प्रतिक्षण जागरूकता का यह मंत्र जीवन को सदा सुखी बनाए रख सकता है।



महत्त्व सापेक्षता का



महत्त्व सापेक्षता का

दर्शन जगत् में दो शब्द बहुत प्रचलित हैं—सापेक्ष सत्य और निरपेक्ष सत्य। एक सत्य सापेक्ष होता है, किसी अपेक्षा से कहा गया होता है। एक सत्य निरपेक्ष होता है। कोई अपेक्षा नहीं, वास्तविक सत्य, जिसकी पश्चिमी दर्शनों और भारतीय दर्शनों ने बहुत चर्चा की है। अंग्रेजी में भी दो शब्द इसके लिए हैं—निरपेक्ष सत्य Absolute Truth और सापेक्ष सत्य Relative Truth.

मुनिजी एक घर में गये, पूछा—‘गरम पानी है? गृहस्थ ने कहा—‘हां।’ सापेक्ष है यह कथन। मुनि यह देखेगा—गरम पानी लेने योग्य है या नहीं? यदि पानी अग्नि पर रखा हुआ है तो वह नहीं ले सकेगा। यदि थोड़ा गरम हो गया तो भी वह नहीं ले सकेगा। वह गरम तो है पर अचित्त होने की दृष्टि से गरम नहीं है। उसको क्या कहेंगे? ‘शीतादेक’—यह आगम का शब्द है—पानी कच्चा है, पक्का नहीं बना।

प्रश्न होता है—क्या वह झूठ बोलता है? अपनी दृष्टि से वह ठीक कह रहा है। ठण्डा पानी था, उसको आग पर रख दिया, गरम हो गया। यह सापेक्षता है कि पानी गरम भी है और ठण्डा भी। अगर सचित्त-अचित्त की दृष्टि से विचार करें तो पानी ठण्डा है और वैसे विचार करें, अंगुली डालें तो मारवाड़ी भाषा में कहा जाएगा—न्यून्यायो है। संस्कृत भाषा में इसके लिए एक शब्द प्रयोग होता है—कवोष्णम् यानी थोड़ा गरम हो गया। यह सापेक्षता है—पानी ठण्डा भी है और गरम भी।

सापेक्ष है पर्याय का जगत्

सर्दी का मौसम है। कमरे में बैठे थे, ठंड थी। एक कपड़ा और ओढ़ने की जरूरत थी। यहां प्रवचन-सभा में ऊनी वस्त्र ओढ़कर आते हैं तो उतारना पड़ता है। इसलिए कि यहां गरम है। अब मौसम कौन-सा है? ठण्डा है या गरम? धूप में जाएं, तब मौसम गरम है और कमरे के भीतर चले जाएं, शीत हवा लगे तब ठण्डा है।

१३४ पथ चुनें पर कौन-सा

अनेकान्त का एक सिद्धान्त है—सापेक्षता। हर बात की जांच सापेक्ष दृष्टि से करो। निरपेक्ष दृष्टि बहुत कठिन बात है। निरपेक्ष क्या है? द्रव्य, जो हमारा अस्तित्व है, वह निरपेक्ष सत्य है। आत्मा है, किस अपेक्षा से? कोई अपेक्षा नहीं। मनुष्य है, किस अपेक्षा से? अभी आत्मा ने मनुष्य का शरीर धारण कर रखा है, इस अपेक्षा से वह मनुष्य है। इसका निष्कर्ष यह निकलता है कि पर्याय का जगत् सापेक्ष सत्य है और द्रव्य का जगत् निरपेक्ष सत्य। मूल अस्तित्व तो निरपेक्ष है और जितने हमारे पर्याय हैं, वे सब सापेक्ष हैं।

मेरे सामने अग्रणी साधु-साध्वियां बैठी हैं, वे अग्रणी हैं या सहवर्ती? सापेक्ष हैं—अग्रणी के रूप में विहार किया था, अगवाणी बनाया हुआ है, इसलिए तो अग्रणी हैं और यहां आते ही समर्पित कर दिया—मैं, साधु तथा पोथी-पन्ना—सब हाजिर हैं, समर्पित हैं जहां रखें वहां रहेंगे।' अब अग्रणी नहीं हैं, यहां सब समान हो गए। यह सापेक्षता है हमारी।

पूज्य कालूगणी से किसी अग्रणी संत ने कह दिया—यह संत मुझे नहीं चाहिए। कालूगणी ने कहा—'भाई! तुझे तो नहीं चाहिए, पर मुझे चाहिए। क्योंकि मेरा तो संतों के बिना काम ही नहीं चलता। आचार्य उठते हैं तो भी संत चाहिए। कहीं जाते हैं तो भी संत चाहिए और आते हैं तो भी संत। आचार्य तो अकेला कभी भाग्य से ही होता होगा। हमेशा पहरा रहता है।

गरमी का मौसम। आचार्य मघवागणी को रात को गरमी लगी। वे दयालु, कृपालु बहुत थे। सोचा—सब साधु नींद में सोए हैं, क्यों उठाऊं? स्वयं अपना बिछौना लेकर नीचे चले गए। जहां ठण्डी हवा आ रही थी, वहां जाकर सो गए। रात को साधु उठे, देखा—आचार्य मघवा कहां हैं? खोजते हैं इधर-उधर, इस प्रकार स्थिति होती है तो साधुओं को अच्छा नहीं लगता।

पूज्य कालूगणी ने कहा—मेरा तो साधुओं के बिना काम नहीं चलता। तुझे नहीं चाहिए तो मेरे पास रहेगा, आखिर कहां जाएगा?

स्वार्थ और निरपेक्षता

जहां स्वार्थ की बात होती है, वहां हम निरपेक्ष बन जाते हैं। वास्तव में विचार करें तो हमारा जीवन निरपेक्ष नहीं है, एक दूसरे से जुड़ा हुआ है और इतना जुड़ा हुआ है कि एक-दूसरे के बिना काम नहीं चलता।

इस सापेक्षता को समझने के लिए ज्ञाता-सूत्र का धनसेठ और चोर का दृष्टान्त बहुत महत्वपूर्ण है। दृष्टान्त बहुत लम्बा है पर उसका सारांश इतना है

पथ चुनें पर कौन-सा १३५

कि चोर ने श्रेष्ठी के पुत्र को गहनों के लोभ में मार डाला। उसे कारावास की सजा हुई। पुराने जमाने में बेड़ियां नहीं, खोड़ा होता था। एक खोड़े में चोर का पैर डाल दिया। कोई कारण बना, स्वयं सेठ भी किसी अपराध या भ्रम में आ गया। उसको भी कारावास की सजा मिली। उसी खोड़े में उसका पैर भी डाल दिया गया। एक ही खोड़े में दोनों—पुत्र का हंता और स्वयं। अब सेठ के घर से बहुत बढ़िया भोजन आया। सेठ खाने लगा, वह बोला—थोड़ा मुझे भी दे दो। सेठ बोला—‘मांगते शर्म नहीं आती तुझे? मेरे पुत्र की हत्या की है और भोजन मांग रहा है मुझसे? नहीं दूंगा।’ सेठ ने चोर को खाना नहीं दिया। कुछ समय पश्चात् शौच की जरूरत पड़ी। सेठ ने कहा—‘चलो।’ चोर बोला—जिसने खाया है, वह जाएगा। मैं क्यों जाऊं? व्यक्ति अकेला चल नहीं सकता। खोड़े में दोनों के पैर हैं। दोनों साथ चलें तो चल सकते हैं। बहुत मिन्नतें की, मनाया, आखिर कहा—‘देखो! अब भोजन आएगा तो आधा हिस्सा तुम्हें दे दूंगा।’ काम हो गया।

जुड़े हुए हैं एक दूसरे से

यह सापेक्षता है। यह मानकर चलें कि साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका—कोई भी है, सबका एक पैर खोड़े में है। न्यारा में विचरते हैं, चाहे यहां रहें। कोई भी साध्वी है, पैर किसमें है? खोड़े में है। अपने प्रवास स्थल से यहां आना है तो अकेली आ नहीं सकती। साधु भी अकेला कितनी देर रहेगा। विचरण नहीं कर सकता। सब इतने बंधे हुए हैं एक-दूसरे से।

इस बात का हम गहराई से अनुभव करें कि हमारा जीवन एक-दूसरे से जुड़ा हुआ है, एक-दूसरे से बंधा हुआ है। हम अकेले नहीं रह सकते, अकेले नहीं जी सकते। जब साथ में जीना है तो फिर कैसे जीना? अपने आप चिन्तन आएगा कि सापेक्षता से जीना है। यह सापेक्षता का सिद्धान्त हम न भूलें। कभी-कभी लगता है कि व्यक्ति व्यवहार में सापेक्षता को भूल जाता है। जहां-जहां सापेक्षता को भुलाया गया, वहां-वहां समस्या पैदा हुई। जहां सापेक्षता है, वहां कोई समस्या नहीं है।

सापेक्ष होता है सामुदायिक जीवन

पूज्य कालूगणी के स्वर्गवास से १०-१५ दिन पहले की बात है। मोखुंदा में मुनि मगनजी स्वामी बीमार हो गए। वे बहुत भद्र, विनीत और सेवाभावी थे। कहा जाता है कि पन्नालालजी स्वामी आहार करते, यदि कभी-कभी अपथ्य द्रव्य आ जाता तो स्वयं उठाकर खा जाते। इतना एक आत्मीय भाव और

समर्पण था। वे अस्वस्थ हो गए। उनके साथ एक साधु थे—मुनि रुघनाथजी। उन्होंने बीमार संत की सेवा नहीं की। बहुत कहा गया तो हरियाणवी लहजे में बोले—‘मैं नहीं करता किसी की सेवा।’ कालूगणी ने उस बात को सुना, अन्तःकरण में वह बात चुभ गई। कालूगणी ने अपने उत्तराधिकारी से कहा—‘देखो! उसने सेवा नहीं की है, उसको कड़ा प्रायश्चित्त देना होगा। बीमारी की अवस्था में इतना निरपेक्ष हो जाए और कहे कि किसी की सेवा नहीं करूंगा, मुझसे नहीं होती सेवा। इतनी क्रूरता, इतनी निरपेक्षता—वह शासन में रहने के योग्य नहीं है।’ आखिर वही हुआ, वे संघ में नहीं रह पाए।

निरपेक्षता सामुदायिक जीवन में कभी चल नहीं सकती, चलनी भी नहीं चाहिए। एक संत बीमार है। यदि दूसरा कहे कि अभी तो मुझे आराम करना है, स्वाध्याय करना है, ध्यान करना है। क्या यह उचित है? यह तो निरपेक्षता हो गई। उस समय तो सारी बातें गौण हो जाती हैं। केवल यही सामने रहता है कि रुग्ण संत को समाधि कैसे रहे। सहजीवन है, साथ में जीना है और सापेक्षता है तो शांति के साथ जीया जा सकेगा। साथ में जीना है और निरपेक्ष हो गए तो वस्तु सत्य बन गए, एकांत सत्य बन गए, अस्तित्व बन गए। निरपेक्ष तो तब बनोगे जब मोक्ष में जाओगे। जब तक शरीर है, तब तक तो सापेक्ष ही रहना पड़ेगा। अगर शरीर है और बिलकुल प्रायोपगमन अनशन कर लें तो मान भी लें कि निरपेक्ष है। खाता है, पीता है, सब काम करता है किन्तु जहां परस्परता का प्रश्न आता है, वहां निरपेक्षता आती है तो कभी अच्छा नहीं होता।

सापेक्ष होते हैं नियम

एक आदमी जा रहा था। पहाड़ी रास्ता था। पानी पीना था। सामने झरना आ गया, देखा—अच्छा पानी है। झरने के पास गया, वहां लिखा था—‘अभ्यागत! तुम्हारा स्वागत है, सुस्वागत है।’

गौतम स्वामी ने स्कन्दक से कहा था—सागयम् खंदया, सुसागयम् खंदया। स्कंदक! तुम्हारा स्वागत है, सुस्वागत है।’ यदि आज कोई साधु-साध्वी गृहस्थ को कह दे—‘स्वागतम्’ तो प्रश्न खड़ा हो जाएगा कि साधु को कल्पता ही नहीं है।

सापेक्षता के बिना सचाई भी समझ में नहीं आती। साधु आया, बोला—रात को सूई रह गई, प्रायश्चित्त दे? हमने कहा—एक कल्याणक। आज भिक्षु स्वामी के समय का कोई साधु होता तो वह कहता—प्रायश्चित्त गलत दे दिया।

पथ चुनें पर कौन-सा १३७

इसका प्रायश्चित्त होता ही नहीं है। कैसे दिया प्रायश्चित्त? यह प्रायश्चित्त का विषय ही नहीं है।' क्योंकि आचार्यश्री भिक्षु से ऋषिराय के समय तक रात को सूई, कैंची, चाकू सब रखते थे। जैसे आज बाजोट को रखते हैं। जितने दिन हम रहेंगे, बाजोट रहेंगे, वैसे ही उस युग में चौमासा करने जाते तब सूई, कैंची, चाकू आदि जांच लेते और जब तक रहते, तब तक साधु के पास रहते। आज तो एक रात भी रह जाए तो प्रायश्चित्त और वे चार महीना रखते तो भी प्रायश्चित्त नहीं। यह क्या है? क्या मानें इसको? अगर निरपेक्ष दृष्टि से देखें तो विकल्प आएगा—वे गलत थे या हम गलत हैं। मैंने प्रायश्चित्त दिया तो गलत हो गया या उन्होंने नहीं दिया तो गलत हो गया। पर गलती कोई नहीं है। यह सापेक्ष सत्य है। अपेक्षा यह है कि उस समय यह नियम नहीं था और आज यह नियम बना दिया गया। बहुत सारे नियम ऋषिराय और जयाचार्य के युग तक नहीं थे, आज हैं। बहुत सारे नियम आज हैं और उस समय नहीं थे।

उस समय की बात अगर बताएं तो बड़ा अजीब सा लगेगा। उस समय का साधु गोचरी जाए और गृहस्थ कहे—'महाराज! मेरा हाथ ठीक नहीं है और हाथ धोए बिना मैं रोटी देता नहीं।' साधु सोचे कि रोटी लेना तो जरूरी है और इसका हाथ ठीक नहीं है। कच्चे पानी से हाथ धोएगा तो रोटी ले नहीं सकेंगे।' साधु ने कहा—'भाई! तुम्हारे पास गरम पानी है?' गृहस्थ ने कहा—'हां! पानी तो है।'

'तो कच्चे से मत धोना।' साधु ने फिर देखा—गरम से धोएगा तो पानी नाली में जाएगा, फिर भिक्षा नहीं ले सकेंगे। साधु उसे कहता—'तुम्हें हाथ धोना है तो लो मेरा पात्र और इसमें हाथ धो लो।' यह कहकर साधु अपने पात्र में हाथ धुला देता। साधु नीचे जाकर वह पानी परठ कर पात्र पोंछ लेता और फिर उससे भिक्षा ले लेता। यदि आज ऐसा करे तो साधु बाद में आएगा उसकी शिकायतें पहले आ जाएंगी कि महाराज ने क्या कर दिया? इतनी बातें हैं कि उस समय में होती थीं, आज नहीं होती। हमें हर बात को सापेक्ष-दृष्टि से समझना है। यदि सापेक्ष-दृष्टि को जानते नहीं हैं और किसी बात को पकड़ लेते हैं, यह समुचित नहीं है। पूज्य गुरुदेव ने जो परिवर्तन किए, किस प्रकार किए, क्यों किए? आज उनकी कितनी उपयोगिता बढ़ गई है।

वह बनता है आदर्श

अगली पंक्ति थी—'तुम आदर्श मुझे मानो।' प्रश्न हो सकता है—'क्यों मानूं? कारण क्या है? इसका उत्तर भी उसी पद्य में था—

'निर्मल हूं, गतिशील सदा हूं उपयोगी हूं, पहचानो।'

१३८ पथ चुनें पर कौन-सा

पहली बात—मैं निर्मल हूँ, बिलकुल स्वच्छ। व्यक्ति बाहरी दुनिया में आता है तो मलिनता आती है। अपनी आत्मा में रहता है तो निर्मलता रहती है।

दूसरी बात—गतिशील हूँ। हम ध्यान दें कि गतिशील है, तब तक आदर्श रहता है। कहीं जाकर जम जाता है, स्थितिशील बनता है तब आदर्श नहीं रहता। हमारी गतिशीलता बनी रहे। हम चलते रहें, चलते रहें। कहीं भी रुकें नहीं, थमें नहीं। जो अपना लक्ष्य है, उस लक्ष्य की दिशा में निरन्तर आगे बढ़ते रहें।

तीसरी बात—मैं उपयोगी हूँ। दूसरों के काम आता हूँ इसलिए मैं आदर्श हूँ।

तीन बातें जिस व्यक्ति में होती हैं—निर्मलता, गतिशीलता और उपयोगिता—वह सचमुच आदर्श बनता है।

सापेक्षता और उपयोगिता

प्रत्येक व्यक्ति आत्मालोचन करे कि मैं दूसरों के लिए उपयोगी हूँ या नहीं? उपयोगिता सापेक्षता है। मैं दूसरों के सापेक्ष हूँ। साधु बन गए, अब क्यों विहार करो? क्यों असम जाओ, बंगाल जाओ, चेन्नई जाओ? क्यों बैंगलोर जाओ? बस एक जगह आश्रम बना लो, बैठ जाओ, साधना करो। इतना निरपेक्ष बन जाए तो 'तिन्नाणं तारयाणं' तो होता ही नहीं है। हम सापेक्ष हैं। साधु भी समाज सापेक्ष है। स्थानांग सूत्र में बतलाया—साधु के लिए छह आश्रय स्थान हैं। कोई साधु कहता है—हमने तो साधु-जीवन स्वीकार कर लिया और नौ कोटि हिंसा का प्रत्याख्यान कर लिया। अब मुझे क्या अपेक्षा है? अगर सापेक्ष नहीं हो तो गुफा में जाकर अनशन कर दो। गृहस्थ पकाता है और वह अपना हिस्सा दान देता है, तब काम चलता है। निरपेक्ष होकर रहो तो क्या होगा? राज्य सापेक्ष हैं। पुराने जमाने में तो राजा कुपित हो जाते तो सबको देश से निकाल देते। दक्षिण भारत में राजा कुपित हो गया। एक साथ सात हजार जैन मुनियों को मरवाया था और न जाने कितने श्रावकों की हत्या हो गई। जैन धर्म को बहुत हानि पहुंचाई। बड़ा ध्यान रखना पड़ता है कि ऐसी कोई स्थिति न हो, जिससे राजा कुपित हो जाए, धर्म की साधना में बाधा आ जाए।

संघ सापेक्ष या व्यक्ति सापेक्ष

आज इस सापेक्षता के कारण तेरापंथ की उपयोगिता बढ़ी है। आज अगर

पथ चुनें पर कौन-सा १३६

अणुव्रत का कार्यक्रम नहीं होता, प्रेक्षाध्यान और जीवन-विज्ञान का कार्यक्रम नहीं होता और हमारे साधु-साध्वियां अच्छे वक्ता, अच्छा कार्य करने वाले नहीं होते तो शायद उपयोगिता नहीं होती और न इतने लोगों का समागम होता। एक उपयोगिता है, यह सापेक्षता है।

साधु का जीवन सह-जीवन है। तीन साधु साथ में रहते हैं और जीवन जीते हैं। चार-पांच साध्वियां रहती हैं। वे सापेक्ष हैं या निरपेक्ष? सापेक्ष हैं और पूरे संघ से सापेक्ष हैं।

दक्षिण भारत की यात्रा में मुनि जसकरणजी स्वामी का सिंघाड़ा गुरुदेव के साथ था। शाम के समय एक गांव की ओर जा रहे थे। जसकरणजी स्वामी का शरीर काफी भारी था। अकस्मात् ऐसी स्थिति बन गई कि एक कदम भी नहीं चल पा रहे थे। सहवर्ती मुनि मिलापचंदजी अकेले क्या करें? हम लोग आगे थे, पीछे से संवाद आया—मुनि जसकरणजी स्वामी की यह स्थिति बन गई। गुरुदेव ने पूछा—‘बोलो! क्या करें अब? बड़ा कठिन काम है। उनको झोली में उठाकर लाएं तो झोली फट जाएगी। कोई कपड़ा भी नहीं होगा इतना मजबूत। इतने भारी हैं कि पांच-सात संत मिलकर भी उन्हें उठा नहीं सकते, लाने का कोई विकल्प नहीं है और जंगल में कैसे रखें? गांव में तो लाना होगा। फिर सुझाव आया—दो-तीन साइकिलें जांचकर, उन पर बैठा कर कैसे ही लाया जाए। साधन के प्रयोग का पहला चरण था वह। दो साइकिलें जांच ली, उनमें सावधानी से बिठा कर ले जाया गया।

हम संघ सापेक्ष हैं या व्यक्ति सापेक्ष? साथ में रहते हैं, उपयोगिता है पर पूरे संघ की सापेक्षता है। आज कहीं भी कोई बीमार हो गया, तो आखिर चिन्ता कौन करता है? संघ करता है। आचार्य का दायित्व है, उन्हें सारी व्यवस्था करनी होती है। इसलिए सापेक्षता की बात को न भूलें। कभी भी परस्पर में इस प्रकार का चिन्तन या वाणी का प्रयोग न हो कि तुम क्या लगते हो? तुम्हारी कोई अपेक्षा नहीं है। ऐसी भाषा स्वप्न में भी नहीं सोचनी चाहिए। क्योंकि जीवन इतना जुड़ा हुआ है कि हम सापेक्षता को छोड़कर शांति के साथ जी नहीं सकते।

निर्मलता, गतिशीलता और उपयोगिता

जिस व्यक्ति को आदर्श बनना है, वह व्यवहार-बोध की भाषा में तीन तत्त्व अपनाए—

१४० पथ चुनें पर कौन-सा

निर्मलता—अपने जीवन की निर्मलता, पवित्रता, स्वच्छता चाहिए।
जीवन शुद्ध रहना चाहिए।

‘गतिशीलता—गतिशील का मतलब कोरा पैरों से चलना ही नहीं है। हर कार्य में गति हो, स्थिति नहीं। व्यक्ति सोचे—धर्मास्तिकाय हूं, अधर्मास्तिकाय नहीं। गतिशीलता का मतलब है सक्रियता। निष्क्रिय मत बनो।

तीसरी बात है—उपयोगिता। प्रत्येक व्यक्ति अपने आपसे से पूछे कि मेरी कोई उपयोगिता है या नहीं? मेरे सामने दीर्घतपस्विनी साध्वी पन्नाजी बैठी हैं। नब्बे बरस की अवस्था में इतनी सक्रियता है। उपयोगिता बनी हुई है। ये तो अग्रणी हैं, सम्माननीया हैं। इनका बड़ा सम्मान है लोक-मानस में भी। इतनी प्रतिष्ठा है, पर अगर पन्नाजी को आज भी किसी के साथ भेजें तो कोई मनाही नहीं करेगा। कहेगा, मेरे साथ भेजो, मेरे साथ भेजो। उपयोगिता की बात कह रहा हूं। इसका अर्थ है—जिस व्यक्ति की उपयोगिता है, उसे हर कोई ले जाना चाहेगा। मान लो, एक व्यक्ति वृद्ध है, चल-फिर कर ज्यादा काम नहीं कर सकता, वह कहे—‘भाई! मैं घूम फिर नहीं सकता। बैठा काम मुझे दे दो, सारा कर लूंगा। उपयोगिता है उसकी। जिस रूप में काम कर सकें, सेवा कर सकें, वह अपनी उपयोगिता है। सेवा से बढ़कर कोई उपयोगिता नहीं होती। दूसरे के मन को जीतने का सबसे बड़ा वशीकरण मंत्र है सेवा और सहयोग।

हम सब इस बात का चिन्तन करें कि उपयोगिता बनी रहे। खड़े होकर काम कर सकें तो खड़े होकर करें। बैठकर कर सकें तो बैठ कर करें। चलकर कर सकें तो चलकर करें। पर अपने आपको अनुपयोगी न बनाएं। दूसरों को लगता रहे कि इसकी उपयोगिता है, सार्थकता है। हम वह पोस्ट-कार्ड न बनें, जो लिखने के बाद कोई काम का नहीं रहता, नित नया पर्याय हमारा बनता रहे।

यदि साथ में जीना है तो सापेक्षता के महामंत्र को कभी नहीं भूलें। व्यक्ति की बात छोड़ दो। कोई भी चीज निरपेक्ष नहीं है।

दक्षिणा दें अहंकार की

गुरु ने शिष्य से कहा—‘तुम्हारा अध्ययन हो गया। अब तुम दक्षिणा दो और जाओ पर ध्यान रखना—दक्षिणा में ऐसी चीज देना, जिसकी कोई उपयोगिता न हो।’

पथ चुनें पर कौन-सा १४१

उसने कहा—ठीक है। सामने मिट्टी पड़ी थी, सोचा—मिट्टी का कोई उपयोग नहीं है। फिर सोचा, मिट्टी का तो बड़ा उपयोग है। एक-एक चीज पर ध्यान दिया—जो अनुपयोगी लग रही थी, सबका उपयोग सामने आ गया। मिट्टी का उपयोग, पानी का उपयोग, वृक्ष का उपयोग, लता का उपयोग, कंकड़ का उपयोग, ढेले का उपयोग—सबका उपयोग है। हर वस्तु की मीमांसा की, उपयोग की दृष्टि से विचार किया तो लगा कि सब उपयोगी हैं। निकम्मी कोई चीज नहीं है। सोचा—क्या करूं? दक्षिणा में क्या दूं? सोचते-सोचते गुरु के पास पहुंचा और समाधान मिल गया।

बोला—‘गुरुदेव! मेरी दक्षिणा स्वीकार करो।’

‘क्या लाए हो?’

‘जो चीज दिखाई नहीं देती, वह लाया हूं।’

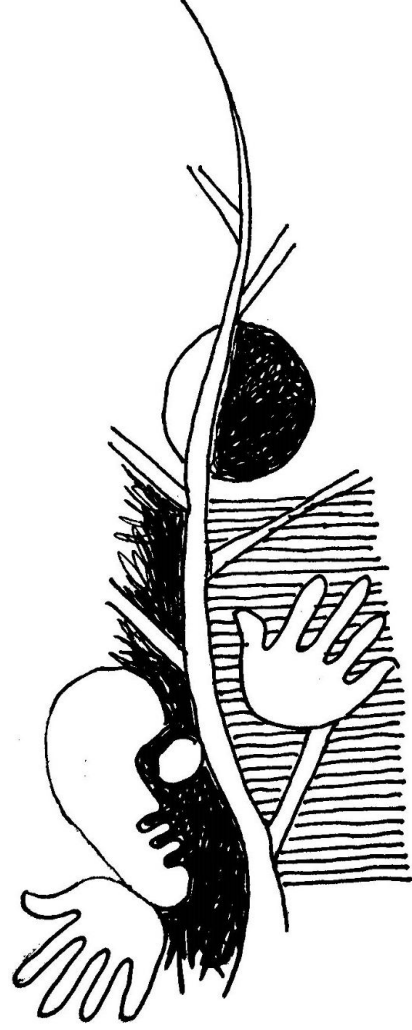
‘याद है मेरी शर्त?’

‘हां! मुझे याद है। आपने कहा था कि जिसका कोई उपयोग न हो, उसकी मुझे दक्षिणा दे देना। मैंने ध्यान दिया, सब वस्तुओं का प्रतिलेखन किया, मुझे लगा—हर वस्तु का उपयोग है, पर एक वस्तु ऐसी है जिसका कोई उपयोग नहीं है।’

‘शिष्य! क्या है वह?’

‘अहंकार ऐसा तत्त्व है, जिसका कोई उपयोग नहीं है। वह मैं आपको दक्षिणा में दे रहा हूं।’

पात्र का उपयोग, पुस्तक का उपयोग, पेन्सिल का उपयोग—सब उपयोगी हैं। यदि दक्षिणा देनी हो तो अहंकार को दक्षिणा में दे दो। उसका कोई उपयोग नहीं है। जो अनुपयोगी है, उसको बाहर कर दें तो हमारा सामुदायिक जीवन बड़े सुख और शांति के साथ बीतेगा और काम करने की हमारी क्षमता बढ़ जाएगी।



कौन-सा पथ चुनेंगे आप ?



कौन-सा पथ चुनेंगे आप?

भगवान महावीर का एक संदेश बहुत महत्वपूर्ण है—अप्पणा सच्चमेसेज्जा—स्वयं सत्य की खोज करो। खोज समस्या के समाधान का पथ है। जो व्यक्ति कभी खोज नहीं करता, उसकी समस्या सुलझती नहीं है। जीवन में कितनी कठिनाइयां आती हैं, उलझनें आती हैं, बाधा-विघ्न आते हैं। वे इसलिए टिक जाते हैं कि उनके समाधान की खोज नहीं होती। अगर बराबर खोज चले तो समाधान हो सकता है।

खोज दो कारणों की करें—उपादान कारण और निमित्त कारण। दुःख या समस्या का उपादान क्या है? सुख का उपादान क्या है? इनका निमित्त क्या है?

इसको बहुत सरलता से समझें। घड़ा बनता है मिट्टी से। मिट्टी घड़े का उपादान कारण है, मूल कारण है और चाक, डंडा, रस्सी—ये सब घड़े के निमित्त कारण हैं। जो बाहर का कारण है वह निमित्त कारण है और जो मूल कारण होता है वह उपादान कारण है।

अच्छा माना जाता है सरस जीवन

सुख का उपादान क्या है? निमित्त क्या है? दुःख का मूल कारण क्या है? निमित्त क्या है? इस पर बहुत चिन्तन किया तो चिन्तन के बाद एक निष्कर्ष निकाला। वह निष्कर्ष अध्यात्म के आचार्यों ने भी निकाला और काव्यशास्त्र के आचार्यों ने भी निकाला। काव्य और साहित्य जीवन में सरसता लाने वाले हैं, सरसता से कोई बात समझाने वाले हैं। वह बात, जो रूखे शब्दों में नीरस भाव में कही जाती है, गले नहीं उतरती। वही बात सरसता के साथ कही जाती है तो हृदयंगम हो जाती है, मनुष्य उसको अपना लेता है। सरसता और नीरसता से बहुत अंतर आ जाता है। जब रस सहित बात होती है तो हर कोई समझ लेता है। जिसमें रस सूख गया, उसे कोई पसंद नहीं करता। सबको रसवत्ता चाहिए, सरसता चाहिए।

१४४ पथ चुनें पर कौन-सा

काव्यशास्त्र में नौ रस माने गए हैं, कुछ दस भी मानते हैं। शृंगार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शांत—ये नौ रस हैं।

**शृंगारहास्यकरुणारौद्रवीरभयानकाः
बीभत्साद्भुतशांताश्च रसाः।**

ये सब मनुष्य में रस पैदा करते हैं, भाव पैदा करते हैं। सरस जीवन अच्छा माना जाता है। नीरस जीवन अच्छा नहीं होता।

पहला रस बतलाया गया—शृंगार। इसका सम्बन्ध है काम-वासना से। अंतिम रस बतलाया गया—शांत रस। इसका अध्यात्म से सम्बन्ध है, धर्म से सम्बन्ध है, वासना नियंत्रण से सम्बन्ध है।

प्रधान है शांत रस

प्रश्न आया—ये जो नौ रस हैं इनमें कौनसा रस प्रधान है? हम एक बार भीलवाड़ा में थे। प्रसिद्ध नृत्यांगना यामिनी कृष्णमूर्ति आईं। उनके पिता जे. कृष्णमूर्ति का तेरापंथ धर्मसंघ से बहुत सम्बन्ध रहा। वे लम्बे समय तक हमारे साथ रहे। उन्होंने मेरी एक पुस्तक 'विजय यात्रा' का अंग्रेजी अनुवाद भी किया। वह 'मार्च टू विक्ट्री' नाम से प्रकाशित है। अंग्रेजी पर अच्छा अधिकार था। वर्षों तक बराबर संपर्क रहा। उस समय यामिनी कृष्णमूर्ति छोटी थी। उसने नृत्य के क्षेत्र में दक्षता प्राप्त की। भीलवाड़ा में यामिनी कृष्णमूर्ति ने एक श्लोक हमारे सामने पढ़ा, जिसमें सभी रसों का प्रदर्शन था। एक के बाद एक रस इस प्रकार बदलते चले जाते हैं कि देखने वाले को भी पता लगता है—रस क्या होता है और किस प्रकार वह जाग्रत् होता है? हमने सब रसों को देखा। अंतिम आया शांत रस। वहां आते-आते मुद्रा बिल्कुल शांत हो गई।

काव्य और नाट्यशास्त्र के आचार्यों ने इन सब प्रयोगों के बाद एक निष्कर्ष निकाला और उनका निष्कर्ष यह रहा—शांत रस सबमें प्रधान है।

निमित्त से पैदा होते हैं रस

प्रश्न हो सकता है—हम कैसे मानें कि शांत रस सबमें प्रधान है? यदि आपसे पूछा जाए—आप २४ घंटा में शांति में ज्यादा रहते हैं या गुस्से में? क्या उत्तर होगा? व्यक्ति को दिन में दो-चार बार गुस्सा आता होगा। कुछ व्यक्तियों को दस-बीस बार आ जाता होगा। अगर आदमी २४ घंटा गुस्सा करे तो उसकी हालत क्या होगी? क्या वह पागल नहीं बन जाएगा? इस बात

पथ चुनें पर कौन-सा १४५

को हम समझ सकते हैं कि आदमी गुस्से में कम समय रहता है, शांति में ज्यादा समय रहता है।

शृंगार रस को लें। कोई भी व्यक्ति काम-वासना के विचारों में ज्यादा रहता है या शांति में? कोई निमित्त मिला, वासना जागी। निमित्त हटा और फिर शांति में चला गया। निमित्त मिला, क्रोध आया। निमित्त हटा, फिर शांति में चला गया।

कोई आदमी हंसता है तो क्या चौबीस घंटा हंसता है? बच्चे भी हंसते हैं पर २४ घंटा तो नहीं हंसते। कभी-कभी निमित्त मिलता है तो हंसी आ जाती है। निमित्त हटा, फिर शांति।

सारे रस निमित्त के आधार पर होते हैं इसीलिए काव्यशास्त्र के आचार्यों ने बहुत सुन्दर लिखा—**स्व स्व निमित्तमासाद्य**—अपने अपने निमित्तों से रस पैदा होते हैं। निमित्त समाप्त और वह रस समाप्त। शेष क्या बचता है? शांत रस। केवल शम, उपशम, शांत रस बचता है और सब समाप्त हो जाते हैं।

कैसा होता है शांत रस?

प्रश्न आया—शांत रस कैसा होता है? हम शम, उपशम, शांति किसको मानें? उसकी परिभाषा क्या है? बतलाया गया—

न यत्र दुःखं न सुखं चकास्ति,
न द्वेषरागौ न च काचिदिच्छा।
रसः स शांतः कथितो मुनीन्द्रैः,
सर्वेषु भावेषु शमः प्रधानः॥

न यत्र दुःखम्—जिस भावना में कोई दुःख नहीं है, उसका नाम है शांति। उपशम भाव में कोई दुःख नहीं होता।

प्रश्न हुआ—जोड़ा है दुःख-सुख का। दुःख नहीं है तो क्या सुख है? कहा गया—नहीं, सुख भी नहीं है।

इस बात को समझने में जरा कठिनाई होगी कि जहां दुःख भी नहीं है, सुख भी नहीं है तो फिर क्या है? जहां सुख है वहां दुःख अवश्य आएगा और जहां दुःख है वहां सुख अवश्य आएगा। दोनों साथ-साथ चलते हैं। कभी दुःख तो कभी सुख, कभी सुख तो कभी दुःख। कभी रात तो कभी दिन, कभी दिन तो कभी रात। दोनों को अलग नहीं किया जा सकता।

१४६ पथ चुनें पर कौन-सा

निरन्तर घूमता है सुख-दुःख का चक्का

एक सेठ दूसरी मंजिल पर झरोखे में बैठा था। नौकर कांच की गिलास में पानी भरकर पिलाने आया। सेठ ने गिलास को हाथ में लिया, पीना चाहा। संयोग ऐसा बना कि गिलास नीचे गिर गया। नौकर दौड़ा, नीचे आया, आश्चर्य में रह गया कि गिलास फूटा नहीं है, सही-सलामत है। तत्काल ऊपर आया, बोला—‘सेठ साहब! आप जैसा भाग्यशाली आदमी कौन होगा? हम यह कल्पना ही नहीं कर सकते कि इतने ऊपर से कांच का गिलास गिरे और फूटे नहीं। सचमुच आप बड़े भाग्यशाली हैं और ऐसा भाग्य हमने किसी का नहीं देखा।’ खूब प्रशंसा की। नौकर प्रशंसा कर रहा था, सब लोग राजी हो रहे थे किन्तु सेठ उदास हो रहा था। सेठ बहुत समझदार था। सब लोगों ने कहा—‘यह खुश होने का समय है, खुशी मनाने का क्षण है। आश्चर्य घटित हुआ है। आप उदास क्यों हैं?’

सेठ बोला—‘बस अब शिखर आ गया, अंतिम क्षण आ गया। अब आगे अवकाश नहीं है।’

सचमुच वही हुआ। देखते-देखते कुछ ही महीनों में चक्का उलटा घूम गया। जहां करोड़ों की सम्पदा थी, वहां खाने के लाले पड़ने लगे। चारों तरफ घाटा ही घाटा लगा। एक दिन ऐसी स्थिति बनी कि खाने को घर में कुछ भी नहीं रहा। पास में भी कुछ नहीं है और हाथ भी पसारा नहीं जा सकता।

भारतीय चिन्तन परम्परा में मांगना सबसे ज्यादा लज्जा का काम रहा है। आदमी भूखा रह जाता है पर हाथ नहीं पसारता। इसीलिए याचना को मुनि के लिए एक परीषह बतलाया गया है। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया—**पाणि नो सुपसारण**—किसी के सामने हाथ फैलाना सरल काम नहीं है। **दातृयाचकयोर्भेदः कराभ्यामेव सूचितः**—हाथ बता देते हैं कि कौन हाथ फैला कर लेने वाला है और कौन देने वाला। हाथ की मुद्रा बता देती है कि अमुक देने वाला है और अमुक लेने वाला। बड़ा कठिन काम है हाथ फैलाना।

सेठ प्रतिष्ठित आदमी था, मन में संकोच था कि कैसे हाथ फैलाए? स्थिति यह बनी कि खाने को अन्न भी नहीं बचा। सेठ ने अपनी पत्नी से कहा—आज हम भूखे रह जाएंगे। यह थोड़ा-सा आटा बचा है, इससे कुछ रोटियां बना दो और बच्चों को खिला दो। रोटी बनाई, बच्चों को खिलाने की तैयारी की। अकस्मात् कुत्ता आया और सब रोटियों को उठाकर ले गया।

पथ चुनें पर कौन-सा १४७

सेठानी रोने लग गई, आंखों से आंसू बरसने लगे। बोली—कैसी स्थिति आई है? कभी इतनी भारी सम्पदा थी, आज बच्चे तड़प रहे हैं, भूख से अकुला रहे हैं। उनके लिए रोटियां बनाई और वे भी नहीं बची।

सेठ हंसा, बड़ा खुश हुआ। पत्नी बोली—तुम्हारे जैसा आदमी मैंने नहीं देखा। इस दुःख के समय में भी तुम्हें हंसी आती है। बड़ी पीड़ा होती है। उसने दो, चार कटु बातें कह डाली। सेठ हंसता रहा। वह बोली—हंसी किस बात की है?

सेठ बोला—‘चिन्ता मत करो। अब चक्का घूम रहा है। क्योंकि शिखर आ गया। जब आदमी शिखर पर चला जाता है, तब आगे कोई रास्ता नहीं होता। फिर या तो उतरो या इधर-उधर जाओ और कोई रास्ता नहीं होता, अब शिखर आ गया, चिन्ता मत करो।’

थोड़ा समय बीता और चक्का पुनः घूमा। सेठ पुनः सम्पन्न बन गया। कालिदास ने जैसे लिखा है—नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण—गाड़ी का चक्का जो ऊपर होता है, वह नीचे आता है और जो नीचे होता है, वह ऊपर आ जाता है। इस चक्र-नेमि के क्रम से मनुष्य की अवस्थाएं भी बदलती रहती हैं। कभी कोई अवस्था नीचे रहती है कोई ऊपर आ जाती है। कभी सुख नीचे रहता है, दुःख ऊपर आ जाता है और कभी दुःख नीचे रहता है, सुख ऊपर आ जाता है। सुख-दुःख का चक्का निरन्तर घूमता रहता है।

सुख-दुःख से परे

आप यह न मानें कि सुख अलग होता है, दुःख अलग होता है। एक जोड़ा है—दुःख के बाद सुख और सुख के बाद दुःख इसीलिए बहुत चिन्तन पूर्वक काव्य-शास्त्र के आचार्य ने लिखा—न यत्र दुःखं न सुखं—शांत रस में न सुख होता है और न दुःख—दोनों नहीं होते। यह जिज्ञासा स्वाभाविक है कि दुःख नहीं होता, यह बात तो ठीक है पर सुख भी नहीं होता। यह कैसे?

कहा गया—जो जोड़े का सुख है यानी दुःख और सुख का जोड़ा है वह सुख नहीं होता। केवल आत्मानुभूति, अपना अनुभव होता है। वहां कोई सुख-दुःख नहीं है, सुख से परे की वस्तु है। हम लोग सुख को जानते हैं, दुःख को जानते हैं। किन्तु जो सुख-दुःख से परे हमारी चेतना की अवस्था है उसको हम नहीं जानते। वह अवस्था है सुखातीत और दुःखातीत। सुख का अर्थ है अनुकूल संवेदन और दुःख का अर्थ है प्रतिकूल संवेदन। एक आदमी ने आकर

१४८ पथ चुनें पर कौन-सा

कहा—आप बहुत समझदार हैं। बड़े अच्छे हैं। यह सुनकर अनुकूल संवेदन हुआ, सुख हो गया। दूसरा व्यक्ति आया, बोला—आप तो मूर्ख हैं। तत्काल दुःख हो गया। मनचाहा खाने को मिला, सुख हो गया और मनचाहा नहीं मिला तो दुःख हो गया। यह सुख-दुःख का जोड़ा है। अध्यात्म के आचार्यों ने उस सुख को भी वास्तव में दुःख ही बतलाया। शांत रस में, उपशम में, मन की शांति में न सुख का संवेदन होता है और न दुःख का संवेदन।

प्रियता अप्रियता से परे

न द्वेषरागौ—न कोई द्वेष, न कोई राग। द्वेष का मतलब है अप्रीति। उसके लिए न कुछ अप्रिय होता है और न कुछ प्रिय। प्रिय और अप्रिय—दोनों से परे। इस अवस्था का होना बहुत कठिन है। एक वस्तु सामने आती है, प्रियता का भाव जाग जाता है। एक वस्तु सामने आती है, अप्रियता का भाव जागता है। प्रियता और अप्रियता—दोनों से ऊपर उठ जाना शांति है। बहुत लोग कहते हैं—मन की शांति नहीं है। उन लोगों को चिन्तन करना चाहिए कि राग-द्वेष कितना है? राग-द्वेष प्रबल है या दुर्बल है? अगर राग और द्वेष शांत है तो मन की अशांति कभी नहीं होगी। न बेचैनी होगी, न उदासी होगी, न डिप्रेशन होगा। आजकल बड़ी बीमारी है डिप्रेशन की। मैंने ऐसे लोगों को देखा, जो बहुत होशियार, बड़े दक्ष और प्रबुद्ध व्यक्ति किन्तु डिप्रेशन में आ गए, अर्ध-विक्षिप्त जैसे हो गए। ये सारी मन की दशाएं होती हैं। किन्तु जब आदमी प्रियता अप्रियता—इन दोनों से ऊपर उठ जाता है तब मन की शांति होती है। वहां कोई समस्या नहीं होती।

अंतहीन इच्छाएं

न च काचिदिच्छा—उपशम में एक अवस्था बनती है, इच्छा समाप्त हो जाती है। किसी बात की इच्छा नहीं होती। बड़ा कठिन काम है इच्छा का न होना।

एक व्यक्ति ने सुना—जंगल में एक तपस्वी साधु रहता है, वह बहुत चमत्कारी व्यक्ति है। जहां चमत्कार की बात आती है, वहां किसका मन नहीं ललचाता। हर किसी का मन ललचा जाता है। तप तपना कम लोग चाहते हैं, चमत्कार से सीधा लाभ उठाना बहुत लोग चाहते हैं। तपस्या करना नहीं चाहते, खपना नहीं चाहते। वे चाहते हैं कि सब कुछ सीधा मिल जाए। रसोई बनाने की जरूरत नहीं, सीधी रोटी मिल जाए, सब काम सीधा हो जाए।

पथ चुनें पर कौन-सा १४६

वर्तमान युग में यह सोच व्यापक बन रही है कि कुछ करना न पड़े और बहुत कुछ मिल जाए। कहा जा रहा है कि २१वीं शताब्दी में ऐसे मकान बन जाएंगे जहां आदमी को दरवाजा खोलना नहीं पड़ेगा। व्यक्ति पास में गया, दरवाजा अपने आप खुल जाएगा। कक्ष में पैर रखा, बिजली अपने आप जल जाएगी, पंखा अपने आप चलने लग जाएगा। कुछ भी करना नहीं पड़ेगा। खाना बनाना है तो किसी महिला को चूल्हा अथवा सिगड़ी जलाने की जरूरत नहीं। रोबोट (यंत्र मानव) को आदेश दो, वह आपकी रसोई बना देगा, टेबल पर खाना रख देगा, परोस देगा। वह सारी सफाई कर देगा। सब काम कर देगा। आदमी को कुछ भी करने की जरूरत नहीं। आपको खाना तो पड़ेगा, पचाना भी पड़ेगा, इतना-सा काम आपका होगा। अगर रोबोट पचाने लग जाए तो आदमी इतना खाए कि अंत ही नहीं आए। कहा जाता है—रोम का एक बादशाह खाने का बहुत लोलुप था। वह मोरपंख पास में रखता था। खाना खाया, मोरपंख मुंह में डाला और उल्टी कर दी। फिर खाता फिर वमन कर देता। दिनभर खाता रहता और वमन करता रहता।

यदि पचाना भी कोई यंत्र शुरू कर दे तो शायद आदमी भी फिर राक्षस बन जाए। विश्व में अभी भी भूख की समस्या है, भोजन की कमी है फिर पता नहीं क्या हो जाएगा। कहा नहीं जा सकता।

जहां प्रियता, अप्रियता और अंतहीन इच्छाएं होती हैं वहां यह स्थिति पैदा होती है। जहां शांत रस जाग्रत् होता है, वहां इच्छा अपने आप संयत हो जाती है।

सबसे बड़ा धनी कौन ?

बहुत कुछ पाने की आकांक्षा के साथ वह व्यक्ति संन्यासी के चरणों में पहुंचा। नमस्कार किया, गिड़गिड़ाता हुआ बोला—महात्मन्! मैं गरीब आदमी हूं मेरे पास खाने को रोटी नहीं है। आप मुझे कुछ दें।

तपस्वी बोला—मैं स्वयं संन्यासी हूं। मेरे पास कुछ भी नहीं है। मैं क्या दूं?

गरीब आदमी ने बहुत आग्रह किया—‘आपके पास सब कुछ है। आपको देना पड़ेगा।’

तपस्वी—‘देखो, सामने नदी के तट पर एक पत्थर चमक रहा है। वह पत्थर तुम ले आओ।’

१५० पथ चुनें पर कौन-सा

‘पत्थर का क्या करूं? मैं धन के लिए आया हूं, मुझे पत्थर नहीं चाहिए।’
‘भाई! वह पत्थर नहीं है, पारसमणि है। उसका स्पर्श करते ही लोहा सोना बन जाएगा।’

पारसमणि का नाम सुनते ही व्यक्ति का मन ललचा जाता है। लोहा सोना बन जाए तो फिर क्या चाहिए? हिन्दुस्तान की सारी गरीबी मिट जाए, अभाव मिट जाए। पारसमणि का नाम आते ही ज्ञान-तंतु झनझना उठते हैं।

उस भाई का मन पारस पत्थर को पाकर खुश हो गया। सोचा—मैं निहाल हो गया। वह साधु को नमस्कार कर अपने घर की ओर बढ़ा। वह आधा-एक किलोमीटर चला होगा। मन में एक विकल्प उठा—तपस्वी ने मुझे ठग लिया।

वह वापस आया, नमस्कार किया और वह पत्थर संन्यासी के सामने रख दिया। तपस्वी बोला—‘वापस क्यों आया?’

‘आपने मुझे ठग लिया।’

‘भाई! मैंने कहाँ ठगा? तुमने धन मांगा और मैंने तुम्हें धन दिया है। वह दुनिया में सबसे बड़ा धनी होता है, जिसके पास पारसमणि है। उसके कोई कमी नहीं रहती फिर कैसे ठग लिया?’

‘नहीं, नहीं आपने मुझे ठग लिया?’

‘अरे! कैसे ठगा?’

‘मुझे यह नहीं चाहिए।’

‘तो फिर क्या चाहिए?’

‘मुझे तो वह दो, जिसे पाकर आपने इस पत्थर को फेंक दिया।’

‘जिस धन को पाकर आपने पारसमणि को फेंक दिया था वह धन लेना चाहता हूं। अगर यह सबसे बड़ा धन होता तो आप इसको क्यों फेंकते?’

उसकी सारी चेतना बदल गई। तपस्वी ने कहा—‘पारस पत्थर को फेंको। आओ, मेरे पास बैठ जाओ।’

अंतर है चाह-मुक्त और चाह-युक्त चेतना में

जब चाह मिटती है, सारी दुनिया बदल जाती है, सारे दृश्य बदल जाते हैं। जब तक चाह है तब तक इसका मूल्य ज्यादा है—‘यह ज्यादा अच्छी है—यह गहना अच्छा है, यह साड़ी अच्छी—इस सोच का अंत ही नहीं आएगा। एक

पथ चुनें पर कौन-सा १५१

के बाद एक वस्तु बढ़िया लगेगी और आदमी मूर्च्छा में बना रहेगा। जब मन में चाह नहीं होती तब सोना और मिट्टी में कोई अंतर नहीं रहता। बहुत बड़ा अंतर है चाह-युक्त चेतना में और चाह-मुक्त चेतना में। जहां चाह है वहां समस्याएं पैदा होती हैं। बहुत बड़ी बात है इच्छा से मुक्त हो जाना, चाह से मुक्त होना। आदमी खाएगा, पीएगा, सब कुछ काम करेगा—यह एक बात है और निरन्तर चाह का बना रहना बिल्कुल दूसरी बात है। मन में चाह बनी रहती है कि आज वह चीज मिले। आज वह भोजन मिले। आज यह वस्तु मिले। यह इच्छा ही हमारे सिर का भार बनती रहती है। इसका अनुभव वही कर सकता है, जिसने इस सचाई को समझा है—वस्तु का उपयोग करना है पर इच्छा-मुक्त जीवन जीना है। इसीलिए कहा गया—**रस सः शांतः कथितो मुनीन्द्रैः**—जहां कोई इच्छा नहीं है, उसका नाम है शांत रस और वह सब भावों में प्रधान है।

नौ रस होते हैं और नौ उनके स्थायी भाव। सात्त्विक, संचारी आदि भावों की संख्या तो बहुत लम्बी है। इन सब भावों में प्रधान है शम रस। शम का मतलब है शांति। वह शांत रस सब रसों में प्रधान है।

हम सभी चाहते हैं—जीवन में शांति रहे, मन में शांति रहे। पर शांति की शर्त क्या है? आज के संसार में सबसे ज्यादा खोज है तो शांति की खोज है। जिनके पास धन नहीं है, उन लोगों को धन की खोज है किन्तु जिनके पास धन बहुत हो गया, उनको शांति की खोज है। एक गरीब आदमी का लक्ष्य क्या है? धन मिले। और जो धन के शिखर पर पहुंच गया, उसका लक्ष्य क्या है? शांति मिले।

शांति के लिए यह नियम निश्चित समझ लें—जहां राग, द्वेष नहीं है, जहां सुख और दुःख नहीं है यानी अनुकूल और प्रतिकूल संवेदन नहीं है और जहां इच्छा नहीं है वहां शांति मिलेगी। जहां इच्छा प्रबल, जहां राग-द्वेष प्रबल, जहां प्रियता व अप्रियता का संवेदन प्रबल वहां कभी शांति हो नहीं सकती, चाहे कितना ही ट्रेंकेलाइजर का प्रयोग करें।

इससे बड़ी दुर्दशा क्या होगी ?

आज की दुनिया में बीमारी को मिटाने के लिए बहुत दवाइयां बनती हैं। किन्तु कुछ दवाइयां बीमारी को मिटाने के लिए नहीं, मन की अशांति को मिटाने के लिए बनती हैं। उनमें ट्रेंकेलाइजर, शामक औषधियां या नींद की

गोलियां प्रमुख हैं। हिन्दुस्तान के लोग भी आजकल खाने लग गए हैं नींद की गोलियां। उसकी जरूरत नहीं है। बिना गोली के भी नींद आती है। पर आजकल बहुत लोग खाने लग गए हैं। किन्तु अमेरिका जैसे राष्ट्रों में जर्मनी, जापान या यूरोपीय राष्ट्रों में नींद की गोलियां इतनी चलती हैं कि एक-एक कंपनी केवल नींद की गोलियां बनाकर अरबों रुपये कमाती हैं। नींद के लिए भी गोली लेनी पड़े, इससे बड़ी मनुष्य की दुर्दशा क्या होगी? इसका कारण क्या है? निमित्त इतने प्रबल बन गए, वासना, क्रोध, प्रियता, अप्रियता—ये इतने प्रबल बन गए कि गोली खाए बिना नींद भी नहीं आती। दिमाग इतना असंतुलित हो गया कि उसके बिना काम नहीं चलता। मस्तिष्क को शांत रखने के लिए कितने ट्रेंकेलाइजर लेते हैं। दिमाग ठंडा रहता नहीं है। जब राग प्रबल है, द्वेष प्रबल है तब दिमाग ठंडा कैसे रहेगा?

सामान्य राग-द्वेष तो हर आदमी में रहता है। राग की प्रबलता, द्वेष की प्रबलता, प्रिय संवेदना की प्रबलता, अप्रिय संवेदना की प्रबलता, अनुकूल प्रतिकूल परिस्थितियों की प्रबलता और इच्छाएं ही इच्छाएं हैं तो दिमाग ठंडा रहेगा नहीं, गरमा जाएगा। दिमाग का हमारा जो ग्रेमेटर है, जो एकदम ठंडा रहता है, वह भी गर्म हो जाएगा। इसलिए हम चिन्तन करें, स्वयं सोचें और दूसरों को भी बताएं कि अगर शांति का अनुभव करना है तो शांत रस के रहस्य को समझो।

मूल स्वभाव है शांति

पहली धारणा तो यह बनाओ—दूसरे सारे रस निमित्त को पाकर बनते हैं। हमारा मूल स्वभाव है शांति। इस सचाई को समझो और फिर निमित्तों से बचने का प्रयत्न करो। क्रोध का निमित्त, वासना का निमित्त—इन निमित्तों से बचने का प्रयत्न करो। कठिन तो बहुत है निमित्तों से बचना पर बच जाएं तो लाभ भी बहुत है। वर्तमान युग टी.वी. का युग है, इसमें कामुकता की वृद्धि का बहुत मौका मिलता है। छोटे-छोटे बच्चे कहते हैं—आज तो फिल्म देखना है। यह शुरू से ही निमित्तों को उभारने का उपक्रम है। आज के व्यावसायिक लोग ऐसे निमित्तों को इसीलिए उभारते हैं कि उनका व्यवसाय चले, पैसा आए और देखने वाला खराब हो जाए। जहां वासना की प्रबलता होती है, वहां अनेक समस्याएं पैदा होती हैं। वृत्तियों को उभारने की जो आज प्रक्रिया चल रही है—चाहे बाजार में, चाहे सिनेमाघर में, चाहे अपने घर में ही इन्टरनेट, टी.वी.—प्रतिदिन यह देखना सचमुच अशांति को उत्पन्न करना है और निमित्तों

पथ चुनें पर कौन-सा १५३

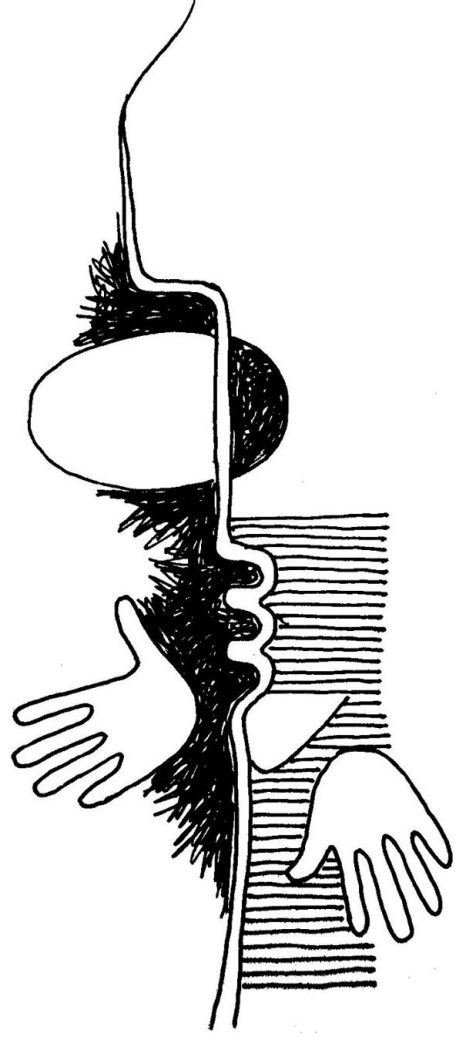
को उभारने का प्रयत्न करना है। आज आदमी इतना समझदार, प्रबुद्ध और होशियार हो गया कि वह शायद इस सचाई को मानने के लिए भी तैयार हो या न हो। पर वास्तव में अशांति और दुःख का चक्र जो बढ़ा है उसका कारण वृत्तियों को उभारने वाले साधन बन रहे हैं।

मूल्यांकन करें संयम का

जो आदमी शांति का जीवन जीना चाहता है उसको निमित्तों से बचने का भी प्रयत्न करना चाहिए। शील की नवबाड़ कोई ब्रह्मचर्य नहीं है पर ब्रह्मचर्य के बाधक निमित्तों से बचने का निर्देश है। क्रोध से बचने के लिए भगवान ने उसके निमित्तों से बचने का निर्देश दिया—जहां क्रोध का प्रसंग हो वहां एगंत मवक्कमेज्जा—एकान्त में चले जाओ, मौन कर लो। बोलो मत। यह निमित्तों से बचने का उपाय है।

हम उपादान को भी समझें। दुःख का उपादान क्या है? मूल कारण क्या है? और दुःख का निमित्त क्या है? सुख का उपादान क्या है? सुख का निमित्त क्या है? इनको ठीक समझकर अपने मन की शांति को चिरस्थायी बनाने के लिए संयम का मूल्यांकन करें। इन्द्रियों का संयम, मन का संयम—यह संयम की बात अगर सीख लें तो फिर मन की शांति कभी खराब नहीं होगी, कभी बिगड़ेगी नहीं, कभी अशांति नहीं आएगी। यदि संयम नहीं आया तो दुःख का चक्र ऐसे ही चलता रहेगा, आदमी दुःख भोगता रहेगा, दुःख का गीत गाता रहेगा।

दोनों रास्ते हमारे सामने हैं—एक शांति का मार्ग और एक अशांति का मार्ग। चुनाव करना आपका काम है। आप कौन-सा पथ चुनना चाहेंगे—शांति का पथ अथवा अशांति का पथ?



वह करता है अमृत-पान



वह करता है अमृत-पान

सब लोग पानी पीते हैं, बहुत लोग दूध भी पीते हैं। और भी बहुत सारे पेय हैं, जिन्हें लोग पीते हैं। उनमें अनेक पेय स्वास्थ्य के लिए अच्छे नहीं होते। मादक पेय मनुष्य के मन और तन दोनों को रुग्ण बनाते हैं। इन सब पेयों को पीने वाले लोग मिल जाएंगे। किन्तु अमृत को पीने वाले लोग बहुत कम हैं। देवताओं को 'अमृतपायी' कहा गया। देवता अमृत का पान करते हैं इसलिए वे बूढ़े नहीं होते, उन्हें बीमारियां नहीं सताती। वे सदा युवा और तेजस्वी बने रहते हैं।

प्रश्न आया—क्या मनुष्य अमृत का पान कर सकता है? या अमृत-पान केवल देवताओं के लिए ही है? कहा गया—मनुष्य अमृतपायी हो सकता है। वह देवताओं से भी अच्छा अमृत-पान कर सकता है।

क्या सभी मनुष्य अमृत-पान कर सकते हैं? क्या करना होता है अमृत-पान के लिए?

आचार्य अमृतचंद्र ने समयसार कलश में इस प्रश्न का बहुत सुन्दर उत्तर दिया है—

य एव मुक्त्वा नयपक्षपातं,
स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्यं,
विकल्पजालच्युतशांतचित्ताः,
त एव साक्षादमृतं पिबन्ति॥

वे लोग अमृत का पान करते हैं, जिनका दृष्टिकोण पक्षपात रहित होता है, जो अपने स्वरूप में लीन रहते हैं, जो विकल्प जाल से मुक्त शांतचित्त वाले हैं।

दृष्टिकोण एकांगी न हो

पहली बात—दृष्टिकोण का आग्रह न हो। **मुक्त्वा नयपक्षपातं**—जिसमें विचार की पकड़ नहीं होती, आग्रह नहीं होता, वह अमृत का पान कर सकता है। जिसमें आग्रह है, वह आदमी कीचड़ का पान कर सकता है। आचार्य भिक्षु ने लिखा—**बाप तलाई जाणनै खावै गार गिंवार**। एक तलाई में थोड़ा-सा

१५६ पथ चुनें पर कौन-सा

पानी था, वह भी कीचड़ भरा हुआ। एक आदमी वहां पानी पी रहा था। कोई समझदार आदमी आया, बोला—क्या कर रहे हो ?

‘भाई! पानी पी रहा हूं।’

‘अरे! कैसा पानी ? यहां तो कीचड़ भरा है। एक किमी. आगे जाओ, बहुत बड़ा तालाब है। स्वच्छ और निर्मल पानी पीओ।’

‘नहीं, वहां तो नहीं जाऊंगा। पानी तो इसी तलाई का पीऊंगा।’

‘भाई! यहीं क्यों पीओगे?’

‘क्योंकि यह मेरे बाप की तलाई है।’

‘बाप की है तो क्या कीचड़ पीने के लिए है?’

आचार्य भिक्षु ने लिखा—‘जो बुद्धिहीन है, जो रूढ़िवादी है, जिसमें अपना आग्रह है, वह आदमी ऐसा काम कर सकता है।’ तलाई बाप की है, यह ठीक है किंतु क्या वह कीचड़ पीने के लिए है? व्यक्ति का एक दृष्टिकोण बन गया, जिस बात को पकड़ लिया, बस उसी का आग्रह कि ऐसा ही होना चाहिए। यह उचित नहीं है।

पूछा गया—‘भूमि का मध्य कहां है? एक आदमी आया, लाठी रोप दी और कहा—यह भूमि का मध्य है।’

‘अरे! यह कैसे?’

वह बोला—‘मैंने लाठी रोप दी, इसलिए भूमि का मध्य तो यही होगा, दूसरा नहीं हो सकता।’

जिस व्यक्ति में एकांगी दृष्टिकोण है वह कभी अमृत का पान नहीं कर सकता। जहां एक दृष्टिकोण का आग्रह नहीं है, जो वस्तु-सत्य को सब दृष्टिकोणों से समझने का प्रयत्न करता है, वह अमृत का पान कर सकता है।

स्वरूप में लीनता

दूसरी बात—स्वरूपगुप्ता निवसंति नित्यं—जो अपने स्वरूप में लीन रहता है, अपने भीतर रहता है वह अमृत का पान कर सकता है। प्रेक्षा का मतलब है देखना। जिनके पास आंख हैं, वे सब देखते हैं किन्तु प्रेक्षा का मतलब है अपने भीतर देखना, अपने भीतर झांकना, अपने भीतर जाना। जो व्यक्ति स्वरूपगुप्ता—अपने भीतर लीन रहते हैं, वे अमृत का पान कर सकते हैं।

पथ चुनें पर कौन-सा १५७

विकल्पजाल से मुक्ति

तीसरी बात—विकल्पजालच्युतशांतचित्ताः—जिसका चित्त विकल्पों के जाल से मुक्त होता है, वह अमृत का पान कर सकता है। व्यक्ति में नाना प्रकार के विकल्प उठते हैं, कल्पनाएं आती हैं। कल्पनाएं भी न जाने कितने प्रकार की आती हैं। एक कवि के लिए तो कल्पना बहुत जरूरी है। कवि हो और कल्पनाकार न हो तो अच्छा कवि नहीं हो सकता। आजकल समाचार पत्रों में व्यंग्य, कार्टून आते हैं। कार्टूनिस्ट कितनी कल्पना करते हैं। कल्पना के बिना कार्टून अच्छा नहीं बनता, व्यंग्य भी अच्छा नहीं बनता। कल्पना जरूरी है। जिस व्यक्ति को मकान बनाना है, कल्पना करनी होती है। कपड़ा सिलाना है तो कल्पना करनी होती है। रसोई बनाना है तो भी कल्पना करनी होती है। आज क्या बनाना है, कैसे बनाना है, कितना बनाना है—सारी कल्पना करनी होती है। कल्पना के बिना हमारा जीवन चल ही नहीं सकता। किन्तु हम यह ध्यान दें—अनावश्यक कल्पनाएं कितनी होती हैं और उनमें व्यर्थ की शक्ति कितनी खर्च होती है।

कठिन है वर्तमान में जीना

तीन काल हैं—अतीत, वर्तमान और भविष्य। अतीत की स्मृति होती है, भविष्य की कल्पना होती है और वर्तमान का चिन्तन होता है। मन के तीन काम और तीन काल। मन का एक काम है स्मृति। मन का एक काम है कल्पना। मन में बहुत विकल्प आते हैं। वर्तमान में बहुत कम लोग जी पाते हैं। हमारा ज्यादा समय या तो अतीत की यादों में बीतता है या भविष्य की कल्पनाओं में। आप स्वयं अनुभव करें—भोजन करने बैठते हैं, उस समय केवल खाते हैं या और भी कुछ करते हैं? बहुत कम लोग होंगे, जो भोजन के समय केवल भोजन करें, और कुछ न करें। भोजन करते हैं तब पता नहीं कहां-कहां की बातें याद आ जाती हैं। व्यक्ति कितनी कल्पनाएं करने लग जाता है। भोजन तो शून्यता में हो जाता है, पता ही नहीं चलता। कभी-कभी सेठ साहब को मुनीम जी से पूछना पड़ता है—आज मैंने रोटी खाई या नहीं? ऐसा हुआ है। यह कोई कहानी नहीं, घटना है। मुनीमजी ने कहा—‘सेठ साहब! आपने भोजन कर लिया।’

महान् वैज्ञानिक आइंस्टीन ने कुछ मित्रों को भोज के लिए आमंत्रित किया। वे स्वयं प्रयोगशाला में काम में लीन थे, गहरी कल्पना चल रही थी। भोजन का समय हुआ। मित्र आ गए, कुछ देर प्रतीक्षा की, फिर भी आइंस्टीन नहीं आए। मित्रों ने सोचा—हम कब तक ठहरेंगे। भोजन कर लिया। थोड़ी

१५८ पथ चुनें पर कौन-सा

प्रतिक्रिया भी हो गई, आइंस्टीन की थाली भी साफ कर दी। घंटा-दो घंटा बीता। काम कुछ कम हुआ। आइंस्टीन भोजन करने भोजन-कक्ष में आए, देखा—मेज पर केवल पानी पड़ा है, सब बर्तन खाली हैं, हाथ धोए हुए हैं। आइंस्टीन ने सोचा—अच्छा, मैंने तो भोजन कर लिया, वापस प्रयोगशाला में चले गए।

कितना दौड़ता है मन ?

वर्तमान में जीना बहुत कठिन बात है। या तो आदमी अतीत में जीता है या भविष्य में जीता है। भोजन की बात छोड़ दें। चलते समय भी यही स्थिति होती है। जब आप नवकार मंत्र का जप करते हैं, माला जपना शुरू करते हैं, उस समय क्या स्थिति रहती है? मन उसी में रहता है या और कहीं जाता है? कभी तो अतीत की यादें सताती हैं और कभी भविष्य की कल्पनाएं। यदि मन माला में ठीक जम जाए, और कहीं भी न जाए तो इतना आनन्द आता है कि साक्षात् अमृतं पिबन्ति—अमृत पान का अनुभव हो जाता है। शांति मिलती है, दिमाग ठंडा हो जाता है, कहीं उत्तेजना नहीं, आवेश नहीं, ऐसा लगता है जैसे सचमुच अमृत पी लिया, किन्तु मन टिकता कहां है?

कितना दौड़ता है मन ? सब लोग इसका अनुभव करते हैं। जब सामायिक करते हैं, माला जपते हैं तब मन कभी शेयर बाजार के भावों में चला जाता होगा, कभी उद्योग व फैक्ट्री में चला जाता होगा, कभी रसोई में चला जाता होगा। पता नहीं कहां-कहां चला जाता है मन। टिकता ही नहीं है। कितनी कल्पनाएं आ जाती हैं। जो इन विकल्प-जालों में उलझा रहता है, वह अमृत का पान नहीं कर सकता।

विकल्प-मुक्ति के प्रयोग

अगर हम श्वास प्रेक्षा और श्वास संयम के द्वारा मन को एकाग्र बना सकें तो फिर जो काम करें उसी में मन लगा रहेगा। प्रेक्षाध्यान का एक प्रयोग है आहार योग यानी खाते समय केवल खाएं, और कोई बात न सोचें। एक प्रयोग है गमन योग—चलते समय केवल चलें, और कोई काम न करें। शयन योग—सोते समय केवल नींद लें, जंजालों, सपनों की दुनिया में न भटकें। ये सारे योग के प्रयोग हैं। नमस्कार महामंत्र गिनना है तो पांच पद ही हमारे सामने आए, और कोई विचार मन में न आए। इसका नाम है **विकल्पजालच्युतशांतचित्ताः।** जिसके विकल्प शांत हो गए, वह अमृतपायी हो सकता है।

पथ चुनें पर कौन-सा १५६

समुद्र में तरंगें होती हैं। कभी समुद्र शांत होता है और कभी तरंगायित। जब समुद्र में तूफान आता है तब भयंकर स्थिति बन जाती है। जब समुद्र शांत रहता है तब उसमें तूफानी लहरें नहीं उठती।

राग-द्वेषादिकल्लोलैरलोलं यन् मनोजलं।

सः पश्यत्यात्मनस्तत्त्वं तत्तत्त्वं नेतरो जनः॥

जिसका मन एकदम शांत है, जिसमें राग-द्वेष की तरंगें नहीं उठ रही हैं, वह व्यक्ति जिस आत्म-तत्त्व को देखता है, उसे दूसरा नहीं देख सकता।

जिसका मन निस्तरंग बन गया है वह व्यक्ति अमृतपान कर सकता है।

प्रेक्षाध्यान और अमृतपान के प्रयोग

साक्षात् अमृत का पान कौन कर सकता है? तीन बातें बतलाई—जिसमें अपने विचार का आग्रह नहीं है, दृष्टिकोण का आग्रह नहीं है, हर वस्तु को अनेक दृष्टिकोणों से देखता है, वह अमृत का पान कर सकता है।

जो व्यक्ति स्वरूप में लीन रहता है, केवल बाहर ही बाहर नहीं देखता, भीतर भी देखता है, झांकता है वह अमृत का पान कर सकता है।

जो व्यक्ति विकल्पों के जाल से मुक्त रह सकता है, वह अमृत का पान कर सकता है।

ये तीन प्रयोग हैं अमृतपान करने के और यही प्रेक्षाध्यान है।

प्रेक्षाध्यान का मतलब है विकल्पों का संयम करना, कल्पनाओं का भी संयम करना। आवश्यक कल्पना करना, अनावश्यक कल्पना न करना। जिस समय जो कल्पना आवश्यक है उस समय करना, अन्यथा नहीं करना। एक व्यक्ति ने उपवास किया। कल पारणा है। यदि वह उपवास में ही कल्पना करे—पारणे में क्या बनाना है? क्या खाना है? तो यह उचित नहीं है। पारणे के समय कल्पना की जा सकती है पर रात को ही तारे दिखने लग जाएं, कल्पना करनी शुरू कर दें कि कल यह बनाऊंगी, वह बनाऊंगी तो यह अनावश्यक कल्पना होगी। आवश्यक है कल्पना का संयम। जिस समय जो चिन्तन करना हो, वही चिन्तन चले, अनावश्यक चिन्तन न चले। हमारी ऊर्जा अनावश्यक खर्च न हो। स्मृति का संयम। स्मृति बहुत आवश्यक है तो स्मृतियां आदमी को बहुत उलझाती भी हैं। कब की बात, वर्षों बीत गए फिर भी बार-बार स्मृति आती है और उस स्मृति में आदमी उलझा रहता है।

१६० पथ चुनें पर कौन-सा

अतीत की यादें : कलह की पौध

मैं तो यह मानता हूँ—बहुत सारे झगड़े अतीत की स्मृतियों के कारण होते हैं। उसने उस समय ऐसा कह दिया, ऐसा कर दिया। यह हो गया, वह हो गया—ये अतीत की यादें कलह की पौध को हरा-भरा बनाए रखती हैं। अगर विकास करना है, आगे बढ़ना है तो छोटी-छोटी बातों में मत उलझो। उससे गति में प्रगति नहीं होती, समाज का भी विकास नहीं होता, जीवन का भी विकास नहीं होता। एक अर्थहीन झगड़ा लोगों के दिमाग को भारी, बोझिल बनाए रखता है।

वैशाली का गणतंत्र बहुत शक्तिशाली था। लिच्छवी गणराज्य ने उसको जीतने के बहुत प्रयत्न किए पर सफल नहीं हुआ। आखिर एक उपाय खोजा और एक षड्यंत्र के साथ अपने बुद्धिमान मंत्री को राजा अजातशत्रु ने देश निकाला दे दिया। उसने वैशाली गणराज्य में शरण ली। दुश्मन का दुश्मन दोस्त बन जाता है। वह मंत्री वैशाली में रह गया। कुछ समय बीता, कोणिक ने आक्रमण कर दिया। रणभेरी बजी पर कोई भी बड़ा योद्धा युद्ध मैदान में जाने के लिए तैयार नहीं हुआ। अधिकारियों ने सोचा—न सेनापति आ रहा है, न सहायक सेनापति आ रहे हैं, न बड़े-बड़े महारथी आ रहे हैं। क्या हो गया सबको? पुनः रणभेरी बजी फिर भी कोई नहीं आया। गणतंत्र के अधिकारी सेनापति के पास गए, बोले—रणभेरी बज रही है, सुना है कि अजातशत्रु ने आक्रमण कर दिया है और आप लोग युद्धभूमि में नहीं जा रहे हैं।

सेनापति बोला—नहीं, मैं नहीं जाऊंगा।

‘क्यों नहीं जाएंगे?’

‘मैं तो कायर आदमी हूँ, जो शूरवीर है, वह जाए।’

‘किसने कहा यह?’

‘किसने क्या, आपने ही तो कहा था।’

उस निष्कासित मंत्री ने सबके मन में विष घोल दिया, वह सेनापति के पास गया और बोला—‘माफ करना, एक रहस्य की गुप्त बात है। अगर आप न कहें तो आपको बात बताऊँ। आपके लिए बहुत काम की बात है।’

व्यक्ति ऐसी बात कहता है तो आदमी का मन हिल जाता है। सेनापति ने पूछा—क्या बात है?

पथ चुनें पर कौन-सा १६१

‘देखो, जो मंत्री हैं सेना के रक्षक हैं, वे कहते हैं कि हमारा सेनापति कमजोर और बुजदिल है।

इस प्रकार वह मंत्री सभी प्रमुख योद्धाओं के पास गया और एक-दूसरे के प्रति विष-वमन करता गया।

मन में एक दूसरे के प्रति संदेह पैदा हो गया। न शस्त्र चलाया, न तोप चलाई। न बंदूक और तलवार चलाई—बिना शस्त्र चलाए केवल बातों से सबके दिल को इतना फाड़ दिया कि उनको जोड़ना मुश्किल हो गया।

समाज में कुछ लोग कलहप्रिय होते हैं, उन्हें झगड़ा पसंद होता है। बड़ा रस लेते हैं झगड़े में, इधर-उधर की बातों में। अकारण समाज में कलह पैदा कर देते हैं और वह कलह वर्षों तक चलता रहता है। उससे किसी को लाभ नहीं होता, नुकसान होता चला जाता है।

दुःख देता है महामोहनीय कर्म

हम व्यर्थ की स्मृतियों में न जाएं, व्यर्थ की कल्पनाओं में न जाएं, विकल्पों में न जाएं और अनावश्यक चिन्तन भी न करें। लक्ष्य एक रहे—शांति के साथ जीना है और समाज को भी स्वस्थ बनाए रखना है। समाज बीमार न बने, रुग्ण न बने। थोड़ी-सी बीमारी शरीर में होती है तो आदमी तत्काल डॉक्टर के पास जाता है, निदान और जांच कराता है, दवा लेता है। जब अकेला व्यक्ति नहीं, पूरा समाज ही बीमार होने लग जाए तो कौन दवा देगा? कहां हॉस्पिटल है जहां इलाज हो जाए। यह बहुत बड़ा प्रश्न है समाज को स्वस्थ रखने का।

साधुओं को बारे में भगवान महावीर ने व्यवस्था दी—कोई भी साधु संघ में भेद न डाले। जो साधु भेद डालने का, एक-दूसरे को फांटने का, एक-दूसरे के प्रति घृणा पैदा करने का काम करता है उसको महामोहनीय कर्म का बंध होता है। सबसे भीषण कर्म है, सबसे ज्यादा दुःख देने वाला कर्म है महामोहनीय कर्म। जो लोग समाज में फूट डालते हैं, उनके किस कर्म का बंध होता होगा? यह चिन्तन करना चाहिए।

अनावश्यक चिन्तन न करें

प्रेक्षाध्यान का एक प्रयोग है विचार-संयम, अनावश्यक चिन्तन को रोक दिया जाए। आवश्यक तो चलेगा। आवश्यक स्मृति भी चलेगी। अगर आवश्यक स्मृति न हो तो धर्मस्थल से कोई अपने घर पर नहीं जा सकेगा। कुछ

१६२ पथ चुनें पर कौन-सा

भी याद नहीं है तो फिर कहां जाएगा? यह स्मृति है कि मेरा घर वहां है तभी तो घर पर जाएगा। स्मृति को छोड़ा नहीं जा सकता। आवश्यक चिन्तन भी चलेगा, आवश्यक कल्पना भी चलेगी। उसके बिना विकास नहीं हो सकता किंतु आवश्यक और अनावश्यक का विवेक बना रहे। जो जरूरी नहीं हैं, उन बातों को छोड़ दें तो भी बहुत परिवर्तन होगा, और समस्या भी नहीं उलझेगी।

अकेला रहना सीखें

प्रेक्षाध्यान एक प्रयोग है अकेला रहने का अनुभव। अकेला हुए बिना कोई धर्म और अध्यात्म की आराधना कर नहीं सकता। जब तक दो हैं, धर्म की साधना नहीं हो सकती। धर्म की साधना तब होगी जब आप अनुभव करें कि मैं अकेला हूं। नमि एकाकी भलो दोय मिल्या दुःख होय—जहां दो मिले, दुःख शुरू हो जाएगा। जहां आदमी अकेला रहना नहीं जानता वहां अपने आप से भी लड़ाई शुरू कर देता है। पंचतंत्र की प्रसिद्ध कहानी है। शेर कुएं में गिर गया। इसलिए कि कुएं में अपने प्रतिबिम्ब को असली शेर समझ लिया। जब चिड़िया कांच पर आकर बैठती है तो कांच पर चोंच मारने लग जाती है। क्योंकि कांच के भीतर जो चिड़िया बैठी है वह उसी चिड़िया का प्रतिबिम्ब है। आदमी भी अपने ही प्रतिबिम्ब से लड़ना शुरू कर देता है। यह प्रतिबिम्ब, अकेला न होना भ्रांति पैदा करता है। जो व्यक्ति प्रतिबिम्ब को देखता है, मूल बात को नहीं जानता, वह अपने ही प्रतिबिम्ब में उलझ जाता है और भ्रांति का जीवन जीता है। जिसे अच्छा जीवन जीना है, तनाव से मुक्त शांति का जीवन जीना है और दिमाग को भारी बोझिल नहीं बनाना है, दिमाग को ठंडा रखना है वह तीनों का संयम करना सीखे—अनावश्यक स्मृति न करे। अनावश्यक विचार न करे। कोई भी बुरा विचार, अनावश्यक विचार आए तो तत्काल अपने इष्ट का स्मरण शुरू कर दे। अनावश्यक कल्पना आए तो दूसरे काम में मन को लगा दे, मन का निरोध कर दे।

वह होता है अकेला

प्रेक्षाध्यान का मूल हृदय है—अकेला रहना सीखो, अकेला बनना सीखो। अकेले का मतलब हिमालय की गुफा में जाकर बैठना नहीं है। जो वहां जाता है वह भी अकेला नहीं होता और जो घर में रहता है वह दो नहीं होता। कहीं भी रहो, चाहे घर में रहो, चाहे गांव में रहो, नगर में रहो, जंगल में चले जाओ। जो व्यक्ति अनावश्यक स्मृति, कल्पना और चिन्तन से मुक्त है वह अकेला है। जो ये अनावश्यक करता है वह अकेला नहीं हो सकता।

पथ चुनें पर कौन-सा १६३

प्रेक्षाध्यान के बड़े भक्त साधक रहे हैं दत्ता साहब। बंगाल के हैं। भारत सरकार का जो टकसाल मिंट है, उसके डायरेक्टर जनरल रहे। इतना गंभीर विद्वान् कम देखा। प्रेक्षाध्यान के बहुत शिविरो में आए। उन्होंने एक बार बताया कि वे बहुत बार हिमालय की गुफा में ध्यान करते हैं। एक दिन जब ध्यान कर रहा था तब कुछ भी पता नहीं चला। जैसे ही ध्यान पूरा किया, मैंने देखा—पूरा शरीर चींटियों से भरा है, सारे शरीर में चींटियां ही चींटियां। एकदम शरीर काला हो गया चींटियों से। जैसे ही ध्यान पूरा हुआ, सब चींटियां उतरनी शुरू हो गईं। उन्होंने पूछा—यह कैसे हो सकता है? मैं ध्यान में था तब चींटियों ने पूरे शरीर को घेर लिया और ध्यान पूरा किया, तब सब उतरकर चली गईं। किसी ने काटा भी नहीं?

मैंने कहा—‘ध्यान काल में आपके शरीर में सुगंध पैदा हो जाती है। यह संभव है कि ध्यान करने वाले व्यक्ति के शरीर में सुगंध पैदा हो जाए। कभी चंदन की सुगंध आती है, कभी फूलों की सुगंध पैदा होती है। बहुत बार शिविरो में भी हमने देखा कि सुगंध आने लग जाती है। चींटियां गंध-प्रिय होती हैं। जहां गंध आती है वहां चींटियां शरीर को घेर लेती हैं और ध्यान पूरा होता है और वे चलने लग जाती हैं।

तब होता है अमृतपान

व्यक्ति जब अकेला होता है, उस समय शरीर का वर्ण बदलता है, गंध बदलती है, रस बदलता है, स्पर्श बदल जाता है। जैसे ही बाहर में आया, दो में गया, व्यर्थ की कल्पनाओं में, झगड़ों में गया, सबके सब वापस चले जाते हैं।

अमृतपान की आकांक्षा करने वाले व्यक्ति प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करें। अनावश्यक प्रवृत्तियों से बचें। जिस समय जो काम करें, उस समय उसी में तन्मय रहें। खाते समय खाने का ध्यान, चलते समय चलने का ध्यान, बोलते समय बोलने का ध्यान। अनावश्यक स्मृति, कल्पना व चिन्तन का वर्जन। अनावश्यक कल्पना, स्मृति और चिन्तन का वर्जन करने वाला व्यक्ति ही विकल्पों के जाल से मुक्त हो सकता है, शांत-चित्त रह सकता है, अपने स्वरूप में लीन रहने की साधना कर सकता है, सत्य की खोज कर सकता है। जहां सत्य की शोध का प्रश्न होता है, वहां दृष्टिकोण एकांगी नहीं होता, विचार का आग्रह नहीं होता।

यदि आप अमृतपान करना चाहते हैं तो आग्रह को छोड़ें, स्वरूप में लीन रहने की साधना करें और विकल्पों के जाल से मुक्त रहना सीखें। आपको वह अमृत उपलब्ध होगा, जो देवताओं को भी सुलभ नहीं है।

१६४ पथ चुनें पर कौन-सा



विकास सामंजस्य की चेतना का



विकास सामंजस्य की चेतना का

अनेकान्त केवल दार्शनिक समस्या के समाधान का सिद्धान्त नहीं है, वह व्यावहारिक समस्याओं को सुलझाने का भी कारगर उपाय है। जिस व्यक्ति का दृष्टिकोण अनेकान्त का बन जाता है, वह काफी समस्याओं को सुलझा देता है। उलझन वहां होती है जहां एकांगी आग्रह होता है। दो आदमी हैं और दोनों ने आग्रह कर लिया—एक इधर तानता है एक उधर तानता है तो समस्या उलझती है। जिसने समायोजन करना सीख लिया, एडजस्टमेंट करना सीख लिया, वह कभी उलझता नहीं है। वह सोचता है—अनुकूल स्थिति है या प्रतिकूल परिस्थिति, उसमें मुझे काम करना है, मैं अनाग्रहपूर्वक अभिरुचिपूर्वक काम करूंगा। यह समायोजन हो गया। जो समायोजन करना जानता है, वह झगड़ा कम कर देता है। सामान्यतः यह माना जाता है—जहां दो हैं वहां झगड़ा होगा। इसीलिए कहा गया—नमि एकाकी भलो दोय मिल्या दुःख होय। एकाकी रहना अच्छा है, दो मिलते ही दुःख हो जाता है। दुनिया का स्वभाव यह है कि दो के बिना काम नहीं चलता।

शक्ति है समुदाय में

समुदाय भी एक शक्ति है। व्यक्ति अकेला है, अच्छा है पर शक्ति समुदाय में आती है। **संहतिः श्रेयसि पुंसाम्**—मनुष्यों की संहति श्रेयस्कर होती है। बहुत सारे तिनके हैं, एक-एक तिनका बिखरा हुआ है, कचरा बन गया। उन्हीं घास के तिनकों को मिलाकर एक बुहारी बना ली तो कचरा निकालने वाली उपयोगी वस्तु बन गई। एक तंतु है, उसे जब चाहो तब तोड़ दो। उसका रस्सा बना लिया तो हाथी को भी बांध दो। संहति में शक्ति होती है।

न व्यक्ति अकेला है और न समुदाय। दोनों का सामंजस्य स्थापित करना अनेकान्त का काम है। क्या यह हो सकता है कि दो व्यक्ति साथ रहें और कभी संघर्ष न हो? क्या कोई आत्मविश्वास के साथ कह सकता है कि हम दो साथ रहेंगे पर लड़ाई-झगड़ा नहीं होगा। बहुत कठिन है। कभी न कभी, कुछ न कुछ हो ही जाता है।

१६६ पथ चुनें पर कौन-सा

राजस्थानी कहावत है—एक साथ पड़्या हांडा भी खड़बड़ा जावै। खड़बड़ाहट या संघर्ष—दो में होता है, अकेले में नहीं होता। अकेला किससे लड़ेगा? समुदाय चाहे दो का हो या दो सौ का, सामान्य प्रकृति यह है—जहां अनेकता आई वहां लड़ाई शुरू हो जाएगी। इसका एक कारण है रुचि की भिन्नता। भिन्नता होती है। एक व्यक्ति की रुचि दूसरे प्रकार की है, दूसरे व्यक्ति की रुचि दूसरे प्रकार की है। एक व्यक्ति कहता है—मुझे करेले का शाक बहुत अच्छा लगता है। दूसरा कहता है—करेला इतना कड़वा है कि मैं तो खा ही नहीं सकता। आज तुमने करेले का शाक क्यों बनाया? इस बात को लेकर भी लड़ाई हो जाती है। एक कहता है—मुझे भोजन में बहुत नमक चाहिए। दूसरा कहता है—नहीं, मुझे इतना नमक अच्छा नहीं लगता। लड़ाई का कोई एक कारण नहीं है, हजारों कारण हैं। जहां भी रुचि की भिन्नता, विचारों की भिन्नता होती है वहां लड़ाई के लिए बहुत अवकाश है। यह मानकर चलें कि साथ में रहें तो उत्तेजना, आवेश, संघर्ष होना अनिवार्य है तब हमें सोचने की जरूरत ही नहीं है। यदि यह मानें कि साथ में रहते हुए भी शांतिपूर्ण सहअस्तित्व हो सकता है तब सोचना चाहिए।

जरूरी है व्यवहार का ज्ञान

पूज्य गुरुदेव तुलसी ने व्यवहारबोध में व्यवहार की बातें बतलाई हैं। लड़ाई को मिटाने का एक उपाय है—व्यवहार का ज्ञान। किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। दूसरे व्यक्ति के साथ हमारा व्यवहार कैसा हो? अगर व्यवहार की कुशलता है तो लड़ाइयां कम हो जाएंगी। व्यवहार करना नहीं जानता, केवल लड़ना ही जानता है तो लड़ाइयां बढ़ जाएंगी। हमें व्यवहार का ज्ञान होना चाहिए—मैं दूसरे व्यक्ति के साथ कैसा व्यवहार करूं। व्यवहार का एक मुख्य साधन है—वाणी। मैं इस प्रकार के वचन का प्रयोग न करूं, ऐसी बात न बोलूं, जिससे सामने वाला लड़ने के मूड में आ जाए। मैं ऐसा काम न करूं, जिससे सामने वाला उत्तेजित हो जाए। मानसिक चिन्तन का तो पता नहीं चलता। एक आदमी दूसरे के बारे में कितनी बुरी बात सोचे, सामान्यतः किसी को पता नहीं लगता। पर वाणी और कार्य—ये दोनों सामने आते हैं और ये ही हमारे व्यवहार को संतुलित या असंतुलित, अच्छा या बुरा बनाते हैं।

साधु का धन

व्यवहारबोध का बहुत सुंदर पद है—

पथ चुनें पर कौन-सा १६७

क्षांति शांति उपशामना समता रस का पोष। क्षण-क्षण में उत्तेजना स्वयं-स्वयं का शोष॥

दो प्रकार की प्रकृतियां हैं। एक प्रकृति यह है कि व्यक्ति शांत रहता है, सहन करना जानता है। कषाय उपशान्त रहता है तो वह ज्यादा समता में रह सकता है और समता में रहता है तो संघर्ष कम होता है।

एक गृहस्थ के पास मकान है, सोना, चांदी और जवाहिरात है यह उसका धन है। एक व्यक्ति साधु बन गया, इन सबका त्याग कर दिया, उसके पास कौन-सा धन है? कहा गया—साधु के पास धन है उपशम, कषाय को शांत रखना, क्रोध, मान, माया और लोभ को शांत रखना।

अभिधानचिन्तामणि में कहा गया—**तपोयोगशामादयः**। तपस्या, योग और उपशम—एक साधु का धन है। जैसे गृहस्थ की धन के आधार पर श्रेणियां बनती हैं। यह लखपती है, यह करोड़पति है, यह अरबपति है। साधु की भी श्रेणियां बननी चाहिए—जिसने कषाय को थोड़ा शांत किया है, उत्तेजना बार-बार आ जाती है तो अभी तक हजारपति या लखपती बना है, आगे नहीं बढ़ पाया है। जिसने कषाय को काफी अच्छा शांत कर दिया, वह करोड़पति बन गया। जिसने कषाय को बिल्कुल उपशांत कर दिया, उसे अरबपति, खरबपति मान लीजिए। जिसके पास जो धन होता है, उससे उसका मूल्य आंका जाता है। मुनि का धन है क्षमा, सहन करना, कषाय को शांत रखना। यह होता है तो उसका मूल्य बढ़ता चला जाता है। यह नहीं होता है तो क्षण-क्षण में उत्तेजना आती है। कोई बात हुई, तत्काल उत्तेजना आ गई। यह स्वयं का शोषण है। उत्तेजना से दूसरे का कुछ नहीं बिगड़ता, स्वयं का नुकसान होता है। मन के प्रतिकूल कुछ हुआ और उत्तेजना तैयार है तो यह साधु के लिए कभी शोभा नहीं देता, श्रावक के लिए भी नहीं देता। जो शांति का जीवन जीना चाहता है, उसके लिए भी बार-बार उत्तेजना करना अच्छा नहीं होता। वैज्ञानिक खोजों का निष्कर्ष है—एक बार तेज गुस्सा आता है तो नौ घंटे की जीवनी-शक्ति समाप्त हो जाती है। जो दिन में बार-बार उत्तेजना करते हैं, उनका क्या होता होगा?

उनका क्या होगा ?

राजा की शय्या को बिछाते समय दासी ने सोचा—यह शय्या कितनी कोमल है, देखना चाहिए। वह कुछ क्षण के लिए लेट गई। लेटते ही उसे

१६८ पथ चुनें पर कौन-सा

नींद आ गई। अकस्मात् राजा आया, देखा—दासी सोई हुई है। आवेश से भर उठा, कोड़े लगाने शुरू कर दिए। कोड़े लगते ही दासी हंसने लग गई। राजा ने कहा—अरे! कोड़े पड़ रहे हैं हंसती क्यों हो? वह बोली—एक बार सोयी, उसका परिणाम है कि सौ कोड़े पड़ रहे हैं। जो रोज सोते हैं, उनका क्या होगा?

जो एक बार गुस्सा करता है उसका जीवन नौ घंटा कम हो जाता है, जो दिन भर गुस्सा करते रहते हैं उनका क्या होता है? इस दुनिया में हर व्यक्ति मन के अनुकूल हो, यह असंभव है। दुनिया में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जन्मा, जिसके जीवन में प्रतिकूलता न आई हो। प्रतिकूल परिस्थितियां आती हैं, प्रतिकूल वातावरण बनता है किन्तु उस प्रतिकूल वातावरण में जो व्यक्ति उत्तेजना न करे, शांत रहे तो मानना चाहिए कि उसने अपने धन को सुरक्षित और संवर्धित किया है।

नया रास्ता

सहन करना बहुत बड़ी शक्ति है। जो लोग दूसरों को क्षमा की बात समझाते हैं उन्हें भी आत्मालोचन करना है कि जीवन में क्षमा का कितना विकास हो रहा है। बारह महीने में क्रोध, उत्तेजना, आवेश कितनी बार आया? कितना कमाया, कितना खोया? ऐसे भी व्यक्ति हैं, जिनको १२ महीनों में १२ बार भी क्रोध नहीं आता और ऐसे व्यक्तियों को भी मैं जानता हूँ जिन्हें एक दिन में बारह बार या उससे ज्यादा बार गुस्सा आ जाता है। इतनी व्यक्तिगत भिन्नता को देखा है। एक व्यक्ति तो बहुत शांत स्वभाव वाला और एक व्यक्ति बहुत उत्तेजना वाला—इस भिन्नता की स्थिति में सामंजस्य कैसे बने? जहां एक शांत है और एक उत्तेजनाशील वहां तो सामंजस्य की संभावना रहती है। किन्तु जहां दोनों व्यक्ति उत्तेजनाशील मिल जाएं वहां तो नया रास्ता ही खोजना पड़ता है। वह नया रास्ता है—दीर्घश्वास प्रेक्षा और मौन का प्रयोग।

दीर्घ श्वास प्रेक्षा प्रवर, करें मौन निर्व्याज।

धन्य हुई है नववधू, अनुभव पूर्ण इलाज॥

आवेश-शमन का प्रयोग

प्रसिद्ध कथा है। पुत्र का विवाह हुआ, नई बहू घर में आई। सास बड़ी उग्र स्वभाव की थी। सामान्यतः जो व्यक्ति पका हुआ नहीं है, यदि उसे उग्र स्वभाव का योग मिल जाए तो वह लड़ना भी सीख जाता है। मृदुपि चंडं पकरेन्ति सीसा—अविनीत शिष्य मृदु गुरु को भी चण्ड बना देते हैं और विनीत

पथ चुनें पर कौन-सा १६६

शिष्य चण्ड गुरु को भी मृदु बना देते हैं। परिस्थिति का भी अंतर पड़ता है। नई बहू थोड़ी तेज थी, सास का योग ऐसा मिला कि दोनों की उग्रता में कोई कमी नहीं रही। जैसी सास वैसी बहू और जैसी बहू वैसी सास—खूब लड़ाइयां होती। दिनभर लड़ती रहती। आखिर बहू परेशान हो गई, सोचा—क्या करूं? कैसे शांति आए? जब आदमी परेशान होता है तब उपाय खोजता है। जितने उपाय खोजे गए हैं, वे प्रायः परेशानी की स्थिति में खोजे गए हैं, समस्या के साथ खोजे गए हैं और उनका समाधान मिला है। पड़ोस में अनुभवी वैद्य रहता था। उसके पास गई, दुखड़ा रोया, बोली—आप मेरे दुःख को कम करें। उन्होंने पूछा—बेटी! क्या दुःख है?

‘दुःख यह है कि दिन भर कलह का चूल्हा जलता रहता है, कभी बुझता ही नहीं है।’

उसने कहा—‘मैं तुम्हें दवा दूंगा, उस दवा का सेवन करो, तुम्हारी समस्या मिट जाएगी।’

‘तो मैं निहाल हो जाऊंगी।’

वैद्य भीतर गया, एक शीशी भरकर लाया, बोला—‘यह लो दवा। जब लड़ाई शुरू हो तब तत्काल मुंह में ले लो।’

‘वैद्यवर! ठीक है। ऐसा ही करूंगी।’

‘बेटी! दवा पथ्य के बिना काम नहीं करती। इसका पथ्य यह है कि दस मिनट तक मुंह में रखो तो दवा काम करेगी। एक मिनट में घूंट नीचे उतार ली तो दवा काम नहीं करेगी।’

उसने कहा—ठीक है। जैसे ही दवा लेकर घर पहुंची, सास ने आवेश में पूछा—कहां गई थी? लड़ाई शुरू हो गई। वह तत्काल भीतर गई। बोतल को खोला। एक घूंट दवा मुंह में ली। सास बोली—तुम बोलती क्यों नहीं हो? क्या मौन है? एक बोले, दूसरा न बोले तो उत्तेजना एक बार बहुत भड़कती है, बढ़ती है पर थोड़ी देर में वह शांत हो जाती है। सास को उत्तेजना आई, फिर भी वह मौन रही। उसका पक्का विश्वास था कि दस मिनट तक दवा को मुंह में रखे बिना काम नहीं बनेगा। सास ने चार-पांच बार कहा, बहू नहीं बोली तो सास थककर चली गई। दिन में दो-चार प्रसंग आए। वह भीतर जाती, बोतल खोल दवा की घूंट लेती और दस मिनट तक दवा को मुंह में रखती। सास ने सोचा—आज क्या हो गया? बोलती क्यों नहीं है? दो-तीन दिन यही क्रम चला। सास की मति

१७० पथ चुनें पर कौन-सा

भी बदल गई। सोचा—क्या करूं? किससे लड़ूं? यह तो बोलती नहीं है। लड़ाई अपने आप धीमी हो गई। बहू वैद्य के पास गई, बोली—‘वैद्यजी! आपने निहाल कर दिया। घर में शांति हो गई। बड़ी कीमती दवा है, अमूल्य दवा है। यह दवा सबको दे दें तो सब बहुओं का झंझट ही समाप्त हो जाए।’

वह दवा थी केवल पानी। यह एक प्रयोग है। इसे कोई आजमा कर देख सकता है। जब गुस्सा आए, आवेश आए तब दस मिनट तक मौन रखें या जीभ को उलटकर तालु पर लगा लें। लड़ाइयां कम हो जाएंगी, समाप्त भी हो जाएंगी।

हमने इन वर्षों में अनेक साधु-साध्वियों और श्रावकों को यह संकल्प कराया—कभी भी कोई उत्तेजना का अवसर आ जाए तो दस मिनट तक एकदम मौन रहो। पारा तब ऊपर चढ़ता है जब व्यक्ति आवेश में बोलने लग जाए। यह बहुत बड़ा प्रयोग है शांतिपूर्ण जीवन का। कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जिन्हें आवेश कम आता है। जिनको यह लगे कि आवेश आने की परिस्थिति है आवेश आता है, वे अपने मन में संकल्प कर लें—कहीं भी आवेश की स्थिति आए, हम दस मिनट सर्वथा मौन रहेंगे तो संघर्ष बहुत कम हो जाएगा।

सहिष्णुता की शक्ति

शांति का दूसरा उपाय है—सहिष्णुता।

**मेरी हरकत सहे सहज वह, मैं भी उसकी क्यों न सहूं?
साथी रूप निभाना है तो सहिष्णुता के साथ रहूं॥**

दो व्यक्ति साथ रहते हैं। अगर वे यह समझौता कर लें कि मेरी हरकतों को तुम सहन करो और तुम्हारी हरकतों को मैं सहन करूंगा तो शांतिपूर्ण सहवास हो सकता है। एक यह चाहे कि मेरी बादशाहत चले। मैं जो कुछ कहूं उसे वह माने पर उसकी बात मैं नहीं मानूंगा तो शांत-सहवास सम्भव नहीं होगा।

चीन के सम्राट् ने अपने प्रधानमंत्री से कहा—प्रधानमंत्री! मैंने सुना है कि तुम्हारे परिवार में हजार आदमी हैं और मैंने यह भी सुना है कि हजार आदमियों की रसोई एक साथ बनती है।

आजकल तो कल्पना ही नहीं हो सकती। हमने १००-२०० आदमियों की रसोई को एक साथ देखा है। आज तो दस-बीस की रसोई एक साथ हो तो भी बड़ी बात है।

पथ चुनें पर कौन-सा १७१

सम्राट् ने कहा—मैं एक दिन देखना चाहता हूँ। सम्राट् उसके घर पर आया। सारी स्थिति देखी। घर क्या पूरा एक गांव था। सम्राट बोला—प्रधानमंत्री! मुझे आश्चर्य है। तुम कैसे इतने लोग साथ रहते हो? प्रधानमंत्री ने एक पन्ना हाथ में लिया और कलम से लिखना शुरू किया, लिखता गया, लिखता गया। पूरा पन्ना भर कर सम्राट् के हाथ में थमा दिया। उसमें केवल एक शब्द 'सहिष्णुता' हजार बार लिख दिया। प्रधानमंत्री ने कहा—जो भी स्थिति आती है, मैं सहन करता हूँ इसलिए सब एक साथ चल रहे हैं। घर, परिवार या संगठन का मुखिया हो और सहनशील न हो तो शांत-सहवास संभव ही नहीं होता।

मतलब सामंजस्य का

आचार्य को जितना सहना पड़ता है, सामान्य साधु को उतना कभी सहना नहीं पड़ता। न जाने कितने लोगों को सहना पड़ता है, कितनी बातों को सुनना पड़ता है। अगर आचार्य सहिष्णु न हों तो संघ चल नहीं सकता। गुरुदेव के शासनकाल को मैंने निकटता से देखा है। जितनी बातें मैं जानता हूँ उतना दूसरा नहीं जानता कि कितना सहन किया है। गुरुदेव बहुत बार कहते—'मैं जब आचार्य बना, मैं सोचता था—तेरापंथ का आचार्य बनना, अनुशास्ता बनना तो आसान है। इंगित के आधार पर सारा काम चलता है। उसे कोई समस्या और चिन्ता नहीं होती। किन्तु जब प्रत्यक्ष में अनुभव आया, तब पता चला कि कितनी समस्याएं आती हैं, कितनी कठिनाइयां आती हैं।' जहां समाज है, समूह है, संगठन है, जहां व्यक्तिगत भिन्नता है वहां समस्या तो आएगी। एक व्यक्ति कुछ कहेगा, दूसरा कुछ कहेगा। हम इस सचाई को स्वीकार करके चलें—मतभेद भी होगा, समस्याएं भी आएंगी। एक स्थिति यह है—समस्या में उत्तेजना करते रहो, संघर्ष करते रहो, बोलचाल भी करते रहो और कभी-कभी उत्तेजना के शिखर पर भी चले जाओ। यह अच्छी स्थिति नहीं है। समस्या आए और समस्या का परिणाम भी आए, आवेशपूर्ण वातावरण भी बन जाए तो क्या ऐसा ही चलने दें? बिल्कुल नहीं। हमें उपाय खोजना है कि सामंजस्य कैसे स्थापित कर सकते हैं। सामंजस्य का मतलब सबको कूट-पीज कर एक वस्तु बना देना नहीं है। हमारा भिन्न स्वभाव भले ही रहे पर भिन्नता में भी हम ऐसी एकता स्थापित कर लें, जैसी एकता किंवाड़ स्थापित करते हैं।

सामंजस्य में बाधाएं

बीदासर में पूज्य गुरुदेव विराज रहे थे। बांठिया भवन में वि. सं. २०२३ का चतुर्मास था। मैं ऊपरी कक्ष में बैठा था। उस कमरे में खिड़की पर किंवाड़

१७२ पथ चुनें पर कौन-सा

लगाने थे। खाती आया, किंवाड़ लगाना शुरू किया तो खट-खट शुरू हो गई। संतों ने पूछ लिया—भाई! कितना समय लगेगा। उसने कहा—समय तो लगेगा। हम थोड़ा स्थान छोड़ कर बैठ गए। मैं उसको देखता रहा। क्योंकि प्रकृति का अध्ययन करना मेरी रुचि का विषय रहा है। उसने किंवाड़ लगाए पर फिट नहीं बैठे तब काटना शुरू किया। एक को थोड़ा काटा फिर दूसरे को काटा फिर लगाए तो भी फिट नहीं हुए। कभी ऊपर से काटता है, कभी नीचे से काटता है, कभी आस-पास से काटता है। पांच-सात घंटा के बाद दोनों किंवाड़ बिल्कुल फिट हो गए। सामंजस्य हो गया।

एक बड़ा होगा, एक छोटा होगा तो सामंजस्य कैसे होगा। एक अपना बड़प्पन, अहंकार जताए और दूसरे को हीनता में ले जाए तो सामंजस्य नहीं हो सकता। अहंकार सामंजस्य में बाधा है तो हीनभावना भी सामंजस्य में बाधा है। दोनों को समान स्तर पर लाएं—न अहंकार, न हीनता—तब सामंजस्य हो सकता है। किंवाड़ की जोड़ी को भी फिट करने में कितना सामंजस्य करना पड़ता है तो दो आदमियों को साथ में रखने में कितनी काट-छांट की जरूरत है। एक व्यक्ति यह कहे—यह मेरा स्वभाव है, मैं तो नहीं बदल सकता तो दूसरा भी अड़ जाएगा। वह भी कहेगा—मैं भी अपना स्वभाव नहीं बदल सकता। पूज्य कालूगणी के शब्दों में—दो व्यक्ति रस्सी को अपनी अपनी ओर खींच रहे हैं। यदि रस्सी को ज्यादा खींचेंगे तो रस्सी टूट जाएगी, दोनों ही गिर जाएंगे। सामंजस्य का उपाय है—रस्सी को तानो मत, ढील दो। हम ढील देना भी सीखें। एक व्यक्ति बात को तान रहा है तो दूसरा व्यक्ति हट जाए समझदारी के साथ। वह सोचे—अभी इसमें आग्रह आ गया है तो मैं अनाग्रही बन जाऊं। वह पीछे हट जाए तो बात टल जाएगी। अनाग्रह सामंजस्य के लिए बहुत बड़ा सिद्धान्त है।

नियम अनेकान्त का

हम अनेकान्त के सिद्धान्त को देखें। सब लोग चलते हैं पर कैसे चलते हैं? एक पैर आगे रहता है, दूसरा पैर पीछे रहता है तब चल पाते हैं। क्या कभी दोनों पैरों को साथ रखकर चले हैं? गति का नियम है एक पैर आगे जाएगा, दूसरा पैर पीछे रहेगा। फिर जो पैर पीछे है, वह आगे आएगा और आगे वाला पीछे चला जाएगा। यह स्थिति होती है तब हमारी गति होती है। आचार्य अमृतचंद्र ने अनाग्रह की वृत्ति को समझाने के लिए ग्वालिन का उदाहरण दिया—ग्वालिन बिलोना करती है, मक्खन निकालती है तब एक हाथ आगे

पथ चुनें पर कौन-सा १७३

आएगा, दूसरा पीछे। दूसरा आगे आएगा तो पहला पीछे चला जाएगा। ऐसे बिलोना होता है तब मक्खन निकलता है। कोई हाथ कह दे कि मैं पीछे क्यों रहूँ तो क्या कभी मक्खन निकलेगा ?

यह अनेकान्त का नियम है। जैन दर्शन का ऐसा महत्वपूर्ण सिद्धान्त हमें मिला है, जिसका उपयोग करें तो काफी संघर्षों को टाला जा सकता है। पर यह कहने में कोई कठिनाई नहीं है कि अनेकान्त का उपयोग जितना चर्चा में किया गया उतना व्यवहार में हमने नहीं किया। क्या अनेकान्त का दैनिक व्यवहार में उपयोग करते हैं? मानते हैं, वह सिद्धान्त की बात है। सन्मति तर्क पढ़ें, न्याय कुमुदचंद्र, आप्त मीमांसा पढ़ें तब अनेकान्त की मीमांसा होती है। जहां साथ में बैठना है, रोटी खाना है वहां अनेकान्त क्या करेगा? वस्तुतः अनेकान्त का उपयोग तो रोटी खाने के समय ही होना चाहिए। क्योंकि ज्यादा झगड़ा रोटी, रसोई के संदर्भ में होता है। रसोई तो एक प्रकार से कलह का कारण बन जाती है। हम अनेकान्त को व्यवहार में लाएं। अनेकान्त जब व्यवहार में आएगा तब उत्तेजना को कम करने का मौका मिल जाएगा।

अनेकान्त व्यवहार में आए

कबीर के पास एक युवक आया, बोला—मैं आपसे मार्गदर्शन लेने आया हूँ। मैं विवाह कर रहा हूँ तो मुझे अपनी पत्नी के साथ शांतिपूर्ण जीवन कैसे बिताना चाहिए?

कबीर ने युवक को पास बिठा लिया। पत्नी को बुलाया, कहा—दो गिलास दूध लाओ। पत्नी दूध ले आई, पीने लगे। इतने में पत्नी फिर आई, बोली—इस दूध में चीनी कम तो नहीं है? कबीर ने कहा—कम की क्या बात है। तुम्हारे हाथ से डाली हुई है। वह युवक हंसा, सोचा—किस व्यक्ति से मैं पथ दर्शन लेने आ गया। उससे रहा नहीं गया, बोला—महाशय! इसमें तो नमक डाला हुआ है, मिठास कहां है? यह तो खारा है।

कबीर ने कहा—युवक! अगर पत्नी के साथ शांति से रहना चाहते हो तो पत्नी की भूल को भी सहन करो। कड़वाहट को भी मिठास मानकर चलो तो शांति रहेगी। यदि कड़वाहट को कड़वाहट में कहा तो लड़ाइयां शुरू हो जाएंगी।

किसी के साथ शांति से रहना है तो उसकी बात को सहन करना पड़ेगा। बिना सहन किए कभी सामंजस्य हो नहीं सकता। इसलिए हम अनेकान्त की

जीवनशैली को अपनाएं, हमारी जीवनशैली अनाग्रहपूर्ण बने, विनम्रता की बने। अहंकार नहीं रहे।

मेरे मन में अनेक बार प्रश्न उठता है—पता नहीं सामान्य व्यक्ति में भी अहंकार क्यों रहता है? न तो कोई खास योग्यता, न कोई अध्ययन, न कोई और कुछ, फिर भी इतना भारी अहंकार! यह अहंकार किस बात का है, पता नहीं चलता। कुछ हो तो भी बात समझ में आती है। वस्तुतः जिनके पास कुछ है, वे तो अहंकार करते नहीं हैं और जिनके पास नहीं हैं, वे ज्यादा अहंकार करते हैं। जहां अहंकार और आग्रह है, वहां सामंजस्य नहीं रहता।

तेरापंथ की आत्मा

यदि तेरापंथ का साधु-साध्वी तेरापंथ की आत्मा को समझे तो जिस दिन तेरापंथ की दीक्षा ले, उस दिन इस बात को स्वीकार करे—अहंकार का विलय और ममकार का विलय—इसका नाम है तेरापंथ, जहां शिष्य गुरु की शरण में आता है, अहंकार का विलय करके आता है। उसकी अपनी कोई इच्छा नहीं होती। अभी मर्यादा-महोत्सव सन्निकट है। सैकड़ों साधु-साध्वियां सामने बैठे हैं। कौन कहां रहेगा? कौन कहां जाएगा? कौन किसके साथ रहेगा? अब तक किसी को पता नहीं है। जैसे ही मर्यादा-महोत्सव का दिन आएगा, सब निश्चित हो जाएगा कि मुझे कहां जाना है और कहां रहना है। जहां अहंकार और ममकार का विलय नहीं है—मेरा इसके साथ सम्बन्ध है, यह मेरा है, वह मेरा है—वहां कभी सामंजस्य नहीं होता। आचार्य भिक्षु ने शिष्य परम्परा को समाप्त कर दिया। कोई किसी का शिष्य नहीं है तब फिर मेरा कौन रहा? इसलिए हम इस पर ध्यान दें—हमारे अहंकार का विलय कितना हो रहा है, ममकार का विलय कितना हो रहा है। यदि अहंकार और ममत्व का विलय हो रहा है तो सामंजस्य स्थापित करने में बड़ी सुविधा हो जाती है। इसलिए इस प्रश्न पर प्रत्येक व्यक्ति को चिन्तन करना है, गहराई से सोचना है जिससे अपना जीवन शांतिपूर्ण रह सके, साथ वालों का जीवन शांतिपूर्ण रह सके और अच्छा काम किया जा सके।



जरूरी है भाषा का विवेक



जरूरी है भाषा का विवेक

दुनिया में मनुष्य को प्रभावित करने वाले अनेक तत्त्व हैं, उनमें दो प्रमुख तत्त्व हैं रूप और शब्द। मनुष्य को रूप प्रभावित करता है, शब्द प्रभावित करता है। इन दोनों में भी ज्यादा प्रभावित करता है शब्द। एक शब्द मनुष्य के मूड को बदल देता है।

एक व्यक्ति स्वामी विवेकानंद के पास आया, बोला—‘स्वामीजी! आप बार-बार कहते हैं कि मंत्र का जप करो। यह सब पाखण्ड है। मंत्र आखिर शब्द ही तो है। शब्दों में क्या रखा है।’

स्वामी विवेकानंद ने कहा—‘मूर्ख कहीं का। कितनी बकवास कर रहा है।’

यह सुनते ही वह व्यक्ति आवेश से तमतमा उठा—‘तुम कैसे संन्यासी हो, तुम्हें बोलने का भी विवेक नहीं है।’

स्वामी विवेकानंद बोले—‘अभी तो तुम कह रहे थे कि शब्दों में क्या पड़ा है और अभी एक शब्द सुनते ही इतने आवेश में आ गए।’

व्यक्ति को अपनी भूल का एहसास हो गया। वह स्वामी विवेकानंद के चरणों में प्रणत हो गया।

सुखी जीवन का मंत्र

शब्द का बहुत प्रभाव होता है। यदि हम सामुदायिक जीवन में होने वाले संघर्ष और तनाव के कारणों का विश्लेषण करें तो निष्कर्ष आएगा—पचहत्तर प्रतिशत कलह और संघर्ष शायद शब्द के कारण होते हैं। पचीस प्रतिशत दूसरे कारण भी हो सकते हैं।

पूज्य गुरुदेव ने व्यवहारबोध में बहुत सुन्दर लिखा है—

है निरवद्य मधुर हित वाणी,
कार्य साधिका कल्याणी।
विष भावित तलवार जीभ है,
वही सुधा की सहनाणी॥

१७८ पथ चुनें पर कौन-सा

जो भाषा निरवद्य होती है, मधुर और हितकर होती है, वह कल्याणी और कार्य को सिद्ध करने वाली होती है। मनुष्य की जीभ अमृत है और वही विष से भावित होने पर तलवार जैसी भी है।

इस दुनिया में मधुरता कहीं है तो वह जीभ में है और जहर कहीं है तो वह भी उसी जीभ में है। प्रत्येक व्यक्ति में यह विवेक होना चाहिए कि वाणी की मधुरता कैसे बढ़े? मिठास कैसे आए? यदि मुंह से कोई अपशब्द न निकले, कटु शब्द का प्रयोग न हो तो अनेक समस्याओं का उद्भव ही न हो।

प्रतिवर्ष यह संकल्प करना चाहिए—मेरे मुंह से एक भी अपशब्द नहीं निकलेगा, व्यंग्यात्मक शब्द नहीं कहूंगा, उपहासात्मक शब्द का प्रयोग नहीं करूंगा, अप्रिय शब्द नहीं बोलूंगा। यह संकल्प शांत एवं सुखी जीवन का एक मंत्र बन जाता है।

बोलने की कला

प्रत्येक व्यक्ति को बोलने की कला सीखनी चाहिए। अनेकांत दर्शन में बोलने की कला सिखाई गई है। कैसे बोलें? कब बोलें? सापेक्षता से बोलें। इस दुनिया में जो भी समझदार लोग हुए हैं, उनका वाक्-पाटव-कहने की युक्ति विलक्षण रही है। चाहे हम महामात्य अभयकुमार के प्रसंग पढ़ें, बुद्धिमान रोहक की घटनाएं देखें, बीरबल की हाजिरजवाबी देखें अथवा आचार्य भिक्षु की औत्पत्तिकी प्रतिभा को देखें। उनमें बोलने की कला का विकास था, वे इस प्रकार मधुर बात कहते कि बड़ी से बड़ी समस्या सुलझ जाती, सरल बन जाती। जितने भी बड़े विद्वान कवि हुए हैं, उन्होंने वाक्-पाटव से सफलता प्राप्त की है।

एक विद्वान राजा भोज की सभा में गया। नमस्कार कर राजा के पास बैठ गया। अमात्य और सामंत एक गरीब फटेहाल आदमी को राजा के पास वाली कुर्सी पर बैठे देखकर आश्चर्यमिश्रित क्षोभ से भर गए। राजा ने कहा—‘आगन्तुकों के लिए सामने वाला स्थान आरक्षित है। तुम यहां कैसे बैठे?’

विद्वान—‘राजन्! मैं आपका भाई हूं। मेरे लिए तो यही स्थान उपयुक्त है।’

राजा—‘मैं तुम्हें नहीं जानता। मेरे भाई कैसे हुए?’

विद्वान—‘आपदा मेरी माता है। सम्पदा आपकी माता है। आपदा और सम्पदा—दोनों बहिर्ने हैं इसलिए मैं आपका मौसेरा भाई हूं।’

आपदास्ति मम माता, तव माता च संपदा।
आपदसंपदे भगिन्यौ, तेनाऽहं तव बांधवः॥

पथ चुनें पर कौन-सा १७६

राजा उसके वाक्-पाटव से प्रभावित हो गया। राजा ने उसे यथोचित पुरस्कार ही नहीं दिया, राजसभा का सम्मानित सदस्य भी मनोनीत कर दिया।

कहने की एक युक्ति होती है, कला होती है। जो उस कला को जानता है, वह बिगड़े हुए काम को सुधार लेता है। जो इस कला को नहीं जानता, फूहड़ भाषा का प्रयोग करता है, उसका बनता हुआ काम भी बिगड़ जाता है। संस्कृत साहित्य में युक्तिपूर्ण कथ्य से जुड़ी अनेक घटनाओं का उल्लेख मिलता है।

युक्ति से मिलती है सफलता

एक विद्वान के विद्वत्तापूर्ण संभाषण से राजा प्रसन्न हो गया। उसने अधिकारियों से कहा—इस विद्वान को एक भैंस दे दी जाए। राजा का आदेश हो गया पर केवल राजा का आदेश होने से भी कभी काम नहीं बनता। बिचौलिए भी कम चतुर नहीं होते। अनेक बार सही व्यक्ति तक सही चीज नहीं पहुंचने देते। प्रधानमंत्री राजीव गांधी कहते थे—सरकार एक रुपया देती है, वह गरीब तक पहुंचते-पहुंचते पन्द्रह पैसा रह जाता है।’ ऐसा ही उस विद्वान के साथ हुआ। अधिकारियों ने एक मरियल सी भैंस देते हुए कहा—यह लो और जाओ।

विद्वान ने सोचा—राजा ने प्रसन्न होकर भैंस दी लेकिन अधिकारियों ने अच्छा नहीं किया। मुझे मरियल भैंस लेकर नहीं जाना है। विद्वान ने एक युक्ति खोज ली। राजसभा के बाहर भैंस को लेकर वहां खड़ा हो गया, जहां से राजा को सब कुछ दिखाई दे। वह भैंस के कान के पास जाकर बात करने लगा। राजा ने देखा—यह तो वही विद्वान है, जिसको मैंने भैंस देने के लिए कहा था। वह यहां क्या कर रहा है? राजा ने विद्वान को राजसभा में बुलाया, पूछा—‘भाई! वहां क्या कर रहे थे।’

विद्वान—‘राजन्! मैं भैंस से जरूरी बात कर रहा था।’

राजा—‘अरे! भैंस से क्या जरूरी बात हो सकती है?’

विद्वान—‘राजन्! आपने जो भैंस मुझे बखशीश में दी है, मैं उससे पूछ रहा था—तुम कब ब्याओगी, कब दूध देना शुरू करोगी।’

राजा—‘भैंस ने क्या कहा?’

विद्वान—‘राजन्! भैंस ने कहा कि तुम कितनी मूर्खता की बात करते हो। मेरे पति को महिषासुर ने कृत युग में देवी भवानी की बलि चढ़ा दिया। उस

दिन से मैं विधवा हूँ, वैधव्य धर्म का पालन कर रही हूँ। मेरे दांत टूट गए हैं, स्तन गल गए हैं। मैं इतनी बूढ़ी हो गई हूँ कि मेरे सींग भी टूट गए हैं। तुम पूछ रहे हो कि कब ब्याओगी, कब दूध दोगी? क्या तुम्हें यह पूछते हुए शर्म नहीं आती।'

राजा विद्वान की व्यथा को समझ गया। उसने तत्काल अपने सामने स्वस्थ और युवा भैंस देने का निर्देश दिया।

विद्वान ने एक युक्तिपूर्ण बात कही और उसे अच्छी भैंस मिल गई। युक्ति के साथ मधुर भाषा में कोई बात कही जाती है तो सफलता मिल जाती है। आप स्वयं इस तथ्य का अनुभव कर सकते हैं—कड़वी, रूखी, आक्रोश पैदा करने वाली जबान से सफलता मिलती है या मधुर और युक्तिपूर्ण बात से?

युक्तिपूर्ण एवं मधुर बात कहना सीखना हो तो मंत्री मुनि मगनलालजी स्वामी का उदाहरण सामने रखा जा सकता है। दीक्षा लेने के बाद हम पचीस-तीस वर्ष तक साथ रहे। मंत्री मुनि के मुख से किसी ने अपशब्द नहीं सुना, कटु शब्द नहीं सुना। कभी व्यंग्यात्मक बात नहीं सुनी। कभी-कभी कड़ाई से तो कह देते। कड़ाई से कहना अलग बात है। किन्तु अपनी बात इतनी शालीन भाषा में और मधुरता से कहते कि सुनने वाले को कभी अखरता नहीं। उनमें बोलने की कला थी। कब बोलना और कब न बोलना—इसका विवेक प्रखर था।

पूज्य कालूगणी के समय, पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी के समय हमने देखा—जब गुरुदेव उलाहना देते तब पुराने साधु-साध्वियां इस भाषा में बोलते—गुरुदेव! आपने बड़ी कृपा कराई, अमृत का प्याला पिला रहे हैं। इधर तो डांट और उलाहना मिल रहा है, उधर विनम्रता से यह कहा जाता कि अमृत की वर्षा हो रही है। सुनने वालों को भी लगता कि एक नई परम्परा है, शालीन परम्परा है। यह उचित नहीं माना गया कि सामने वाला उत्तेजना में आ जाए, आवेश में आ जाए।

यह स्वस्थ परम्परा रही कि गलती नहीं है तो भी उस समय सामने न बोले, विनम्र भाव से सुने। जब गुरु अपनी बात पूरी कर दें तब अवसर देखकर पूर्ण शालीनता, मृदुता एवं युक्ति के साथ अपनी बात निवेदित करे। इस शालीन परम्परा ने गुरु-शिष्य के मधुर सम्बन्धों को चिरजीवी बनाया है।

पथ चुनें पर कौन-सा १८१

बदल जाती है चिन्तनधारा

युक्तिपूर्ण वचन कभी-कभी मनुष्य की चिन्तनधारा को बदल देता है। उससे मनुष्य को ऐसी दिशा मिलती है कि जीवन में उजाला अनुभव होता है।

एक प्राचीन कथा है। नट-मंडली करतब दिखाने के लिए शहर में आई। राजभवन के रंगमंच पर नृत्य का आयोजन निश्चित हो गया। निर्धारित समय रंगमंच जनता से खचाखच भर गया। जनता बिना बुलाए उमड़ पड़ी।

जनता आई बिना बुलाई,
आत्मा पर्वत, मन है राई।
रंगभूमि में रंग खिला है,
विस्मित मन जनवृंद मिला है,
नाटक की छवि मनहर छाई॥

सभामंडप में नट-मंडली नृत्य का प्रदर्शन कर रही थी। राजा स्वयं नृत्य का शौकीन था। वह तन्मयता से नटों के करतब देख रहा था। नट भी बहुत कुशल था। वह शरीर पर डोरी को बांध कर आकाश में अधर में करतब दिखा रहा था। सभामंडप दर्शकों से खचाखच भरा था। 'धन्य' 'धन्य' की ध्वनि के साथ जनता ने नट के करतब की सराहना की—

नट जनता का मन हरसाए,
नए नए करतब दिखलाए।
धन्य धन्य की ध्वनि लहराई॥

करतब दिखाते-दिखाते रात्रि के तीन पहर बीत गए। चौथा पहर शुरू हो गया। नृत्य चले और उपहार/दान मिलता रहे तो उत्साह बना रहता है। वह न मिले तो उत्साह मंद हो जाता है।

बीते तीन पहर पल भर में
तनिक शिथिलता आई स्वर में
पर ना दान घटा गहराई॥

नृत्य का प्रदर्शन अंतिम चरण पर था पर कोई दान देने आगे नहीं आया। राजा को नृत्य बहुत बढ़िया लगा पर उसने दान नहीं दिया। जब राजा दान न दे तो दूसरे कैसे दें? सब राजा की ओर निहार रहे हैं पर राजा मौन बना हुआ है।

१८२ पथ चुनें पर कौन-सा

राजा जब ना हाथ बढ़ाए,
जनता कैसे आगे आए,
घोर समस्या सम्मुख आई।

नृत्य करते-करते नट परेशान हो गया, थककर चूर हो गया, उसने सोचा—आज श्रम निष्फल जा रहा है, कोई दान नहीं मिल रहा है। राजा भी कंजूस बन गया है। वह निराश स्वर में बोल उठा—

यह जीवन है परछाई,
परछाई कहां सचाई?
यह जीवन है परछाई।
नट बोला कब तक नाचूंगा,
कब तक रामायण बांचूंगा,
सबमें है जड़ता छाई।
यह जीवन है परछाई॥
थक करके मैं चूर हुआ हूं
रुकने को मजबूर हुआ हूं,
यह तन लेता है अंगड़ाई।
यह जीवन है परछाई॥

नटिनी की ओर उन्मुख होकर नट बोला—मैं कब तक नृत्य करता रहूंगा। चारों ओर जड़ता छाई हुई है। मैं थक कर चूर हो गया हूं, रुकने को विवश बन गया हूं। मेरा तन अब अंगड़ाई ले रहा है।

नट ने गहरा निःश्वास छोड़ते हुए कहा—प्रिये! यह विजय की वेला है। तुम कोई ऐसी ताल बजाओ, जिससे विजयश्री मिल जाए।

कोई ऐसी ताल बजाओ,
प्रिये! विजय को हाथ बढ़ाओ,
अब समुचित बेला आई।
यह जीवन है परछाई॥

नटिनी दान पात्र हाथ में लिए खड़ी थी। वह नट को उत्साहित करते हुए बोली—तुम यह क्या कर रहे हो? क्यों माया में उलझ रहे हो? क्या तुम्हें मतिभ्रम हो गया है?

पथ चुनें पर कौन-सा १८३

ओ प्रियवर! क्यों भूल रहा है
माया में ही झूल रहा है।
क्यों अब मति भरमाई॥

प्रियवर! यह निराशा का क्षण नहीं है। तट पर आकर चरण क्यों रुक गए हैं? जय बेला में शीश क्यों झुक गया है? लगता है—तुम्हारी आंखें चुंधिया रही है।

तट पर आकर चरण रुका है,
जय बेला में शीश झुका है,
लगता आंखें चुंधियाई।
यह जीवन है परछाई॥

नटिनी ने नट को उत्प्रेरित करते हुए कहा—अब रात प्रायः बीत चुकी है, सूरज उगने वाला है, नृत्य का समय समाप्त हो रहा है इसलिए अब प्रमाद मत करो।

बीत गई है रात प्रायः अब,
'मा प्रमादी निशात्यये' अब,
वर नट ने ताल बजाई।
यह जीवन है परछाई॥

इस प्रेरणा से नट का उत्साह द्विगुणित हो गया। उसके नृत्य में पुनः जोश आ गया।

'रात बीत गई है। अब प्रमाद मत करो'—इस युक्तिपूर्ण वचन ने वातावरण को बदल डाला। राजकुमार अपने आसन से उठा और बहुमूल्य हार दानपात्र में डाल दिया। राजकुमारी आगे बढ़ी और अपना बेशकीमती हार उपहत कर दिया। नृत्य देख रहे एक संन्यासी ने अपना रत्नकंबल दान कर दिया। उस युग में रत्न-कंबल सवा लाख स्वर्ण मुद्राओं का होता था।

राजा यह देख अवाक् रह गया। क्षोभ और आवेश के साथ उसने कहा—यह क्या कर रहे हो? मुझसे पहले दान देने की विधि नहीं है। पहले राजा देता है, फिर दूसरे देते हैं। इस विधि का अतिक्रमण क्यों किया?

राजकुमार उठा नटिनी को हार समर्पित कर आया,
राजकुमारी का भी हार समर्पित कर मन हरसाया।

१८४ पथ चुनें पर कौन-सा

मुनि ने बढ़िया कंबल दे नृप को विस्मय में डाल दिया,
उसने तीनों को पूछा तुमने क्यों ऐसा काम किया?

राजकुमार बोला—‘पिताश्री! इसके एक वाक्य ने मुझे एक महान् अपराध से बचा लिया। उसे बताते हुए भी संकोच हो रहा है। मेरे मन में यह भावना प्रबल बन गई—पिताश्री बूढ़े हो गए हैं, मर नहीं रहे हैं। ये कब मरें और कब मैं राजा बनूं। मैं आपको मार कर राजा बनने की बात सोच रहा था। आज जैसे ही यह वाक्य सुना—रात बीत गई है, सूरज उगने वाला है, इसलिए प्रमाद मत करो—मेरा हृदय अनुताप से भर गया। इस वाक्य ने मुझे सन्मार्ग पर ला दिया। मुझे एक अच्छा बोधपाठ मिल गया। इसलिए मैंने हार उपहार में दे दिया।’

राजकुमारी ने कहा—‘पिताश्री! मैंने सोचा—मैं इतनी बड़ी हो गई हूं फिर भी मेरी शादी की बात नहीं सोच रहे हैं। मेरे मन में बहुत अन्यथा भाव आ गए। मैं किसी के साथ भागने की तैयारी कर रही थी। इस वाक्य ने—रात बीत गई है, अब थोड़ा समय बचा है, प्रमाद मत करो—मुझे उबार लिया। मेरी मति बदल गई।’

संन्यासी ने कहा—‘मैं सोच रहा था कि साधना करते-करते इतने वर्ष बीत गए। क्या हुआ? मैं साधुपन को छोड़ दूं, गृहस्थ बन जाऊं। ‘मा प्रमादी निशात्यये’—इस उक्ति ने मेरी चिन्तनधारा बदल दी। मैंने साधना को त्यागने का विचार छोड़ दिया। इस वचन ने साधना में लीन बने रहने की प्रेरणा दी है।’

राजा मया नापि च मारयिष्यते,
पलायनं नैव मया करिष्यते।
न हार्यते साधुपदं सुखावहं,
प्राप्ता वयं बोधमनुत्तरं ततः॥

राजकुमार, राजकुमारी और संन्यासी के हृदय-परिवर्तन की गाथा सुनकर राजा अवाक् रह गया। उसने सोचा—इस युक्तिपूर्ण वाक्य ने मेरा भी कितना उपकार किया है। मुझे जीवन-दान मिला है, मेरी अपकीर्ति होने से बची है। यदि मेरी मौत मेरे पुत्र के हाथों होती, यदि मेरी पुत्री किसी प्रेमी के साथ भाग जाती तो मेरी क्या स्थिति होती?

राजा को भी एक बोधपाठ मिल गया। उसने नट को बहुत उपहार दिए।

एक युक्तिपूर्ण वाक्य ने कितना काम किया, कितने व्यक्तियों की जीवनधारा को बदल दिया।

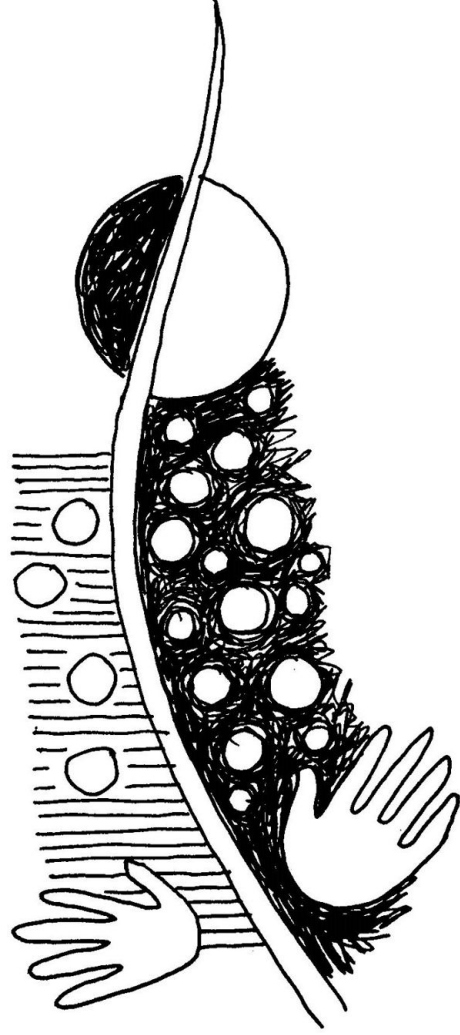
पथ चुनें पर कौन-सा १८५

बोलने की शैली सीखें

जरूरी है भाषा का विवेक। बोलने का एक तरीका होता है। किसी ने कहा—भाई! यह काम कर लो। उत्तर का एक प्रकार यह होता है—‘नहीं, मैं नहीं करूंगा। मुझे समय नहीं है।’ उत्तर का एक तरीका यह भी हो सकता है—‘आपने जो कहा, वह ठीक है। पर अभी मेरे सामने यह समस्या है, कुछ कार्य अवशेष हैं, आप चाहें तो थोड़ी देर ठहरकर कर लूं।’ विनम्रता और मृदुता के साथ इस प्रकार बात कही जाती है तो स्थिति बदल जाती है। यह बोलने की कला सीखनी चाहिए।

तेरापंथ धर्मसंघ में इस कला का विकास हुआ है। तेरापंथ का कोई साधु-साध्वी है और वह बोलने की इस कला को नहीं जानता है तो मैं मानता हूं कि उसमें एक कमी है। इसलिए कि वाणी का विवेक जितना भगवान महावीर ने दिया, उतना शायद अन्यत्र दुर्लभ है। उत्तराध्ययन सूत्र का पहला अध्ययन देखें। दसवेआलियं सूत्र का सातवां अध्ययन देखें, नौवां अध्ययन देखें, आचारवाद के सूत्रों को देखें—वाणी का विवेक भरा हुआ है। हमारे आचार्यों ने उस विवेक को पुष्ट किया है। आचार्य भिक्षु के युग से भाषा-विवेक की जो परम्परा बनी, उससे तेरापंथ के साधु-साध्वियों की बोलने की एक अलग शैली विकसित हो गई। भाषा विवेक पर बहुत बल रहा। जयाचार्य ने दो गीतिकाएं बनाई—‘खोडीली प्रकृति रो धणी’, ‘चोखी प्रकृति रो धणी’। गीत के पदों से इस प्रकार अनुशासित और शिक्षित किया कि बोलने की कला प्रतिष्ठित हो गई। कैसा विनम्र व्यवहार हो? कैसी मृदु-मधुर वाणी हो, कैसे निरवद्य भाषा का प्रयोग हो? हम उसको गहराई से पढ़ें, उसका मूल्य आंके।

यदि किसी को सफलता का जीवन जीना है, अच्छा जीवन जीना है, शांति का जीवन जीना है तो उसे वाणी का सम्यक् प्रयोग सीखना होगा। पहली बात बोलने की युक्ति—कैसे बोलें। दूसरी बात—वाणी में मिठास, कभी कटुता न आए। एक ओर यह हमारी भाषा समिति है तो दूसरी ओर सफलता की समिति है, शांतिपूर्ण सहवास की समिति है। इसको ठीक से समझ लें, सम्यक् प्रयोग करें तो भाषा-विवेक का यह सूत्र आपके जीवन के लिए बहुत उपयोगी और लाभदायक हो सकता है।



अकेले न चमकें



अकेले न चमकें

सामान्यतः हर व्यक्ति में कषाय मिलता है। मात्रा का भेद हो सकता है—किसी में ज्यादा और किसी में कम, किसी का मंद और किसी का उपशांत। यह अंतर तो हो सकता है पर कषाय सबमें विद्यमान रहता है।

क्रोध और अहंकार—ये दो कषाय हैं। सामुदायिक जीवन में क्रोध जितनी बाधा डालता है, अहंकार शायद उससे अधिक बाधा डालता है। तोड़ने वाली शक्ति है अहंकार। क्रोध भी ज्यादा अहंकार के कारण होता है। अहंकार कम है, क्रोध कम हो जाएगा। अहंकार ज्यादा है, क्रोध भी ज्यादा आएगा। 'मेरी बात नहीं मानी।' 'मैंने कहा, उसने ध्यान नहीं दिया।' 'यह मेरा छोटा भाई है, मेरी पत्नी है, मेरा पुत्र है और इसने मेरा कहना नहीं माना।' भीतर का अहंकार जाग जाता है और वह क्रोध को उभार देता है।

वह होता है विनीत

मिलनसार होना सामुदायिक जीवन में बहुत उपयोगी है किन्तु अहंकार व्यक्ति को मिलनसार बनने नहीं देता। जो परस्पर मिल जाते हैं, प्रेम और सौहार्द से रहते हैं, उनका सहवास बहुत अच्छा होता है। आचार्य भिक्षु ने जीवन के अंतिम समय में यह अमूल्य शिक्षा दी थी—सगला रे सगला साध नै साधवी, राखज्यो हेत विशेष—साधु साध्वियो! सब परस्पर विशेष हेत रखना, सब परस्पर मिलकर रहना। आचार्य भिक्षु ने मिलनसारिता और अलग-अलग रहने की दो उपमाएं विनीत और अविनीत के प्रसंग में दी—जो विनीत होता है, वह चावल में दाल की तरह मिल जाता है। जो अविनीत होता है, वह दाल में 'कोकला' जैसे अलग रह जाता है। खटाई के लिए दाल में 'कोकला' अथवा 'काचर' डालते हैं। वह अलग ही रह जाता है, किसी से मिलता नहीं है।

विनीत होने का मतलब कोरा झुकना नहीं है। जिसने अपने अहंकार पर विजय पा ली, जो अनुशासित हो गया, वह विनीत होता है। जहां अहंकार पर विजय है वहां व्यक्ति किसी के साथ मिल जाता है, कोई कठिनाई नहीं होती।

१८८ पथ चुनें पर कौन-सा

जिसमें अहंकार प्रबल है, वह अविनीत है, वह किसी के साथ सामंजस्य नहीं कर पाता। पूज्य गुरुदेव ने व्यवहार-बोध में इस विषय को बहुत सुंदर ढंग से अभिव्यक्त किया है—

अपना ही वर्चस्व रहे,
एकांगी चिन्तन घातक है,
तैल बिन्दु जल पर छा जाए,
वैसे छा जाना पातक है,
क्षीर नीर सम मिलना जाने
वही सचेतक चातक है॥

व्यक्तित्व के चार प्रकार

स्थानांग सूत्र में व्यक्तित्व के संदर्भ में एक चतुर्भंगी निर्दिष्ट है—

एगे अट्ठकरे णो माणकरे।
एगे माणकरे णो अट्ठकरे।
एगे माणकरे वि अट्ठकरे वि
एगे णो माणकरे णो अट्ठकरे।

चार प्रकार के व्यक्ति होते हैं—

एक व्यक्ति बहुत काम करता है, प्रयोजन सिद्ध करता है पर अभिमान नहीं करता।

एक व्यक्ति अहंकार बहुत करता है पर काम कुछ नहीं करता।

एक व्यक्ति काम करता है, प्रयोजन सिद्ध करता है और अहंकार भी करता है।

एक व्यक्ति न किसी काम का होता है और न अहंकार करता है।

प्रत्येक सांसारिक व्यक्ति में थोड़ा-बहुत अहंकार रहता है। यह तो नहीं मानना चाहिए—अहंकार का सर्वथा विलोप हो गया, वीतराग बन गया। व्यक्ति प्रयोजन सिद्ध करता रहे, काम करता रहे और साथ में अहंकार भी हो तो बहुत समस्या पैदा नहीं होती। समस्या तब जटिल होती है जब व्यक्ति काम नहीं करता, केवल अहंकार का प्रदर्शन करता है। वह चाहता है—केवल मेरा ही वर्चस्व रहे। यह मनोवृत्ति घातक है।

पथ चुनें पर कौन-सा १८६

छाएं तो अपनी आत्मा पर

मेरे सामने अग्रिम पंक्ति में साधु-साध्वियां, समणियां बैठी हैं। इनमें अग्रणी भी हैं, सहगामी भी हैं। तीन, चार अथवा पांच का सिंघाड़ा होता है। उनमें एक अग्रणी होता है और एक नंबर दो का होता है। वह सोचता है कि पूरे सिंघाड़े में मेरा ही वर्चस्व रहे। मैं चाहूं, वैसा हो। मैं चाहूं उतना विहार हो। मैं चाहूं वहां रहें। मेरी इच्छा चले, मेरा वर्चस्व बना रहे। जहां यह वृत्ति पनपती है, वहां व्यक्ति जल से भरे पात्र में बिन्दु की तरह छा जाना चाहता है। यह छाने की वृत्ति उचित नहीं है। इस वृत्ति को छोड़ना है। कोई किसी पर छाए नहीं। यदि किसी को छाना है तो वह अपनी आत्मा पर छाए, और किसी पर न छाए।

युग कितना बदल गया

एक संस्कृत कवि ने सूर्य की आलोचना करते हुए लिखा—सूरज! तुम अच्छे नहीं लगते। एक उल्लू यह कह सकता है कि सूरज! तुम मुझे अच्छे नहीं लगते। मनुष्य क्यों कहेगा यह बात? पर कवि विचित्र होता है, उसके सोचने का कोण भी दूसरा होता है।

तिमिरलहरीगुर्वीमुर्वी करोतु विकस्वरां,
हरतु नितरां निद्रामुद्रां क्षणात् भविनां नृणां,
तदपि तरणे तेजःपुंजः प्रियो न ममैष ते,
किमपि तिरयन् ज्योतिश्चक्रं स्वजातिविराजितम्॥

कवि ने कहा—मैं गुण-द्वेषी नहीं हूं, तुम्हारी विशेषताएं जानता हूं। तुम अंधकार से एकाकार बनी हुई पृथ्वी को विकस्वर कर देते हो, प्रभास्वर बना देते हो, चारों ओर प्रकाश फैला देते हो। मैं यह भी जानता हूं—तुम रात में सोए हुए लोगों को जगा देते हो।

क्या यह बात आज लिखी जा सकती है? वह एक युग था, जब लोग सोचते थे—हम सूरज को उगाएं, सूरज हमें न उठाए। आज सूर्योदय से पूर्व कितने लोग उठते हैं? आज तो यह सोचते हैं कि सूरज उग जाए तो भी हम सोते रहें। आजकल लोग नौ-दस बजे उठते हैं, ग्यारह-बारह बजे उठते हैं। चतुर्मास में एक भाई सेवा में आया, मैंने पूछा—कब उठते हो? उसका उत्तर था—‘ग्यारह बजे।’ यह कोई जागने का समय होता है? ग्यारह बजे जाग्रत् होगा तो नाश्ता कब करेगा? आज की बदली जीवनशैली ने अनेक प्रश्न खड़े किए हैं, समस्याएं पैदा की हैं।

१६० पथ चुनें पर कौन-सा

कवि ने जिस युग में यह श्लोक रचा था, उस युग में लोग उगते हुए सूरज का दर्शन करते थे। सूर्योदय से पूर्व जागरण का समय होता था। इसीलिए कवि ने कहा—तुम सबकी नींद उड़ा देते हो। चोरी आदि का डर मिट जाता है, लोग अभय बन जाते हैं। इतनी विशेषताओं के बाद भी तुम मुझे अच्छे नहीं लगते। इसका कारण यह है—**स्वजातिविराजितम्**—अपनी जाति के जितने ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि हैं, उनको ढक कर अकेले ही चमकना चाहते हो। इसलिए तुम मुझे अच्छे नहीं लगते।

समता का व्यावहारिक प्रयोग

कवि ने बहुत मर्म की बात कह दी। जहां यह वृत्ति होती है, अपने वर्चस्व, अपने बड़प्पन के प्रदर्शन की भावना होती है वहां सहवास अच्छा नहीं हो सकता। भगवान महावीर ने समता का जो सिद्धान्त दिया, उसका व्यावहारिक प्रयोग होना चाहिए। यह नहीं हो सकता कि एक ओर 'सब जीव समान हैं' स्वीकार करे, दूसरी ओर साथ रहने वालों को भी समान न माने। व्यवहार में कभी-कभी इस प्रकार के प्रसंग सुनते हैं—व्यक्ति चौरासी लाख जीव योनि से खमतखामणा कर लेता है, पर अपने भाई से खमतखामणा नहीं करता। यह समता के सिद्धान्त का दुरुपयोग है। या तो हम समता के सिद्धान्त की बात ही न करें, 'सब आत्मा समान है'—इस बात को छोड़ दें। यदि समता की बात करें तो उसका पहला प्रयोग अपने आस-पास रहने वालों पर होना चाहिए।

पश्चिम रात्रि में स्वाध्याय का क्रम चल रहा था। प्रसंग आ गया करुणा का। केवल सम्यक् दृष्टि में नहीं, केवल श्रावक में नहीं, महाव्रती मुनि में भी करुणा का विकास होना चाहिए। सबको संभाले, आसपास में कोई बीमार हो और उसकी उपेक्षा हो जाए—यह करुणा नहीं है। यह तो क्रूरता का प्रदर्शन हो गया।

महानता पूज्य गुरुदेव की

समता का सिद्धान्त है—सबके प्रति समान दृष्टिकोण और समानता का व्यवहार। अपना वर्चस्व न बढ़ाना, अपने बड़प्पन का प्रदर्शन न करना और छा जाने की भावना का न होना बहुत बड़ी बात है। यह विनम्रता हम कहां से सीखें? अगर कोई उदाहरण देना हो तो वर्तमान में पूज्य गुरुदेवश्री तुलसी से बड़ा उदाहरण सामने नहीं है। जहां एक ओर छा जाने की बात है—मेरा ही हुकुम चले, सब कुछ मेरा ही हो वहां दूसरी ओर पूज्य गुरुदेव की महानता को

पथ चुनें पर कौन-सा १६१

देखें। प्रातःकालीन प्रवचन चल रहा था। कोई खास प्रसंग भी नहीं था। गुरुदेव ने कहा—‘बताओ, अभी किसका बरतारा चल रहा है? और स्वयं ही इस प्रश्न का उत्तर दे दिया—अभी महाप्रज्ञ का बरतारा चल रहा है।’

कहां वर्चस्व जमाने की बात और कहां सब कुछ शिष्य को सौंप कर निश्चिन्तता की अनुभूति। मैंने अनेक बार निवेदन किया—‘गुरुदेव! मैं औरों के लिए आचार्य हूं पर आपके लिए तो शिष्य हूं। जैसे पहले था, वैसा आज हूं। उसमें कोई फर्क नहीं है।’ गुरुदेव बार-बार यह संदेश देते रहे—‘अब मैं अनुशास्ता नहीं हूं, अब महाप्रज्ञ अनुशास्ता हूँ।’ यह बोधपाठ वह व्यक्ति दे रहा है, जिनके पास इतनी आत्मिक सत्ता है, इतनी विशेषता है और इतना ही व्यापक समाज में प्रतिष्ठित है।

आज ही एक घटना सुनी। सुरेन्द्र चोरड़िया दिल्ली से मर्यादा-महोत्सव व्यवस्था समिति का कुछ सामान और चित्र लेकर आ रहा था। दिल्ली-हरियाणा की सीमा पर चैकिंग होती है। कार को रुकने का संकेत किया। ड्राइवर ने ध्यान नहीं दिया। वह उसी गति से कार चलाता रहा। पुलिस को आशंका हुई, पीछा किया और कार को रोका। ड्राइवर को डांट कर नीचे उतार दिया। वह घबरा गया। सुरेन्द्र चोरड़िया ने मर्यादा-महोत्सव का पोस्टर और पूज्य गुरुदेव का फोटो दिखाया। न कोई जांच, न कोई परीक्षण। पुलिस अधिकारी ने कहा—‘आचार्य तुलसी के शिष्य हो, चले जाओ।’

विनम्रता से बढ़ती है गरिमा-महिमा

जन-मानस में उनके कार्य का इतना प्रभाव है, उनके आन्दोलन का इतना वर्चस्व है पर उन्होंने कभी अपना वर्चस्व दिखाया नहीं। यह तथ्य है कि जो व्यक्ति जितना महान् बनता चला जाएगा, उसमें उतनी ही विनम्रता, उतना ही अनाग्रह और उतनी ही मिलनसारिता का दर्शन होगा। जिस व्यक्ति में छुटपन होता है, क्षुद्रता होती है और जो बड़प्पन का प्रदर्शन करता है, उसमें यह वृत्ति जागेगी कि मेरा ही वर्चस्व रहे।

आचार्य पद का विसर्जन वर्चस्व के विसर्जन का महान् प्रयोग है। गुरुदेव के पास चतुर्मास आदि की प्रार्थना लेकर लोग जाते हैं तो उनका एक ही उत्तर होता है—महाप्रज्ञ के पास जाओ, वहां प्रार्थना करो। अब जो करना है, वही करेंगे। हमने इतिहास में पढ़ा है—श्रीमज्जयाचार्य के पास कोई आता तो वे कहते थे—‘मघजी के पास जाओ।’ पूज्य गुरुदेव ने सार्वजनिक रूप में विस्तार

१६२ पथ चुनें पर कौन-सा

से यह कार्य किया है। हम चिन्तन करें—इससे उनका गौरव कितना बढ़ा है। हम भी इतनी विनम्रता सीखें। तेरापंथ की यह परम्परा रही है—जो व्यक्ति जितना विनम्र रहेगा, उसकी उतनी ही गरिमा-महिमा बढ़ेगी। जहां छा जाने की बात आती है, वहां कठिनाई होती है।

घुलना मिलना सीखें

व्यवहार-बोध में बहुत सुंदर उदाहरण दिया गया—तेल की बूंद की तरह फैलने का प्रयत्न मत करो, क्षीर-नीर की तरह मिलना सीखो। जो दूध-पानी की तरह मिलना जानता है, वही सचेतन चातक है। चातक और चकोर—ये दो पक्षी कवियों को बहुत प्रिय रहे हैं। संस्कृत, पिंगल, राजस्थानी साहित्य में चातक पर बहुत लिखा गया है। चातक चतुर होता है, सचेतन होता है। वह एक ध्यान रखता है। जो क्षीर-नीर की तरह मिलना जानता है, वह चतुर और सचेतन होता है।

एक युवक संन्यासी के पास आया, बोला—‘महाराज! मन में थोड़ी बेचैनी रहती है। आप समाधान दिराएं।’

संन्यासी—‘बेचैनी का कारण क्या है?’

युवक—‘मैं पहले सुखी था, शादी होने के बाद बेचैनी बढ़ गई है।’

संन्यासी—‘क्या तुम्हारी पत्नी अच्छी नहीं है।’

युवक—‘महाराज! पत्नी बहुत अच्छी है, आकार-प्रकार, रंग-रूप—सब सुंदर है।’

संन्यासी—‘क्या वह विनीत नहीं है?’

युवक—‘महाराज! विनम्र भी बहुत है।’

संन्यासी—‘फिर कठिनाई क्या है?’

युवक—‘महाराज! कठिनाई एक ही है कि मैं उसे जैसे ढालना चाहता हूं, वैसे वह ढलती नहीं है।’

प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है—मैं खाऊं वैसा खाए, मैं बोलूं वैसा बोले, मैं कपड़े पहनूं वैसा पहने। जैसा मुझे अच्छा लगे, वैसा करे। यह जो अहं होता है, वही समस्या पैदा करता है। संन्यासी ने समझ लिया—दोष पत्नी का नहीं है। इसका अहंकार ही समस्या बना हुआ है। संन्यासी ने तत्काल दो बाल्टी पानी, एक तेल की शीशी और एक कटोरी दूध मंगाया। संन्यासी ने पानी से

पथ चुनें पर कौन-सा १६३

भरी एक बालटी में तेल की दो बूंदें डाली और दूसरी बालटी में एक कटोरी दूध। संन्यासी मौन भाव से उन दोनों बालटियों के पानी को निहारने लगे।

युवक बोला—‘महाराज! मेरी समस्या का समाधान.....?’

संन्यासी—‘युवक! मैंने तुम्हारी समस्या का समाधान कर दिया।’

युवक—‘महाराज! क्या समाधान किया? मैं तो कुछ नहीं समझ पाया।’

संन्यासी—‘युवक! देखो। तेल की दो बूंद डाली, पानी पर छा गई। एक कटोरी दूध डाला, वह घुल-मिल गया। यदि तुम्हें शांतिपूर्ण सहवास करना है, शांति से जीवन जीना है तो तेल की बूंद बनकर छाओ मत, दूध में पानी की तरह घुल-मिलकर रहना सीखो।’

युवक को एक बोधपाठ मिल गया। उसने तैल बिन्दु की तरह न छाने का निश्चय किया। उसने हुकुम चलाना, रोब जमाना, ठकुराई करना छोड़ दिया। उसने घुल-मिल कर रहना शुरू कर दिया और उसका जीवन सुखी बन गया।

शांत सहवास के लिए जरूरी है कि हम घुलना-मिलना सीखें। रोब न जमाएं, अपना वर्चस्व दिखाने का प्रयत्न न करें। परस्परता को बढ़ाएं। बहुत अच्छा शब्द है परस्परता। दोनों ओर से बीच में कोई अवरोध न हो तो परस्परता हो सकती है। एक ओर से भी अवरोध आया तो परस्परता नहीं हो सकेगी।

अर्थ प्रेम का

मिलाने वाली शक्ति है स्नेह, प्रेम। लोग प्रेम की बात तो बहुत करते हैं पर प्रेम का अर्थ क्या है? प्रेम का अर्थ है स्व से ऊपर उठ जाना, अपने स्वार्थ से ऊपर उठ जाना। अपने स्वार्थ से ऊपर न उठे तो प्रेम हो नहीं सकता। प्रेम में द्वैत नहीं रहता, अद्वैत हो जाता है। जहां अद्वैत होता है, वहां भेद नहीं रहता। स्वार्थ से ऊपर उठकर आत्मीय बन जाना, उसका नाम है प्रेम। जहां स्वार्थ है, वहां प्रेम होता ही नहीं है और कहीं हो जाता है तो टिकता नहीं है।

हम इस बात को सीखें कि तैल बिन्दु बनकर न छाएं, दूध-पानी की तरह घुल मिलकर रहें। इस स्थिति का विकास होता है तो सामुदायिक जीवन अच्छा होता है। चाहे व्यक्ति परिवार में रहे, संगठन में रहे, यदि घुल-मिलकर रहना सीख जाए, एकाकार बन जाए तो कोई समस्या नहीं होती। उदासी, बेचैनी, कलह, संघर्ष आदि स्थितियां नहीं बनतीं। जहां अलगाव बना रहता है, एक व्यक्ति छा जाना चाहता है, सबसे ऊपर रहना चाहता है, वहां समस्या जटिल बनती है।

१६४ पथ चुनें पर कौन-सा

उदात्त परम्परा

हम तेरापंथ की आचार्य-परम्परा को देखें। प्रत्येक आचार्य ने संघ को अपने साथ-साथ उठाने का प्रयत्न किया है। कोई आचार्य अकेला नहीं चमका। उसने पूरे संघ को आगे बढ़ाया है। इसी वर्ष की घटना है। हमारी समणियां गुजरात यात्रा से आईं। उन्होंने बताया कि वहां हमें अन्य सम्प्रदाय की साध्वियां मिलीं। साध्वियों ने पूछा—आपकी ट्रेनिंग कहां होती है? उन्होंने उत्तर दिया कि गुरु स्वयं हमें पढ़ाते हैं। साध्वियों ने आश्चर्य के साथ कहा—क्या आपके गुरु आपको पढ़ाते हैं? हमें तो गुरु नहीं पढ़ाते।

अनेक बार इस प्रकार की वार्ता सुनी—यदि हम पढ़ा देंगे तो सब हमारे बराबर हो जाएंगे फिर हमारा क्या महत्त्व रहेगा? यदि पूज्य कालूगणी यह सोचते, आचार्यश्री तुलसी यह सोचते तो आज तेरापंथ के साधु-साध्वियां केवल पात्र ढोने वाले ही रहते, बहुत ज्यादा उपयोगी नहीं हो पाते।

एक बार किसी अच्छे श्रावक ने गुरुदेव से कहा—‘गुरुदेव! आप इनको पढ़ा रहे हैं, इतना आगे बढ़ा रहे हैं। इस बारे में आपने कुछ चिन्तन किया या नहीं?’

गुरुदेव बोले—‘कैसा चिन्तन?’

वह बोला—‘ये पढ़कर आपके बराबर हो जाएंगे तब समस्या नहीं होगी?’

गुरुदेव—‘पूज्य कालूगणी से हमें यह बोधपाठ मिला है कि संघ का प्रत्येक साधु इतनी योग्यता प्राप्त कर ले कि उसे आचार्य बनाया जा सके। साथ में यह भी स्पष्ट रहे कि पद के लिए कोई उम्मीदवार न बने। इतना योग्य और युक्त बनाना है।’

श्रावक—‘क्या आपको इनसे कोई खतरा नहीं लगता।’

गुरुदेव—‘नहीं, मुझे इनसे कोई खतरा नहीं है।’

बहुत व्यक्ति इस चेतना को नहीं जगा पाते कि सबको उठाना है, सबको आगे बढ़ाना है। तेरापंथ की यह उदात्त परम्परा रही है कि आचार्यों ने शिष्यों को आगे बढ़ाया है, उन्नति का पथ दिया है इसीलिए आज हमारे संघ में सैकड़ों प्रबुद्ध साधु-साध्वियां हैं। मैंने जैन विश्व भारती में पूज्य गुरुदेव से कहा था—‘आपने जिस धर्मसंघ का नेतृत्व मुझे सौंपा है, वह इतना प्रबुद्ध है कि हम बहुत बड़ा काम कर सकते हैं।’ तेरापंथ के आचार्य को जैसा संघ मिलता है, वैसा संघ सौभाग्य से ही किसी को मिल सकता है। आज तो कोई उदाहरण

पथ चुनें पर कौन-सा १६५

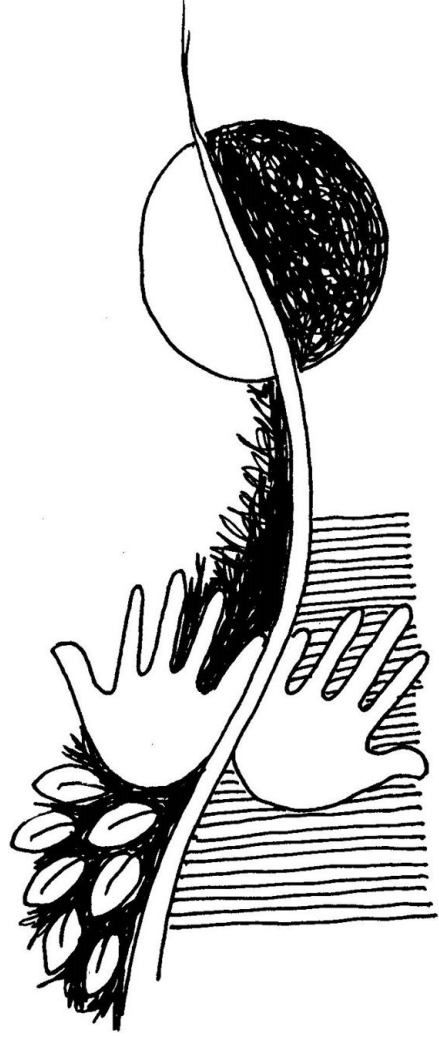
मेरे सामने नहीं है। यह परिणाम किसका है? यह परिणाम है उदार नीति का, सबको आगे बढ़ाने की नीति का। सब आगे बढ़ें, सब चमकें। अकेला कोई न चमके। आचार्य भी अकेला न चमके। सब चमकते हैं तो संघ चमकता है। हम कल्पना करें—यदि आचार्य तुलसी अकेले ही चमकते तो क्या होता? उन्हें शक्ति और सामर्थ्य—दोनों मिले, वे बहुत आगे बढ़ जाते पर आखिर क्या होता? मोर अपने शरीर को देखता है तो बहुत खुश होता है पर अपने पैरों को देखता है तो उसे कैसा लगता है?

शक्ति सम्पन्नता का रहस्य-सूत्र

डाबड़ी गांव में किसान सम्मेलन था। लोकनायक जयप्रकाश नारायण आए। हजारों किसान उपस्थित थे। उस समय तक माइक का प्रयोग विहित नहीं था। जयप्रकाशजी ने कहा—आचार्यश्री कैसे बोलेंगे? वे तत्काल खड़े हुए और माइक आचार्यश्री के सामने रख दिया। गुरुदेव ने कहा—जयप्रकाश बाबू! अभी आप आग्रह न करें। इस संदर्भ में हम भीतर वार्ता करेंगे। जयप्रकाशजी समझदार व्यक्ति थे, उन्होंने तत्काल माइक दूर कर दिया।

कार्यक्रम के पश्चात् आभ्यन्तर कक्ष में जयप्रकाशजी के साथ चर्चा हुई। गुरुदेव ने कहा—जयप्रकाश बाबू! मैं मानता हूँ कि माइक पर बोलने में कोई दोष नहीं लगता। पर जब तक यह बात हमारे साधु संघ में चर्चित न हो जाए और उसे मान्य न कर लें तब तक मैं नहीं बोलूंगा। अगर मुझे अकेले करना हो तो मैं अभी कर सकता हूँ किन्तु मैं संघ को साथ लेकर चलना चाहता हूँ इसलिए अभी यह संभव नहीं है।

यह कितनी महत्व की बात है—मैं संघ को साथ लेकर चलना चाहता हूँ, अकेला चलना नहीं चाहता। यह बात सदा तेरापंथ के आचार्य के मन में रहे—‘मुझे अकेले नहीं चमकना है, पूरे संघ के साथ चमकना है, मुझे अकेले शक्तिशाली नहीं होना है, पूरे संघ को शक्तिशाली बनाना है, मुझे केवल अपना वर्चस्व नहीं जमाना है, पूरे संघ के वर्चस्व को सामने लाना है।’ केवल आचार्य के मन में ही नहीं, प्रत्येक साधु-साध्वी, समणी के मन में रहे, संघ के प्रत्येक सदस्य के मन में रहे—विकास अकेले का नहीं, सबका होना चाहिए। सबके विकास के इस उदार सिद्धान्त से संघ शक्तिशाली बनता है, समाज शक्तिशाली बनता है। शक्ति सम्पन्नता के इस रहस्य-सूत्र को अपनाएं, प्रयोग में लाएं तो व्यक्ति और समाज—दोनों के शुभ भविष्य का साक्षात् हो सकेगा।



उपेक्षा करना भी सीखें



उपेक्षा करना भी सीखें

मनुष्य सुख-शांति में रहना चाहता है। सुख के अनेक उपाय बतलाए गए हैं। उनमें एक महत्वपूर्ण उपाय बतलाया गया—उपेक्षा, उदासीनता अथवा मध्यस्थता। सुख का स्रोत है मध्यस्थता। उपेक्षा का अभ्यास किए बिना इस दुनिया में कोई भी आदमी शांति से जी नहीं सकता। इसका कारण भी स्पष्ट है—अनेक विचार, अनेक प्रकार का आचार, अनेक प्रकार की रुचियां। अच्छे से अच्छा काम करो तो उसमें भी बुराई बतलाने वाले मिलेंगे। बुरे से बुरा काम करो तो उसका समर्थन करने वाले भी मिल जाएंगे। फिर आदमी कैसे शांति का जीवन जी सकता है? उसके लिए एक ही उपाय है और वह है उपेक्षा।

उपाध्याय विनयविजयजी ने बहुत सुन्दर लिखा—

अनुभव विनय सदासुखमनुभवमौदासीन्यमुदारं रे।

औदासीन्य का अनुभव करो। प्रश्न हुआ—क्या उदास रहना है? उदास तो नहीं रहना है। फिर कैसे अनुभव करना है औदासीन्य का? इसका मतलब है—बाहर से जो आ रहा है—चाहे निन्दा का स्वर आ रहा है या प्रशंसा का स्वर—उसके लिए दरवाजा बंद कर दो। निन्दा आती है तो भी कान को खुला मत रखो और प्रशंसा आती है तो भी कान को खुला मत रखो।

बड़ा कठिन काम है इस दुनिया में जीना और शांति से जीना। यह तभी संभव है जब हम उपेक्षा करना सीख जाएं, औदासीन्य को सीख जाएं।

प्रोफेसर अपने कक्ष में बैठा था। एक व्यक्ति आया, बोला—‘प्रोफेसर साहब! आप महान् आदमी हैं। बड़े उदार और दयालु हैं। आप बड़ा श्रम करते हैं। आपने मेरे पुत्र को ऐसा पढ़ाया कि वह प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हो गया।’ प्रोफेसर को हर्ष का अनुभव हुआ।

कुछ देर में दूसरा व्यक्ति आया, आवेश में बोला—‘प्रोफेसर! तुम बड़े नालायक आदमी हो, कामचोर हो। ट्यूशन करते हो और इतना पैसा लूटते हो। तुमने मेरे बेटे को ठीक नहीं पढ़ाया इसलिए वह फेल हो गया।’

१६८ पथ चुनें पर कौन-सा

यह सुनकर प्रोफेसर का मन खिन्न हो गया।

प्रोफेसर क्या है? अच्छा है या बुरा है? अगर दूसरों के आधार पर मानें तो पांच मिनट पहले प्रोफेसर अच्छा था और पांच मिनट बाद बुरा हो गया। हम क्या मानें?

महत्त्वपूर्ण चिन्तन

इस सारी स्थिति को ध्यान में रखकर इसिभासियाइं सूत्र में एक महत्त्वपूर्ण चिन्तन दिया गया—

नन्नस्स वयणा चोरो, नन्नस्स वयणा साहू।
अप्पा अप्पं वियाणाति, से हु उत्तमणाणिणो॥

किसी दूसरे के कहने से कोई चोर नहीं होता और किसी दूसरे के कहने से कोई मुनि नहीं बनता, ज्ञानी नहीं बनता। कोई आकर यह सर्टिफिकेट दे, प्रमाण पत्र दे कि यह साधु है। इस प्रमाणपत्र से कोई साधु नहीं बनता। कोई आकर यह कहे कि अमुक आदमी चोर है। किसी के कहने मात्र से कोई चोर नहीं बनता। अप्पा अप्पं वियाणाति—अपनी आत्मा को अपनी आत्मा ही जानती है। मैं चोर हूँ या साधु—इसे दूसरा कोई जान नहीं सकता।

दूसरे व्यक्ति का बोध अपनी-अपनी रुचि पर, विचार पर अथवा स्वार्थ पर निर्भर रहता है। जिससे स्वार्थ सधता है, वह बहुत अच्छा आदमी है। जिससे स्वार्थ नहीं सधता, वह बहुत खराब है। जयाचार्य ने इस तथ्य का बहुत विश्लेषण किया—किसी शिष्य का आचार्य से कोई स्वार्थ सध गया तो वह आचार्य की बहुत प्रशंसा करता है, बड़ी भक्ति दिखाता है। कहता है—बस आचार्य क्या हैं? सब कुछ हैं। जब स्वार्थ नहीं सधता तब आचार्य भी कुछ और हो जाते हैं। यह एक बड़ा जटिल प्रश्न है।

जो उपेक्षा करना नहीं जानता, मध्यस्थ और औदासीन्य भावना को नहीं जानता वह पल-पल में राजी और नाराज होता रहता है। इस दुनिया में कितनी बातें होती हैं। कोई कुछ कहता है और कोई कुछ। पूज्य गुरुदेव ने कोलकाता की यात्रा की। बिहार और उत्तरप्रदेश में अनेक दिन यात्रा चली। नए लोग मिले। जैन संतों को कभी देखा नहीं। कुछ लोग कहते—यह ऑपरेशन करने के लिए डॉक्टरों का दल आ गया है। मुंह बांध रखा है। कुछ लोग कहते—इन लोगों का ऑपरेशन किया गया है इसलिए मुंह बांध रखा है। कुछ कहते—मुंह

पथ चुनें पर कौन-सा १६६

बांध रखा है, कहीं ये डकैत तो नहीं हैं। न जाने लोग कितनी प्रकार की कल्पनाएं करते।

मनुष्य विचलित क्यों होता है?

एक बार पूज्य गुरुदेव लुधियाना में एक कॉलेज में पधारे। उसमें सिक्खों का बाहुल्य था। बहुत सुन्दर और बलिष्ठ युवक। लम्बी-चौड़ी कद काठी। वे जैन मुनि की वेशभूषा से अपरिचित थे। हमने प्रवेश किया, हमारी मुख-वस्त्रिका को देखा और मखौल का वातावरण बन गया। उस स्थिति को देखें तो सहज मन में प्रतिक्रिया हो सकती है कि कहां आ गए? वापस चले जाएं? जो व्यक्ति उपेक्षा के मर्म को समझता है, औदासीन्य के आशय को समझता है और जिसने मध्यस्थ भावना से अपनी आत्मा को भावित किया है वह विचलित नहीं होता। हम स्टेज पर पहुंचे। पूज्य गुरुदेव ने भाषण शुरू किया। पहला शब्द ही ऐसा कहा कि एकदम शांति हो गई। फिर शांतिपूर्ण वातावरण में घंटों तक कार्यक्रम चला। सिक्ख युवकों ने बड़ी जिज्ञासा के साथ सुना।

आदमी विचलित क्यों होता है? वह कभी कहता है—आज मेरा दिमाग खराब हो गया। कभी कहता है—आज तो ऐसा हो गया कि मेरी स्थिति विचित्र बन गई। आज तो ऐसा लगा कि बस प्राण पखेरू उड़ने जा रहे हैं। वह क्यों विचलित होता है? इसलिए होता है कि उपेक्षा को नहीं समझता, दरवाजे को बंद करना नहीं जानता। जो द्वार को बंद करना जानता है, हर बात को ग्रहण नहीं करता, वह कभी दुःखी नहीं होता। बाहर से कुछ आया, उसमें जो काम की बात है, उसे ग्रहण कर लो और जो निकम्मी बात है, उसे छोड़ दो। यदि व्यक्ति ऐसा नहीं करता है, जो भी आता है, उसे अपना लेता है, अपना मान लेता है तो इस संसार में उसके दुःख का कभी अंत होने वाला नहीं है। एक दिन में न जाने कितनी बातें सुनने को मिलती हैं। कोई अच्छी बात कहता है, कोई कमजोरी बताता है, कोई आलोचना करता है। यदि व्यक्ति दूसरों के आधार पर चले, सब बातों को स्वीकार कर ले तो दूसरों के हाथ की कठपुतली बन जाए। फिर नचाने वाला उसको चाहे जैसे नचाए।

स्वतंत्र नहीं होता प्रतिक्रिया का जीवन

पद्मश्री देवीलाल जी सामर लोककला मंडल उदयपुर के संस्थापक थे। बड़े भक्त श्रावक थे। कला के क्षेत्र में उन्होंने बहुत विकास किया था।

२०० पथ चुनें पर कौन-सा

पूज्य गुरुदेव उदयपुर में लोककला मंडल में पधारे। उन्होंने कठपुतलियों के करतब दिखलाए। ऐसा लगता कि जैसे काठ की पुतलियां स्वयं नाच रही हैं। वास्तव में परदे के पीछे से एक आदमी उनको नचा रहा था और वे नाच रही थीं। कभी आदमी भी ऐसा ही बन जाता है। चाहे जब उसको राजी कर दो, चाहे जब नाराज कर दो, चाहे तब उसका मूड ऑफ कर दो। यह हाथ की बात हो जाती है। एक ऐसी बात कहो कि उसके लिए रोटी हराम हो जाएगी। उसका मन प्रतिक्रिया से भर जाएगा। प्रतिक्रिया का जीवन स्वतंत्र नहीं होता। ऐसा जीवन होता है औदासीन्य भावना को न समझने के कारण।

जैन साहित्य में सोलह भावनाएं वर्णित हैं। उनमें सोलहवीं है औदासीन्य भावना। इसका अर्थ इतना-सा कर लिया, बहुत संकुचित अर्थ समझ लिया कि कोई अच्छा न लगे तो उसकी उपेक्षा कर दो। एक अर्थ है पर वह भी इतना ही नहीं है। दूसरा कोई कहता है, उसकी मेरे मन पर क्या प्रतिक्रिया होती है? क्या असर होता है? क्या प्रभाव होता है? उस प्रतिक्रिया को कम करने का अभ्यास, इसका नाम है औदासीन्य भावना। कहा गया—

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा।
समो निंदा पसंसासु, तहा माणावमाणओ॥

लाभ-अलाभ, प्रशंसा-निंदा आदि में सम रहें—यह औदासीन्य भावना का ही प्रयोग है। कोई व्यक्ति निंदा करे और उत्तेजना न आए, प्रशंसा करे और फूल न जाए—बहुत कठिन काम है। इसीलिए प्रतिक्रिया करना हमारा अभ्यास जैसा बना हुआ है। हम अनुकूल प्रतिक्रिया करना भी जानते हैं और प्रतिकूल प्रतिक्रिया करना भी जानते हैं।

परिणाम प्रतिक्रिया का

एक कलाकार मूर्ति बनाने में बहुत दक्ष था। वह वृद्ध हो गया। उसने सोचा—अब अवस्था आ गई है। णत्थि कालस्स आगमो—पता नहीं कब काल आ जाए, कब मौत आ जाए। मुझे मेरी कला का उपयोग करना चाहिए। मैं इस प्रकार कला का उपयोग करूं, जिससे मेरी मौत टल जाए, मौत आए ही नहीं। कलाकार बुद्धिमान भी था। योजना बना ली। उसने स्वयं की दस मूर्तियां बना लीं। उनमें इतनी समानता थी कि पता ही नहीं चलता—कौन जीवित है और कौन मृत? उसने सोचा—जब भी मौत आने

पथ चुनें पर कौन-सा २०१

का प्रसंग होगा, इनके बीच बैठ जाऊंगा। मौत किसको ले जाएगी? एक दिन अचानक शरीर में कुछ असुविधा हुई। ऐसा लगा कि कहीं मौत न आ जाए। वह तत्काल मूर्तियों के बीच में बैठ गया। कहा जाता है—उसी समय यमदूत आया। वह एक समान ग्यारह व्यक्तियों को देखकर असमंजस में पड़ गया। सोचा—अब किसको ले जाऊं? काफी देर तक प्रयत्न किया पर यह जानने में सफल नहीं हुआ कि इनमें से आदमी कौन है और मूर्ति कौन है? यमदूत ने आखिर एक उपाय खोजा—आदमी की दुर्बलता को पकड़ा। मनुष्य की सबसे बड़ी दुर्बलता है प्रतिक्रिया। यमदूत ने मनुष्य की इस दुर्बलता को पकड़ लिया, मूल रहस्य को पकड़ लिया। जब रहस्य पकड़ में आ जाता है, तब व्यक्ति सफल हो जाता है। जब तक रहस्य नहीं पकड़ा जाता तब तक कुछ नहीं होता।

दुर्योधन को मारना सरल काम नहीं था। भीम कभी नहीं मार सकता, अगर वासुदेव कृष्ण उसका रहस्य नहीं बता देते। श्रीकृष्ण ने बता दिया—देखो, माता ने दुर्योधन का सारा शरीर वज्रमय बना दिया है। तुम कितना ही गदा का प्रहार करो, वह नहीं मरेगा। किन्तु एक स्थान बचा है। जब मां ने कहा कि सामने खड़े हो जाओ तो मां के सामने नग्न कैसे खड़ा हो? लज्जावश कच्छे जितना स्थान नहीं खोला। इसलिए वह स्थान तो कमजोर रह गया और शेष सारा शरीर वज्र का बन गया। अगर गदा का प्रहार करना हो तो इसी स्थान पर करना। यह रहस्य समझ में आ गया, उसी स्थान पर गदा का प्रहार किया और दुर्योधन को मार डाला।

यमदूत को रहस्य समझ में आ गया। वह बोला—वाह कलाकार! साधुवाद! इतनी जीवन्त मूर्तियां बना दी कि पता ही नहीं चलता—कौन जीवित है और कौन मृत? पांच-सात प्रशंसात्मक वाक्य कहे, लच्छेदार शब्दों का प्रयोग किया।

अपनी प्रशंसा सुनते ही कलाकार मूल बात को भूल गया, बोला—मैंने बनाई है, मैंने बनाई है। यमदूत ने तत्काल उसका हाथ पकड़ते हुए कहा—‘तो आओ मेरे साथ।’

अगर कलाकार उपेक्षा करना जानता, प्रतिक्रिया नहीं करता तो यमदूत को लौटना पड़ता। किन्तु वह प्रतिक्रिया से नहीं बच सका इसलिए मृत्यु को टालने की योजना विफल हो गई।

२०२ पथ चुनें पर कौन-सा

वहां जरूरी है उपेक्षा

हम उपेक्षा को नहीं जानते इसीलिए समस्या को निमंत्रण दे देते हैं। शांति से जीने का, अपने आपमें रहने का महत्वपूर्ण सूत्र है—उपेक्षा करना सीखें। दुनिया में विभिन्न प्रकार के लोग हैं। हम क्या करें? अनेक बार ऐसी स्थितियां आती हैं, जब व्यक्ति को न समझाया जा सकता है और न बदला जा सकता है। उस स्थिति में यही उचित होता है कि हम उपेक्षा करें। भगवान महावीर ने भी उपेक्षा की थी—

मिथ्याशंसन वीरतीर्थेश्वरेण,
रोद्धुं श्लेके न स्वशिष्यो जमालिः।
अन्यः को वा रोत्स्यते केन पापात्,
तस्मादौदासीन्यपीयूषसारम् ॥

जमाली भगवान महावीर का दामाद था। वह उलटे रास्ते पर चला गया, मिथ्या दृष्टिकोण बन गया। क्या भगवान महावीर उसको रोक पाए? वे रोक नहीं सके। हम किसी को जबर्दस्ती रोक नहीं सकते।

प्रतिक्रिया से उत्पन्न होता है तनाव

उपेक्षा के अनेक पहलू हैं। एक परिवार में अनेक आदमी हैं। एक आदमी का सोचना एक प्रकार का होता है और दूसरा आदमी दूसरे प्रकार से सोचता है। एक व्यक्ति कहता है—यह चीज अच्छी है, दूसरा कहता है—नहीं, अच्छी नहीं है, अपने काम की नहीं है, उपयोगी नहीं है। जहां दो भिन्न मत होते हैं वहां किसकी रुचि का सम्मान करें। वहां उपेक्षा ज्यादा उपयुक्त होती है। कोई बात अच्छी लगे तो किसी को समझा दो या कोई बात अपने को अच्छी न लगे तो अपने आपको समझा लो किन्तु दूसरे की हर बात को स्वीकार कर भारी मत बनो, दुःखी मत बनो, तनाव में मत जाओ। आजकल तनाव एक बड़ी बीमारी बन गई। वह बहुत बार दूसरे के कारण होता है। किसी ने कुछ कह दिया, मन में प्रतिक्रिया हो गई, सिर भारी हो गया। कोई घटना नहीं घटी किन्तु प्रतिक्रिया से तनाव हो जाता है। जो आदमी धर्म के मर्म को समझता है उसे इस प्रतिक्रिया से जरूर बचना चाहिए। जो धर्म के मर्म को नहीं समझता, प्रतिक्रिया से नहीं बचता, वह कितना ही बड़ा विद्वान हो, तनाव में चला जाएगा।

पथ चुनें पर कौन-सा २०३

कौन होता है मूर्ख

एक दिन राजा भोज अपने महल में गया। उस समय महारानी और महाकवि माघ बात कर रहे थे। राजा भोज सीधा उनके पास चला गया। महारानी ने कहा—आओ मूर्ख! यह शब्द सुनते ही राजा का सिर भारी हो गया, तनाव हो गया—मेरी महारानी ने मुझे मूर्ख कह दिया। तत्काल वहां से शयनघर में गया, सो गया। रात भर आंखों में नींद नहीं आई। मेरी महारानी ने मुझे अकारण मूर्ख कह दिया—यह अहं तनाव का कारण बन गया। अहं ज्यादा होता है तो तनाव ज्यादा आता है। अहंकार कम होता है तो तनाव कम आता है। राजा का अपना अहंकार होता है। तनाव कम नहीं हुआ। प्रातःकाल प्रातःकृत्य से निवृत्त हुआ, राज्यसभा में गया। राज्यसभा का जैसे ही पहला सदस्य आया, राजा भोज बोला—आओ मूर्ख! दूसरा आया, तीसरा आया। राजा भोज सबसे यही कहते—‘आओ मूर्ख!’ सभासदों ने सोचा—आज क्या बात है? क्या राजा पागल बन गया है? आखिर में महाकवि कालिदास आया। राजा ने वही वाक्य दोहराया—आओ मूर्ख! कालिदास बड़ा विद्वान था, राजा से भी दबता नहीं था। जो सही अर्थ में पंडित होता है, विद्वान होता है उसे कोई परवाह नहीं होती। कालिदास बोला—महाराज! आपने मुझे मूर्ख कैसे कहा?

खादन्न गच्छामि हसन्न जल्पे, गतं न शोचामि कृतं न मन्ये।

द्वाभ्यां तृतीयो न भवामि राजन्! किं कारणं भोज! भवामि मूर्खः॥

महाराज! जो चलता हुआ खाता है, वह मूर्ख होता है। **खादन्न गच्छामि**—मैं चलता हुआ खाता नहीं हूँ। आजकल बहुत लोग खाते हुए चलते हैं। आज जो खाते हुए चलता है, उसे मूर्ख भी नहीं कहा जाता किन्तु उस युग में इसे मूर्ख का एक लक्षण माना गया।

हसन्न जल्पे—वह आदमी, जो बात बाद में कहता है और पहले हंस पड़ता है, मूर्ख कहलाता है। मैं तो ऐसा नहीं करता।

गतं न शोचामि—जो बात बीत चुकी उसकी चिंता नहीं करता। कोई बात हो गई, उस को लेकर वर्षों तक दिमाग भारी रहे—ऐसा नहीं करता।

कृतं न मन्ये—मैं कृत का अहंकार नहीं करता। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो अपने कार्यों का बखान करते रहते हैं। थोड़ा-सा किसी का काम कर दिया। जब तक पूरे गांव में ढिंढोरा न पीट दें तब तक पेट का अफारा नहीं जाता।

२०४ पथ चुनें पर कौन-सा

कृतं न मन्ये—थोड़ा-सा काम करता है और उसका बखान ज्यादा करता है, वह मूर्ख होता है।

द्वाभ्यां तृतीयो न भवामि राजन्!—दो आदमी बात करते हैं और बीच में तीसरा जाता है वह मूर्ख होता है। महाराज! मैं तो ऐसा नहीं करता।

राजा तत्काल समझ गया कि मुझे मूर्ख क्यों कहा गया? उसका तनाव कम हो गया।

उपेक्षा के प्रयोग

जो व्यक्ति दूसरों की बात सुन कर उलझ जाता है, वह कभी सुख-शांति से रह नहीं सकता। इसलिए उपेक्षा को समझना बहुत जरूरी है। यदि आप शांति से रहना चाहते हैं, यदि आप पारिवारिक झगड़ों, कलहों से मुक्त रहना चाहते हैं, यदि संस्थागत संगठनात्मक झगड़ों से मुक्त रहना चाहते हैं तो सबसे अच्छा उपाय है—उपेक्षा करना सीखो, औदासीन्य का पाठ पढ़ो, मध्यस्थ रहना सीखो। इससे काफी समस्या हल हो जाएगी।

आचार्य भिक्षु उपेक्षा करना बहुत जानते थे इसीलिए वे इतने विरोधों, संघर्षों, अपवादों के बीच रहकर भी बहुत तटस्थ रहे। भगवान महावीर और भगवान बुद्ध ने भी इस उपेक्षा भाव का बड़ा प्रयोग किया था। बुद्ध की सफलता में भी उपेक्षा का बड़ा योग है। एक आदमी आया और बुद्ध को गालियां देने लगा। बहुत गालियां दी। बुद्ध मुस्कराते रहे। वह गालियां दे रहा है, बुद्ध मुस्करा रहे हैं। आखिर थक गया। थकता वही है जो नकारात्मक दृष्टिकोण वाला होता है। बोला—‘भंते! मैंने आपको इतनी गालियां दी, आप नाराज नहीं हुए, आपने क्रोध नहीं किया। क्या कारण है?’

बुद्ध ने कहा—‘देखो भाई! तुम जानते हो कि जब घर में विवाह, शादी का प्रसंग होता है तो हांती देते हैं। जो उस हांती को नहीं लेता, वापस कर देता है तो वह हांती कहां जाती है? वह भोज्य वस्तु कहां जाती है?’

‘भंते! मालिक के पास चली जाती है।’

‘भाई! तूने मुझे गालियां दी, मैंने उन गालियों को स्वीकार नहीं किया तो वे गालियां कहां पहुंची? क्या तुम्हारे पास नहीं पहुंची? मैं नाराज क्यों होऊं?’

वह व्यक्ति प्रणत हो गया, शांत हो गया।

पथ चुनें पर कौन-सा २०५

महाराष्ट्र में एकनाथ, नामदेव, ज्ञानेश्वर आदि अनेक महान् साधक हुए हैं। एक बार संत एकनाथ गोदावरी नदी में स्नान कर वापस आ रहे थे। मार्ग के मध्य एक मकान के वातायन में एक आदमी बैठा था। संत जैसे ही उसके मकान के नीचे आए, उस आदमी ने उन पर थूक दिया। दुनिया बड़ी विचित्र है, सब प्रकार के लोग होते हैं। अच्छे लोगों को सताने वालों की भी कमी नहीं है, बिना मतलब सताते हैं। संत किसी का नुकसान नहीं करते, फिर भी उन पर थूक दिया। एकनाथ पुनः गोदावरी गए, स्नान करके आए। दूसरी बार फिर ऊपर से थूक दिया। संत पुनः स्नान के लिए गोदावरी की ओर मुड़ गए। कहते हैं—उसने इक्कीस बार थूका, आखिर थक गया। नीचे आया। पैरों में गिर पड़ा, बोला—माफ करना। मैंने आपका बड़ा अपराध किया है। एकनाथ ने यह नहीं कहा—तू कितना मूर्ख आदमी है। कितना गलत काम करता है। उन्होंने कहा—‘तुम मेरे बड़े हितैषी हो। मैं रोज मां गोदावरी में एक बार नहाता हूँ। आज तुमने कितना अच्छा काम किया कि इक्कीस बार नहाने का मौका मिला।’

यह है औदासीन्य, उपेक्षा।

मानसिक शांति के सूत्र

जो सचमुच उपेक्षा करना जानता है, वह न कभी गुस्से में आता है, न झल्लाता है, न गालियां बकता है। कुछ भी नहीं करता। वह अपने व्यवहार से ऋणात्मक को धनात्मक बना देता है, नकारात्मक को सकारात्मक बना देता है और अपनी शांति को भंग भी नहीं होने देता।

यह जीवन के लिए बड़ा बोध पाठ है, जीने की कला है। जो व्यक्ति इस कला को सीख लेता है, वह बहुत हलका रहता है, तनावमुक्त रहता है, काफी शांति के साथ जीवन जीता है। जो इस कला को नहीं जानता, वह दिन में अनेक बार दुःखी बन सकता है। अध्यात्म के आचार्यों ने अच्छा जीवन जीने के लिए अनेक तत्त्वों का आविष्कार किया, प्रयोग किया और निष्कर्ष में अनेक उपाय बतलाए। उनमें अनित्य, अशरण, एकत्व, अन्यत्व, अशौच आदि सोलह भावनाएं हमारे सामने हैं। ये सोलह भावनाएं, अनुप्रेक्षाएं शांतिपूर्ण जीवन जीने के सूत्र हैं, मानसिक शांति के सूत्र हैं। इनमें सोलहवां प्रकार है उपेक्षा। इसी बात को ध्यान में रखकर इसिभासियाइं के रचनाकार ने लिखा था—

२०६ पथ चुनें पर कौन-सा

नन्नस्स वयणा चोरो, नन्नस्स वयणा साहू।
अप्पा अप्पं वियाणाति, से हु उत्तम नाणिणो॥

जो उत्तम ज्ञानी होता है जिसका ज्ञान उत्तम है, वह अपने तराजू से अपने आपको तोलता है और अपने मीटर से अपने आपको नापता है। वह दूसरों के आधार पर अपना अंकन और मूल्यांकन नहीं करता। इसी का नाम है आत्म कर्तृत्व। मैं ही अपने भाग्य का विधाता हूँ। मैं ही अपने सुख-दुःख का कर्ता हूँ—यह बात तभी प्रमाणित होती है जब हम 'उपेक्षा' के मंत्र को सीख जाएं।

हृदयस्पर्शी गीत

शांतसुधारस में औदासीन्य पर बहुत सुन्दर गीत है। इसको सीख लें और प्रतिदिन दोहराएं तो उपेक्षा के संस्कार पुष्ट होंगे। बार-बार दोहराने से एक संस्कार का निर्माण होता है। उस गीत के कुछ पद बहुत हृदयस्पर्शी हैं—

अनुभव विनय! सदासुखमनुभव औदासीन्यमुदारं रे॥
कुशलसमागममागमसारं, कामितफलमन्दारं रे॥

हे विनय! तू निरन्तर सुख देने वाले उदार औदासीन्य भाव का अनुभव कर, जो कल्याण की प्राप्ति कराने वाला, आगम का सार है और इच्छित फल के लिए कल्पवृक्ष-तुल्य है।

परिहर परचिन्तापरिवारं, चिन्तय निजमधिकारं रे॥
तव किं कोऽपि चिनोति करीरं, चिनुतेऽन्यः सहकारं रे॥

तू दूसरों की चिन्ता के वलय को छोड़, अपने अधिकार का चिन्तन कर। तुझे क्या, कोई मनुष्य कैर चुनता है और कोई आम।

योऽपि न सहते हितमुपदेशं, तदुपरि मा कुरु कोपं रे॥
निष्फलया कि परजनतप्त्या, कुरुषे निजसुखलोपं रे॥

जो व्यक्ति हितकर उपदेश को भी सहन नहीं करता, उस पर तू क्रोध मत कर। तू बिना मतलब दूसरे के विषय में चिन्ता करके अपने सुख का लोप क्यों कर रहा है?

कितना सुन्दर कहा गया है—तुमने किसी को अच्छी बात कही, अच्छी सीख दी। वह नहीं मानता है तो तुम गुस्सा क्यों करते हो? विनयविजयजी कहते हैं—इससे उसका कुछ बिगड़ा या नहीं, किन्तु यदि तुम गुस्से में आ गए तो तुम्हारा सुख तो गायब हो गया, तुम दुःखी हो गए।

पथ चुनें पर कौन-सा २०७

इस प्रकार के विचार अगर संस्कार बन जाएं तो जीवन कितना सुखी और शांत बन जाए। औदासीन्य के अनेक अर्थ हैं। पचासों संदर्भों में औदासीन्य की भावना का प्रयोग हो सकता है। इन सबको समझकर अभ्यास करें तो अच्छा शांति का जीवन जीया जा सकता है और लोक-व्यवहार को भी ठीक चलाया जा सकता है।